उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जुलाई-सितंबर, 2016

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अनन्त प्रकाश सिन्हा **उर्फ** अनन्त सिन्हा **बनाम** हरियाणा राज्य	139
ऋषभ चंद जैन और एक अन्य **बनाम** जिनेश चन्द्र जैन	188
ज्ञानेश्वर श्यामल **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य	161
ज्येष्ठ प्रभागीय वाणिज्यिक प्रबंधक और अन्य **बनाम** एस. सी. आर. कैटर्स, ड्राई फ्रूट्स, एफ. जे. एस. डब्ल्यू. एसोसिएशन और एक अन्य	29
दर्शन सिंह **बनाम** पंजाब राज्य	18
महबूब अली **बनाम** राजस्थान राज्य	1
मुकुन्द देवांगन **बनाम** ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, आदि	77
राम सरन वार्ष्णेय और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य	57
लीलावती अग्रवाल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा **बनाम** झारखंड राज्य	173
हरिजन भाला तेजा **बनाम** गुजरात राज्य	197
हिमाचल प्रदेश राज्य **बनाम** राजीव जस्सी	209

संसद् के अधिनियम

बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (19)

जुलाई-सितंबर, 2016 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

महत्वपूर्ण निर्णय

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का 1) – धारा 30 का परंतुक – प्रतिकर – दावाकर्ताओं को यदि भूमि के कब्जा लेने की तारीख से एक वर्ष के भीतर ऐसा प्रतिकर नहीं दिया गया है तो ऐसे प्रतिकर के रकम को एक वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति की तारीख से 15% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज बढ़ता जाएगा ।

लीलावती अग्रवाल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा बनाम **झारखंड राज्य** 173

संसद् के अधिनियम

बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (19)

पृष्ठ संख्या 1 – 230 **[2016] 3 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – जुलाई-सितंबर, 2016 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 230]

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. एन. आर. बट्टू, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री अविनाश शुक्ला, असलम खान और पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2016 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 216 – आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करने की न्यायालय की शक्ति – पहले से प्रस्तुत साक्ष्य और पश्चात्वर्ती साक्ष्य – विरचित आरोप में त्रुटि या खामी दिखाई देने पर विचारण न्यायालय शिकायत, संबंधित दस्तावेजों के आधार पर किसी भी समय निर्णय दिए जाने के पूर्व विरचित आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है और ऐसा करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि विचारण के दौरान कोई पश्चात्वर्ती साक्ष्य ही प्रस्तुत किया जाए ।

अनन्त प्रकाश सिन्हा उर्फ **अनन्त सिन्हा** बनाम **हरियाणा राज्य** 139

– धारा 216 – विरचित आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन और अभियुक्त पर उससे पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव – विचारण न्यायालय ने यह सुनिश्चित किया है कि विरचित आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन से अभियुक्त पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है और उसे निष्पक्ष विचारण के लिए अनुज्ञात किया गया है, ऐसी स्थिति में विचारण न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

अनन्त प्रकाश सिन्हा उर्फ **अनन्त सिन्हा** बनाम **हरियाणा राज्य** 139

– धारा 378 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302] – हत्या – सेशन न्यायालय द्वारा किए गए दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने के संबंध में अपील न्यायालय की शक्ति – अभियुक्त के विरुद्ध अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर ध्यान न दिया जाना – जब विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अभिलेख पर प्रस्तुत

पृष्ठ संख्या

साक्ष्य के प्रतिकूल या अनुचित हो और युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप साबित होता हो, तब ऐसी स्थिति में अपील न्यायालय दोषमुक्ति के निर्णय को उलटने के लिए स्वतंत्र है ।

हरिजन भाला तेजा बनाम **गुजरात राज्य** 197

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 148, 364, 302 और 307 – सामान्य उद्देश्य – हत्या और हत्या का प्रयास – अपहरण – अभियुक्तों ने घातक आयुधों से लैस होकर विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य में भाग लिया, उन लोगों ने पीड़ित के घर में प्रवेश किया और हत्या करने के आशय से उसका अपहरण किया, अतः, घटनास्थल पर उनकी मौजूदगी, सामान्य उद्देश्य में उनकी भागीदारी, पीड़ित की हत्या करने के लिए उसके अपहरण जैसी अपेक्षाओं के पूरा होने के कारण अभियुक्तों का दोषसिद्ध किया जाना उचित और न्यायसंगत है ।

ज्ञानेश्वर श्यामल बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** 161

– धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106] – हत्या – अभियुक्त-पति द्वारा मृतका-पत्नी को जबरदस्ती विष पिलाकर हत्या – मृतका के शरीर के अग्र भाग पर क्षतियां पाया जाना – अभियुक्त द्वारा मृतका को पहुंची क्षतियों का स्पष्टीकरण न दिया जाना – अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला प्रचुर साक्ष्य होने पर कि अभियुक्त का मृतका के प्रति व्यवहार उचित नहीं था तथा क्षतियों से यह उपदर्शित होने पर कि विषाक्तिकरण के कारण मृत्यु कारित करने से पूर्व उसके साथ हिंसा की गई थी, उच्च न्यायालय ने मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट और साक्षियों के साक्ष्य पर संदेह करके और विचारण न्यायालय के दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय को उलटकर गलती की है ।

हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम **राजीव जस्सी** 209

पृष्ठ संख्या

– धारा 302 – हत्या – अभियुक्त-पति द्वारा मृतका-पत्नी को जबरदस्ती विष पिलाकर हत्या – मृतका के अग्र भाग पर क्षतियां पाया जाना, मृतका के चीखने-चिल्लाने पर पड़ोसियों द्वारा दरवाजा खटखटाने और अभियुक्त द्वारा तुरंत दरवाजा न खोलने, पड़ोसियों-साक्षियों के अनुरोध करने के बावजूद मृतका की हालत अस्थिर होते हुए भी उसे अस्पताल न ले जाना, पुलिस के पहुंचने के पश्चात् ही मृतका को अस्पताल ले जाना, हत्या से लगभग 15 दिन पूर्व जैव फास्फोरस विष खरीदने की बात साबित होना आदि ऐसी परिस्थितियां हैं जो अचूक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हैं, इसलिए अभियुक्त की दोषसिद्धि उचित है ।

हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम **राजीव जस्सी** 209

– धारा 489ग और 120ख [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27] – जाली करेंसी नोट – आपराधिक षड्यंत्र – जाली नोटों की बरामदगी – जहां अभियुक्तों के कथन के आधार पर ऐसे जाली नोटों की बरामदगी की गई जिसकी जानकारी पुलिस को पहले नहीं थी और अभियुक्त की शनाख्त पर ही सह-अभियुक्त को भी पकड़ा गया, वहां अभियुक्त के कब्जे से जाली नोटों की बरामदगी युक्तियुक्त संदेह से परे साबित होने पर विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को उक्त अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाना न्यायसंगत और उचित है ।

महबूब अली बनाम **राजस्थान राज्य** 1

– धारा 498क और 506 [सपठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 3 और 4] – विवाहिता को तंग किया जाना – विवाहिता की तीन ननद का अपनी ससुराल में दो अवसर पर आने से उनके द्वारा विवाहिता को तंग किए जाने का कोई संकेत नहीं मिलता,

पृष्ठ संख्या

अतः, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर तीनों ननद के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करना न्यायसंगत नहीं है अतः केवल सास और श्वसुर के विरुद्ध ही उक्त धाराओं के अधीन आपराधिक कार्यवाही किया जाना उचित और तर्कसंगत है ।

राम सरन वार्ष्णेय और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** 57

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का 1)

– धारा 30 का परंतुक – प्रतिकर – दावाकर्ताओं को यदि भूमि के कब्जा लेने की तारीख से एक वर्ष के भीतर ऐसा प्रतिकर नहीं दिया गया है तो ऐसे प्रतिकर के रकम को एक वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति की तारीख से 15% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज बढ़ता जाएगा ।

लीलावती अग्रवाल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा बनाम **झारखंड राज्य** 173

भूमि अर्जन (संशोधन) अधिनियम, 1984

– धारा 30(2) [सपठित भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 23(2) और 28] – उपबंध का लागू होना – कलक्टर या न्ययालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील में उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 30 अप्रैल, 1982 के पश्चात् पारित आदेश को धारा 30(2) लागू होती है, भले ही ऐसा अधिनिर्णय तारीख 30 अप्रैल, 1982 से पूर्व क्यों न किया गया हो – अतः भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की संशोधित धारा 23(2) और 28 के उपबंध 30 अप्रैल, 1982 को उच्च न्यायालय में लंबित अपील को लागू होंगे ।

लीलावती अग्रवाल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा बनाम **झारखंड राज्य** 173

पृष्ठ संख्या

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 2(10), 2(21), 2(47), 2(35), 2(41), 10(2) – परिवहन यान – चालन अनुज्ञप्ति – हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति रखने वाले चालक के लिए परिवहन यान चलाने का पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक है जबकि परिवहन यान हल्के मोटर यान वर्ग का यान है ।

मुकुन्द देवांगन बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, आदि** 77

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14, 19(1)(छ), 21 और 38 [सपठित रेल खान-पान नीति, 2010 का खंड 16 और 17] – समता और उपजीविका का अधिकार – रेल स्टेशनों पर खान-पान की लघु इकाइयों की अनुज्ञप्तियों का नवीकरण करने से इनकार – नए सिरे से अनुज्ञप्तियां प्रदान किए जाने के लिए बोली/निविदाएं आमंत्रित किया जाना – रेल बोर्ड द्वारा तारीख 9 अगस्त, 2010 को जारी वाणिज्यिक परिपत्र में विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों की लघु इकाइयों का नवीकरण करने की बात स्पष्ट है, इसलिए विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों को निविदा प्रक्रिया में सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं है ।

ज्येष्ठ प्रभागीय वाणिज्यिक प्रबंधक और अन्य बनाम **एस. सी. आर. कैटर्स, ड्राई फ्रूट्स, एफ. जे. एस. डब्ल्यू. एसोसिएशन और एक अन्य** 29

– अनुच्छेद 19(1)(छ), 21 और 38 [सपठित रेल खान-पान नीति, 2010 का खंड 16 और 17] – उपजीविका का अधिकार रेल स्टेशनों पर खान-पान की लघु इकाइयों की अनुज्ञप्तियों का नवीकरण करने से इनकार – नए सिरे से अनुज्ञप्तियां प्रदान किए जाने के लिए बोली/

पृष्ठ संख्या

निविदाएं आमंत्रित किया जाना – 2010 की नीति के प्रवृत्त होने से पूर्व प्रदान की गई अनुज्ञप्तियों और इसके पश्चात् प्रदान की गई अनुज्ञप्तियों को दो प्रवर्गों में वर्गीकृत किए जाने की कार्यवाही मनमानी और विभेदकारी है और अनुज्ञप्तिधारियों की अनुज्ञप्ति का नवीकरण करने से इनकार करना उनके उपजीविका की स्वातंत्र्य के अधिकार से वंचित करने की कोटि में आता है तथा इससे अनुच्छेद 19(1)(छ) और 21 का अतिक्रमण होता है ।

ज्येष्ठ प्रभागीय वाणिज्यिक प्रबंधक और अन्य बनाम **एस. सी. आर. कैटर्स, ड्राई फ्रूट्स, एफ. जे. एस. डब्ल्यू. एसोसिएशन और एक अन्य** 29

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 3 और 11 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302] – हत्या – अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् – स्कूल का उपस्थिति रजिस्टर अभिगृहीत न किया जाना – घटना वाले दिन के लिए अपीलार्थी द्वारा एक दिन पूर्व छुट्टी का आवेदन दिया जाना – अपीलार्थी द्वारा स्कूल में आकस्मिक छुट्टी का आवेदन जिस दिन के लिए दिया गया उसी दिन घटना घटित हुई और घटनास्थल पर अपीलार्थी की मौजूदगी साबित की गई तथा साथ ही स्कूल रजिस्टर अभिगृहीत नहीं किया गया, ऐसी स्थिति में अपीलार्थी का अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् साबित नहीं माना जाएगा और उसकी दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

दर्शन सिंह बनाम **पंजाब राज्य** 18

– धारा 106 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313] – सबूत का भार – अभियुक्त द्वारा यह अभिवाक् किया जाना कि मृतका की मृत्यु प्रसव के दौरान हुई – चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि न होना – अभिलेख पर यह साबित हो गया है कि मृतका की मृत्यु के समय अभियुक्त

पृष्ठ संख्या

घर पर ही था, इसलिए उसका यह दायित्व है कि वह साबित करे कि मृत्यु किस प्रकार हुई, अभियुक्त द्वारा ऐसा न किए जाने और अभियोजन पक्ष द्वारा अपराध साबित किए जाने की स्थिति में, उसकी दोषसिद्धि न्यायोचित है ।

हरिजन भाला तेजा बनाम **गुजरात राज्य** 197

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 2(2), 96, 115 और आदेश 41, नियम 1 – डिक्री – वादी-प्रत्यर्थी द्वारा हक वाद फाइल किया जाना – वाद के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी-अपीलार्थियों द्वारा अंतर्वर्ती आवेदन फाइल करके प्राङ न्याय के सिद्धांत के आधार पर वाद की संधार्यता को प्रश्नगत किया जाना – अंतर्वर्ती आवेदन मंजूर किया जाना – वादी द्वारा उच्च न्यायालय में अपील न करके पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जाना – प्रतिवादियों द्वारा इसका विरोध किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश को डिक्री न मानते हुए पुनरीक्षण को सही ठहराया जाना – यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राङ न्याय के आधार पर वाद को खारिज करने का आक्षेपित आदेश विवाद्यक की विरचना न करने की प्रक्रियात्मक अनियमितता के कारण डिक्री नहीं है, भले ही ऐसा आदेश पारित करने की प्रक्रिया में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता हो, यदि पारित किया गया आदेश विधि के अधीन डिक्री है, तो संहिता की धारा 115 के अधीन इसकी उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट वर्जना को देखते हुए कोई पुनरीक्षण संस्थित नहीं किया जा सकता है और ऐसा आदेश संहिता के आदेश 41 के साथ पठित धारा 96 के अधीन केवल अपील योग्य है ।

ऋषभ चंद जैन और एक अन्य बनाम **जिनेश चंद्र जैन** 188

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2016] 3 उम. नि. प.

जुलाई-सितंबर, 2016

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	महबूब अली **बनाम** राजस्थान राज्य (27.10.2015)	[2016] 3	1	2016	-	(2016) -	-
2.	दर्शन सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (6.1.2016)		18		253	3	37
3.	ज्येष्ठ प्रभागीय वाणिज्यिक प्रबंधक और अन्य **बनाम** एस. सी. आर. कैटर्स, ड्राई फ्रूट्स, एफ. जे. एस. डब्ल्यू. एसोसिएशन और अन्य (29.1.2016)		29		668	-	-
4.	राम सरन वार्ष्णेय और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य (5.2.2016)		57		744	3	724
5.	मुकुन्द देवांगन **बनाम** ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, आदि (11.2.2016)		77		-	4	298

1	2	3	4	5
6.	अनन्त प्रकाश सिन्हा **उर्फ** अनन्त सिन्हा **बनाम** हरियाणा राज्य (4.3.2016)	[2016] 3	139 2016 1197	(2016) 6 105
7.	ज्ञानेश्वर श्यामल **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य (29.3.2016)		161 1585	– –
8.	लीलावती अग्रवाल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा **बनाम** झारखंड राज्य (1.4.2016)		173 1885	6 566
9.	ऋषभ चंद जैन और एक अन्य **बनाम** जिनेश चन्द्र जैन (13.4.2016)		188 2143	6 675
10.	हरिजन भाला तेजा **बनाम** गुजरात राज्य (27.4.2016)		197 2065	– –
11.	हिमाचल प्रदेश राज्य **बनाम** राजीव जस्सी (6.5.2016)		209 2241	– –

[2016] 3 उम. नि. प. 1

महबूब अली

बनाम

राजस्थान राज्य

27 अक्तूबर, 2015

न्यायमूर्ति एच. एल. दत्तू और न्यायमूर्ति अरुण मिश्र

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 489ग और 120ख [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27] – जाली करेंसी नोट – आपराधिक षड्यंत्र – जाली नोटों की बरामदगी – जहां अभियुक्तों के कथन के आधार पर ऐसे जाली नोटों की बरामदगी की गई जिसकी जानकारी पुलिस को पहले नहीं थी और अभियुक्त की शनाख्त पर ही सह-अभियुक्त को भी पकड़ा गया, वहां अभियुक्त के कब्जे से जाली नोटों की बरामदगी युक्तियुक्त संदेह से परे साबित होने पर विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को उक्त अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाना न्यायसंगत और उचित है ।

अभियोजन पक्षकथन के अनुसार तारीख 6 जनवरी, 2004 को पुलिस थाना रामगंज, जयपुर, राजस्थान में 2003 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 459 दर्ज कराई गई । अभियुक्त पूरन मल के कब्जे से सौ-सौ रुपए के पांच करेंसी नोट बरामद किए गए । तीन करेंसी नोटों के नम्बर एक जैसे थे । शेष दो नोटों पर भी वही नंबर था जो कि स्पष्ट रूप से कूटरचित दिखाई दे रहा था । उसे ज्ञापन (प्रदर्श पी-6) के अनुसार गिरफ्तार किया गया और बरामदगी ज्ञापन (प्रदर्श पी-7) तैयार किया गया । दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 489ग के अधीन मामला दर्ज किया गया । परिप्रश्न किए जाने पर पूरन मल ने बताया कि उसने ये करेंसी नोट महबूब, फीरोज और राम गोपाल से लिए थे । अभियुक्त पूरन मल द्वारा जानकारी दिए जाने पर महबूब और फीरोज को गिरफ्तार किया गया । राम गोपाल के मकान से पूरन मल के कब्जे से 41,900/- रुपए के करेंसी नोट बरामद किए गए । महबूब और फीरोज ने पुलिस को बताया कि उन्होंने ये करेंसी नोट अंजू अली से प्राप्त किए थे और वे अंजू अली की शनाख्त कर

सकते हैं । उन्हें दिल्ली ले जाया गया । महबूब और फीरोज द्वारा शनाख्त किए जाने पर अंजू अली को गिरफ्तार किया गया और उसके कब्जे से 1,75,000/- रुपए के जाली नोट बरामद किए गए । अंजू अली ने बताया कि वह अभियुक्त मजहर से ऐसे करेंसी नोट लिया करता था । अंजू अली द्वारा जानकारी दिए जाने और शनाख्त किए जाने पर मजहर को गिरफ्तार किया गया और उसकी तलाशी लिए जाने पर 48,220/- रुपए के जाली करेंसी नोट बरामद किए गए । मजहर ने यह बताया कि वह लियाकत अली से जाली करेंसी नोट लिया करता था । लियाकत अली को गिरफ्तार किया गया और उसके कब्जे से 2,39,500/- रुपए के करेंसी नोट बरामद किए गए । 500/- रुपए के कुछ जाली नोट ऐसे भी बरामद किए गए थे जो अभी आधे तैयार थे और लियाकत के कब्जे से नोट छापने के उपकरण भी बरामद किए गए और इस अभियुक्त द्वारा जानकारी दिए जाने पर उसकी इंडिका कार से 2 लाख रुपए के जाली करेंसी नोट और बरामद किए गए । पूरन मल, अंजू अली, मजहर और लियाकत अली के कब्जे से जाली नोट बरामद किए गए हैं । बरामद किए गए करेंसी नोटों को भारतीय सुरक्षा प्रेस, नासिक भेजा गया । भारतीय रिजर्व बैंक के प्रबंधक श्याम सिंह (अभि. सा. 16) ने यह कथन किया है कि अभिगृहीत किए गए करेंसी नोट कूटकृत थे । (इस संबंध में) एक रिपोर्ट (प्रदर्श पी-34) प्रस्तुत की गई । यह सामग्री भंडार गृह में किस प्रकार जमा की गई, यह साक्ष्य भी अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया है । सुरक्षा प्रेस द्वारा भेजी गई रिपोर्टें प्रदर्श पी-46, पी-48, और पी-51 हैं । थानाध्यक्ष रघुवीर सिंह ने पूरन मल, अंजू अली और मजहर आदि से बरामद की गई वस्तुओं की शनाख्त की । अभियुक्त अंजू अली ने तारीख 7 जनवरी, 2004 के ज्ञापन प्रदर्श पी-43 के अनुसार यह सूचना दी कि उसने पांच-पांच सौ रुपए वाले ये करेंसी नोट मजहर से प्राप्त किए थे और वह मजहर की शनाख्त कर सकता है । अंजू अली द्वारा शनाख्त किए जाने पर तारीख 9 जनवरी, 2004 को 8.15 बजे अपराह्न में मजहर को उस समय गिरफ्तार किया गया जब वह अंतर्राज्यीय बस अड्डे पर खड़ा हुआ था और वहां पर मेट्रो रेल का निर्माण कार्य चल रहा था । अभि. सा. 11 और अभि. सा. 13 दोनों ने इन ज्ञापनों पर अपने हस्ताक्षरों की पुष्टि की है । मजहर को ज्ञापन प्रदर्श पी-31 के अनुसार गिरफ्तार किया गया है । मजहर की तलाशी लिए जाने पर एक छोटी सी थैली में से, जो उसने अपने बाएं पैर के मोजे में छिपा रखी थी, ज्ञापन प्रदर्श पी-19 के अनुसार 500/- रुपए, 100/- रुपए और 20/- रुपए के करेंसी नोट बरामद किए गए । इसके अतिरिक्त विनोद शर्मा (अभि. सा. 11),

मुकेश यादव (अभि. सा. 3) और महावीर सिंह (अभि. सा. 24) ने भी बरामदगी किए जाने और जानकारी दिए जाने के तथ्य का समर्थन किया है । मजहर से बरामद किए गए करेंसी नोटों की कुल राशि 48,220/- रुपए पाई गई । अभियोजन पक्ष ने कुल मिलाकर 28 साक्षियों की परीक्षा कराई और 53 दस्तावेज प्रदर्शित किए । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा 3 साक्षियों की परीक्षा कराई गई । ये अपीलें 2006 की दांडिक अपील सं. 39 और 40 तथा उससे संबंधित मामलों में राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर न्यायपीठ द्वारा तारीख 28 मई, 2009 को पारित किए गए उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 489ग और दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 489ख के अधीन की गई अपीलार्थियों की दोषसिद्धि कायम रखी गई और धारा 489ग के अधीन 3 वर्ष के कठोर कारावास और धारा 120ख के साथ पठित धारा 489ख के अधीन 5 वर्ष के कठोर कारावास और एक-एक हजार रुपए के जुर्माने का संदाय किए जाने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त एक मास का कारावास भोगने का दंडादेश कायम रखा गया । अपीलार्थी महबूब अली और फीरोज को दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 489ख के अधीन दोषसिद्ध करते हुए 5 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त एक मास का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । अन्य अभियुक्तों अर्थात् लियाकत अली और पूरन मल को भी दोषसिद्ध किया गया । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सर्वप्रथम पूरन मल को गिरफ्तार किया गया था और उसके कब्जे से कूटरचित करेंसी नोट बरामद किए गए थे । उसके द्वारा दी गई इस जानकारी के आधार पर कि ये करेंसी नोट उसे अभियुक्त महबूब और फीरोज द्वारा दिए गए थे, इस प्रकार उन्होंने संपूर्ण घटनाक्रम को स्पष्ट किया है जिसके परिणामस्वरूप अंजू अली को गिरफ्तार किया गया । जब महबूब अली और फीरोज को जयपुर से दिल्ली ले जाया गया था और अंजू अली से कूटरचित करेंसी नोट बरामद किए गए थे, उस समय अंजू अली को शनाख्त किए जाने पर गिरफ्तार किया गया था । अंजू अली ने एक अन्य सह-अभियुक्त मजहर की भी शनाख्त की और उसके कब्जे से भी जाली नोट बरामद किए गए और मजहर द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर लियाकत अली को गिरफ्तार किया गया और उसके कब्जे से भी कूटरचित नोट बरामद किए गए और जाली नोट छापने के यंत्र सहित

अध-छपे करेंसी नोट भी बरामद किए गए । साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि किसी पुलिस आफिसर से की गई कोई भी संस्वीकृति किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध साबित न की जाएगी । धारा 26 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि कोई भी संस्वीकृति, जो किसी व्यक्ति ने उस समय की हो जब वह पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साबित न की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात् उपस्थिति में न की गई हो । धारा 27 परंतुक के रूप में है जिसके अधीन यह अधिकथित किया गया है कि अभियुक्त से प्राप्त की गई कितनी जानकारी साबित की जा सकती है । यह स्पष्ट है कि अभियुक्त महबूब अली और अभियुक्त फीरोज द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर अंजू अली को गिरफ्तार किया गया था । यह तथ्य कि अंजू अली कूटरचित करेंसी नोटों का काम करता था, पुलिस की जानकारी में नहीं था । दोनों अभियुक्तों के कथन से नया तथ्य जो कि पुलिस की जानकारी में नहीं था, सामने आया है और सह-अभियुक्त की गिरफ्तारी हुई है । महबूब और फीरोज ने अंजू अली की शनाख्त की और परिणामस्वरूप उनके जाली करेंसी नोटों का काम करने वाले रैकेट का पर्दाफाश हुआ । इस प्रकार जानकारी ज्ञापन के अनुसार उपर्युक्त अभियुक्तों द्वारा दी गई जानकारी स्पष्ट रूप से ग्राह्य है जिसके आधार पर अभियुक्त अंजू अली की शनाख्त की गई और उसे गिरफ्तार किया गया और जैसाकि पहले ही कथन किया गया है, अंजू अली के कब्जे से जाली करेंसी नोट बरामद किए गए थे । ज्ञापन प्रदर्श पी-41 और पी-42 के अंतर्गत दी गई जानकारी के अनुसार अभियुक्त अंजू अली के अपराध में आलिप्त होने के संबंध में पुलिस को ऐसा तथ्य पता चला जो उसे पहले से मालूम नहीं था । पुलिस अंजू अली से अवगत नहीं थी और न ही उसे इस तथ्य की कोई जानकारी थी कि अंजू अली जाली करेंसी नोटों का काम करता है जो उसके कब्जे से बरामद भी किए गए थे । इस प्रकार उपर्युक्त अभियुक्त महबूब और फीरोज के कथनों को साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 स्पष्ट रूप से लागू नहीं होती है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन जो रोक लगाई गई है वह वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से हटा ली गई है । अभियुक्तों के कथनों से ऐसे तथ्यों की खोज हुई है जिनसे अन्य अभियुक्तों की सह-अपराधिता साबित होती है और परिस्थितियों की संपूर्ण शृंखला स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करती है कि अभियुक्तों ने षड्यंत्र रचा है जैसाकि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है । अभिव्यक्तियों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि महबूब अली और मोहम्मद फीरोज के कथन के आधार पर तथ्य प्रकट हुआ था ।

सह-अभियुक्त को अभियुक्त महबूब और फीरोज द्वारा दी गई शनाख्त के आधार पर गिरफ्तार किया गया था । वह जाली करेंसी नोटों का काम कर रहा था, यह जानकारी पुलिस को उन्हीं के द्वारा मिली थी । कूटरचित करेंसी नोटों की बरामदगी भी अंजू अली से हुई थी । इस प्रकार, उपर्युक्त अभियुक्तों को सह-अभियुक्त अंजू अली की जानकारी थी जिसे उनके द्वारा शनाख्त किए जाने पर गिरफ्तार किया गया था । ये तथ्य पुलिस की जानकारी में नहीं थे, इसलिए तथ्य का प्रकटीकरण करने वाले अभियुक्तों के कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार स्पष्ट रूप से ग्राह्य हैं जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और 26 में अंतर्विष्ट पुलिस अभिरक्षा में किए गए संस्वीकृति कथन की अग्राह्यता के बाबत सामान्य उपबंधों के प्रति एक अपवाद है । (पैरा 11, 12, 15 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2005] (2005) 11 एस. सी. सी. 600 :
राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली) बनाम
नवजोत संधू उर्फ **अफसान गुरु** ; 16

[2000] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1691 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम **दामू गोपीनाथ शिन्दे और अन्य** ; 17

[1947] ए. आई. आर. 1947 पी. सी. 67 :
पुलुकुटी कोट्टया और अन्य बनाम **एम्परर** ; 16

[1946] ए. आई. आर. 1946 सिंध 43 :
इस्माईल बनाम **एम्परर** ; 18

[1924] ए. आई. आर. 1924 इलाहाबाद 207 :
सूबेदार और अन्य बनाम **किंग एम्परर** । 19

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 808.

2006 की दांडिक अपील सं. 39 और 40 में राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर न्यायपीठ द्वारा तारीख 28 मई, 2009 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री शेखर नफाडे (ज्येष्ठ अधिवक्ता), संजय आर. हेगड़े (ज्येष्ठ अधिवक्ता),

अरुनम चौधरी, गोनीलंग पनमेई, अनुपम लाल दास, आर. के. कपूर और रेखा गिरी (अनीस अहमद खान की ओर से)

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री जयंत भट्ट, पी. एल., बी. श्रवंत शंकर, अजय चौधरी (रुचि कोहली की ओर से) और मिलिन्द कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अरुण मिश्र ने दिया ।

न्या. मिश्र – ये अपीलें 2006 की दांडिक अपील सं. 39 और 40 तथा उससे संबंधित मामलों में राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर न्यायपीठ द्वारा तारीख 28 मई, 2009 को पारित किए गए उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 489ग और दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 489ख के अधीन की गई अपीलार्थियों की दोषसिद्धि कायम रखी गई और धारा 489ग के अधीन 3 वर्ष के कठोर कारावास और धारा 120ख के साथ पठित धारा 489ख के अधीन 5 वर्ष के कठोर कारावास और एक-एक हजार रुपए के जुर्माने का संदाय किए जाने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त एक मास का कारावास भोगने का दंडादेश कायम रखा गया । अपीलार्थी महबूब अली और फीरोज को दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 489ख के अधीन दोषसिद्ध करते हुए 5 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त एक मास का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । अन्य अभियुक्तों अर्थात् लियाकत अली और पूरन मल को भी दोषसिद्ध किया गया ।

2. अभियोजन पक्षकथन के अनुसार तारीख 6 जनवरी, 2004 को पुलिस थाना रामगंज, जयपुर, राजस्थान में 2003 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 459 दर्ज कराई गई । अभियुक्त पूरन मल के कब्जे से सौ-सौ रुपए के पांच करेंसी नोट बरामद किए गए । तीन करेंसी नोटों के नम्बर एक जैसे थे । शेष दो नोटों पर भी वही नंबर था जो कि स्पष्ट रूप से कूटरचित दिखाई दे रहा था । उसे ज्ञापन (प्रदर्श पी-6) के अनुसार गिरफ्तार किया गया और बरामदगी ज्ञापन (प्रदर्श पी-7) तैयार किया गया । दंड संहिता की धारा

120ख के साथ पठित धारा 489ग के अधीन मामला दर्ज किया गया । परिप्रश्न किए जाने पर पूरन मल ने बताया कि उसने ये करेंसी नोट महबूब, फीरोज और राम गोपाल से लिए थे । अभियुक्त पूरन मल द्वारा जानकारी दिए जाने पर महबूब और फीरोज को गिरफ्तार किया गया । राम गोपाल के मकान से पूरन मल के कब्जे से 41,900/- रुपए के करेंसी नोट बरामद किए गए । महबूब और फीरोज ने पुलिस को बताया कि उन्होंने ये करेंसी नोट अंजू अली से प्राप्त किए थे और वे अंजू अली की शनाख्त कर सकते हैं । उन्हें दिल्ली ले जाया गया । महबूब और फीरोज द्वारा शनाख्त किए जाने पर अंजू अली को गिरफ्तार किया गया और उसके कब्जे से 1,75,000/- रुपए के जाली नोट बरामद किए गए । अंजू अली ने बताया कि वह अभियुक्त मजहर से ऐसे करेंसी नोट लिया करता था । अंजू अली द्वारा जानकारी दिए जाने और शनाख्त किए जाने पर मजहर को गिरफ्तार किया गया और उसकी तलाशी लिए जाने पर 48,220/- रुपए के जाली करेंसी नोट बरामद किए गए । मजहर ने यह बताया कि वह लियाकत अली से जाली करेंसी नोट लिया करता था । लियाकत अली को गिरफ्तार किया गया और उसके कब्जे से 2,39,500/- रुपए के करेंसी नोट बरामद किए गए । 500/- रुपए के कुछ जाली नोट ऐसे भी बरामद किए गए थे जो अभी आधे तैयार थे और लियाकत के कब्जे से नोट छापने के उपकरण भी बरामद किए गए और इस अभियुक्त द्वारा जानकारी दिए जाने पर उसकी इंडिका कार से 2 लाख रुपए के जाली करेंसी नोट और बरामद किए गए ।

3. पूरन मल, अंजू अली, मजहर और लियाकत अली के कब्जे से जाली नोट बरामद किए गए हैं । बरामद किए गए करेंसी नोटों को भारतीय सुरक्षा प्रेस, नासिक भेजा गया । भारतीय रिजर्व बैंक के प्रबंधक श्याम सिंह (अभि. सा. 16) ने यह कथन किया है कि अभिगृहीत किए गए करेंसी नोट कूटकृत थे । (इस संबंध में) एक रिपोर्ट (प्रदर्श पी-34) प्रस्तुत की गई । यह सामग्री भंडार गृह में किस प्रकार जमा की गई, यह साक्ष्य भी अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया है । सुरक्षा प्रेस द्वारा भेजी गई रिपोर्टें प्रदर्श पी-46, पी-48 और पी-51 हैं । थानाध्यक्ष रघुवीर सिंह ने पूरन मल, अंजू अली और मजहर आदि से बरामद की गई वस्तुओं की शनाख्त की ।

4. अभियुक्त महबूब को ज्ञापन पी-4 के अनुसार गिरफ्तार किया गया । उसने ज्ञापन प्रदर्श पी-41 के अनुसार जानकारी दी । अभियुक्त फीरोज ने

ज्ञापन प्रदर्श पी-41 के अनुसार भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन जानकारी प्रस्तुत की । दोनों अभियुक्तों ने यह बताया कि उन्हें कूटरचित करेंसी नोट दिल्ली के निवासी उसमान भाई और अंजू अली द्वारा दिए गए थे, और वे उनकी शनाख्त कर सकते हैं । यह जानकारी अन्वेषक अधिकारी रघुवीर सिंह द्वारा अभिलिखित की गई । दोनों अभियुक्तों ने गली नं. 13, सीलमपुर, दिल्ली में एक मारुति कार डी एल 3सी वी 2927 की शनाख्त की । उन्होंने कार में बैठे व्यक्ति को भी पहचान कर बताया कि वह अंजू अली है और इस संबंध में ज्ञापन प्रदर्श पी-16 तैयार किया गया और उस पर दो साक्षियों मुकेश यादव (अभि. सा. 13) और विनोद शर्मा (अभि. सा. 11) के हस्ताक्षर भी प्राप्त किए । महावीर (अभि. सा. 24) अन्वेषक अधिकारी रघुवीर सिंह के साथ था । यद्यपि विनोद शर्मा (अभि. सा. 11) पक्षद्रोही हो गया फिर भी उसने ज्ञापन प्रदर्श पी-16 पर अपने हस्ताक्षरों की शनाख्त की है और इस तथ्य का भी समर्थन किया है कि वह पुलिस के साथ दिल्ली गया था । वह वाहन सं. आर जे 147सी 4668 को चलाकर पुलिस को जयपुर से दिल्ली ले गया था । मुकेश यादव (अभि. सा. 13) ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है कि वह अपने वाहन (क्वालिस) सं. आर जे 14टी 5649 से पुलिस लेकर दिल्ली गया था । महबूब अली और फीरोज द्वारा अंजू अली की जो शनाख्त की गई है, उसका समर्थन भी किया गया है । ज्ञापन प्रदर्श पी-13 के अनुसार अंजू अली को गिरफ्तार किए जाने और उसकी तलाशी लिए जाने पर उसकी पैंट की दाईं जेब से पांच-पांच सौ रुपए के 350 करेंसी नोट बरामद किए गए और ये नोट भी जाली पाए गए ।

5. अभियुक्त अंजू अली ने तारीख 7 जनवरी, 2004 के ज्ञापन प्रदर्श पी-43 के अनुसार यह सूचना दी कि उसने पांच-पांच सौ रुपए वाले ये करेंसी नोट मजहर से प्राप्त किए थे और वह मजहर की शनाख्त कर सकता है । अंजू अली द्वारा शनाख्त किए जाने पर तारीख 9 जनवरी, 2004 को 8.15 बजे अपराह्न में मजहर को उस समय गिरफ्तार किया गया जब वह अंतर्राज्यीय बस अड्डे पर खड़ा हुआ था और वहां पर मेट्रो रेल का निर्माण कार्य चल रहा था । अभि. सा. 11 और अभि. सा. 13 दोनों ने इन ज्ञापनों पर अपने हस्ताक्षरों की पुष्टि की है । मजहर को ज्ञापन प्रदर्श पी-31 के अनुसार गिरफ्तार किया गया है । मजहर की तलाशी लिए जाने पर एक छोटी सी थैली में से, जो उसने अपने बाएं पैर के मोजे में छिपा रखी थी, ज्ञापन प्रदर्श पी-19 के अनुसार 500/- रुपए, 100/- रुपए और

20/- रुपए के करेंसी नोट बरामद किए गए । इसके अतिरिक्त विनोद शर्मा (अभि. सा. 11), मुकेश यादव (अभि. सा. 13) और महावीर सिंह (अभि. सा. 24) ने भी बरामदगी किए जाने और जानकारी दिए जाने के तथ्य का समर्थन किया है । मजहर से बरामद किए गए करेंसी नोटों की कुल राशि 48,220/- रुपए पाई गई ।

6. अभियोजन पक्ष ने कुल मिलाकर 28 साक्षियों की परीक्षा कराई और 53 दस्तावेज प्रदर्शित किए । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा 3 साक्षियों की परीक्षा कराई गई । विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों को उपर्युक्त रूप में दोषसिद्ध किया है, इसीलिए अपीलें की गई हैं ।

7. अपीलार्थी महबूब अली और मोहम्मद फीरोज की ओर से यह दलील दी गई कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन अभिलिखित अभियुक्तों के संस्वीकृति कथन ग्राह्य नहीं हैं क्योंकि अभियुक्तों ने ये कथन पुलिस अभिरक्षा में दिए थे । अभियुक्त महबूब अली और मोहम्मद फीरोज से कोई भी बरामदगी नहीं की गई है । इस प्रकार उनकी दोषसिद्धि अवैध है और अपास्त किए जाने योग्य है । अभियुक्त अंजू अली और मजहर की ओर से यह दलील दी गई है कि उनसे कोई भी बरामदगी साबित नहीं की गई है और उनकी दोषसिद्धि विधि की दृष्टि से गलत है ।

8. अंजू अली और मजहर की ओर से फाइल की गई अपील के संबंध में यह स्पष्ट है कि अंजू अली को अभियुक्त महबूब और फीरोज द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर ज्ञापन प्रदर्श पी-41 और पी-42 के अनुसार गिरफ्तार किया गया था और उपर्युक्त अभियुक्तों द्वारा उसकी शनाख्त उस समय की गई जब वह गली नं. 13, सीलमपुर, दिल्ली में मारुति कार में था । विनोद (अभि. सा. 11) और मुकेश यादव (अभि. सा. 13) ने ज्ञापन प्रदर्श पी-16 पर हस्ताक्षर किए हैं । इस तथ्य का समर्थन महावीर सिंह (अभि. सा. 24) द्वारा भी किया गया है । यद्यपि विनोद पक्षद्रोही हो गया था, फिर भी उसने ज्ञापन प्रदर्श पी-16 पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए हैं और इस तथ्य का भी समर्थन किया है कि वह पुलिस के साथ दिल्ली गया था । मुकेश यादव (अभि. सा. 13) ने भी यह समर्थन किया है कि वह पुलिस लेकर दिल्ली गया था और महबूब तथा फीरोज ने यह इंगित किया कि अंजू अली कार में है, जिसके आधार पर उसे ज्ञापन प्रदर्श पी-30 के अनुसार गिरफ्तार किया गया । अंजू अली की तलाशी लिए जाने पर 500/- रुपए वाले 350 जाली करेंसी नोट ज्ञापन प्रदर्श पी-26 के अनुसार

बरामद किए गए और उन्हें अभिगृहीत किया गया जिनकी कुल राशि 1,75,000/- रुपए पाई गई ।

9. अभियुक्त मजहर के संबंध में अभियुक्त अंजू अली द्वारा जानकारी प्रदर्श पी-43 दी गई । अंजू अली ने मजहर की शनाख्त की जब वह अंतर्राज्यीय बस अड्डे के निकट खड़ा हुआ था । मुकेश (अभि. सा. 13) ने ज्ञापन प्रदर्श पी-43 को साबित किया है । विनोद (अभि. सा. 11) ने प्रदर्श पी-31 पर भी अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए हैं । अभियुक्त मजहर से बरामदगी ज्ञापन प्रदर्श पी-19 के अनुसार 500/- रुपए, 100/- रुपए और 20/- रुपए वाले करेंसी नोट बरामद किए गए जिनका कुल योग 48,220/- रुपए पाया गया । भारतीय सुरक्षा प्रेस नासिक रोड द्वारा दी गई उपर्युक्त रिपोर्ट के आधार पर इन करेंसी नोटों को जाली पाया गया । सभी करेंसी नोटों को कूटरचित पाया गया । प्रबंधक श्याम सिंह (अभि. सा. 16) ने यह साबित किया है कि करेंसी नोट भारतीय सुरक्षा प्रेस को भेजे गए थे । करेंसी नोट कूटरचित साबित किए गए हैं और इस संबंध में दी गई रिपोर्ट की शुद्धता पर इन अपीलों में प्रश्न नहीं उठाया गया है ।

10. महबूब अली और फीरोज द्वारा फाइल की गई अपील में उनकी ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन अभिलिखित अभियुक्त का संस्वीकृति कथन ग्राह्य नहीं है क्योंकि उनके कब्जे से करेंसी नोटों की कोई भी बरामदगी नहीं की गई है । पुलिस अभिरक्षा में की गई संस्वीकृति ग्राह्य नहीं है । इस प्रकार अपीलार्थी महबूब और मोहम्मद फीरोज को दोषसिद्ध करने के लिए कोई भी साक्ष्य नहीं है ।

11. मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सर्वप्रथम पूरन मल को गिरफ्तार किया गया था और उसके कब्जे से कूटरचित करेंसी नोट बरामद किए गए थे । उसके द्वारा दी गई इस जानकारी के आधार पर कि ये करेंसी नोट उसे अभियुक्त महबूब और फीरोज द्वारा दिए गए थे, इस प्रकार उन्होंने संपूर्ण घटनाक्रम को स्पष्ट किया है जिसके परिणामस्वरूप अंजू अली को गिरफ्तार किया गया । जब महबूब अली और फीरोज को जयपुर से दिल्ली ले जाया गया था और अंजू अली से कूटरचित करेंसी नोट बरामद किए गए थे, उस समय अंजू अली को शनाख्त किए जाने पर गिरफ्तार किया गया था । अंजू अली ने एक अन्य सह-अभियुक्त मजहर की भी शनाख्त की और उसके कब्जे से भी जाली नोट बरामद किए गए और मजहर द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर लियाकत अली को

गिरफ्तार किया गया और उसके कब्जे से भी कूटरचित नोट बरामद किए गए और जाली नोट छापने के यंत्र सहित अध-छपे करेंसी नोट भी बरामद किए गए ।

12. साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि किसी पुलिस आफिसर से की गई कोई भी संस्वीकृति किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध साबित न की जाएगी । धारा 26 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि कोई भी संस्वीकृति, जो किसी व्यक्ति ने उस समय की हो जब वह पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साबित न की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात् उपस्थिति में न की गई हो । धारा 27 परंतुक के रूप में है जिसके अधीन यह अधिकथित किया गया है कि अभियुक्त से प्राप्त की गई कितनी जानकारी साबित की जा सकती है ।

13. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के लागू किए जाने के लिए, संस्वीकृति कथन के ग्राह्य भाग से ऐसे तथ्य की जानकारी मिलनी चाहिए जो किसी खोज का तत्काल परिणाम हो और कथन का वह भाग ही विधिक साक्ष्य कहलाएगा न कि शेष भाग । यदि किसी कथन में कोई नई खोज सामने आती है या ऐसी कोई नई वस्तु बरामद होती है जो अभियुक्त के संस्वीकृति कथन दिए जाने के पूर्व पुलिस अधिकारी की जानकारी में नहीं थी, साक्ष्य में ग्राह्य होगी ।

14. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 तब निर्दिष्ट की जाती है जब किसी "तथ्य" के बारे में अभिसाक्ष्य दिया जाता है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के अधीन "तथ्य" को परिभाषित किया गया है जो निम्न प्रकार है :–

> "'तथ्य' से अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत आती है .....
>
> (1) ऐसी कोई वस्तु, वस्तुओं की अवस्था, या वस्तुओं का संबंध जो इंद्रियों द्वारा बोधगम्य हो ;
>
> (2) कोई मानसिक दशा, जिसका भान किसी व्यक्ति को हो ;
>
> **दृष्टांत**
>
> (क) यह कि अमुक स्थान में अमुक क्रम से अमुक पदार्थ व्यवस्थित है ।
>
> (ख) यह कि किसी मनुष्य ने कुछ सुना या देखा, एक तथ्य है ।
>
> (ग) यह कि किसी मनुष्य ने अमुक शब्द कहे, एक तथ्य है ।

(घ) यह कि कोई मनुष्य अमुक राय रखता है, अमुक आशय रखता है, सद्भावपूर्वक या कपटपूर्वक कार्य करता है, या किसी विशिष्ट शब्द को विशिष्ट भाव में प्रयोग करता है, या उसे विशिष्ट संवेदना का भान है या किसी विनिर्दिष्ट समय में था, एक तथ्य है ।

(ङ) यह कि किसी मनुष्य की अमुक ख्याति है, एक तथ्य है ।

'सुसंगत' – एक तथ्य दूसरे तथ्य से सुसंगत कहा जाता है, जबकि तथ्यों की सुसंगति से संबंधित इस अधिनियम के उपबंधों में विनिर्दिष्ट प्रकारों में से किसी भी प्रकार से वह तथ्य उस दूसरे तथ्य से संबंधित हो ।"

15. यह स्पष्ट है कि अभियुक्त महबूब अली और अभियुक्त फीरोज द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर अंजू अली को गिरफ्तार किया गया था । यह तथ्य कि अंजू अली कूटरचित करेंसी नोटों का काम करता था, पुलिस की जानकारी में नहीं था । दोनों अभियुक्तों के कथन से नया तथ्य जो कि पुलिस की जानकारी में नहीं था, सामने आया है और सह-अभियुक्त की गिरफ्तारी हुई है । महबूब और फीरोज ने अंजू अली की शनाख्त की और परिणामस्वरूप उनके जाली करेंसी नोटों का काम करने वाले रैकेट का पर्दाफाश हुआ । इस प्रकार जानकारी ज्ञापन के अनुसार उपर्युक्त अभियुक्तों द्वारा दी गई जानकारी स्पष्ट रूप से ग्राह्य है जिसके आधार पर अभियुक्त अंजू अली की शनाख्त की गई और उसे गिरफ्तार किया गया और जैसाकि पहले ही कथन किया गया है, अंजू अली के कब्जे से जाली करेंसी नोट बरामद किए गए थे । ज्ञापन प्रदर्श पी-41 और पी-42 के अंतर्गत दी गई जानकारी के अनुसार अभियुक्त अंजू अली के अपराध में आलिप्त होने के संबंध में पुलिस को ऐसा तथ्य पता चला जो उसे पहले से मालूम नहीं था । पुलिस अंजू अली से अवगत नहीं थी और न ही उसे इस तथ्य की कोई जानकारी थी कि अंजू अली जाली करेंसी नोटों का काम करता है जो उसके कब्जे से बरामद भी किए गए थे । इस प्रकार उपर्युक्त अभियुक्त महबूब और फीरोज के कथनों को साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 स्पष्ट रूप से लागू नहीं होती है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन जो रोक लगाई गई है वह वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से हटा ली गई है । अभियुक्तों के कथनों से ऐसे तथ्यों की खोज हुई है जिनसे अन्य अभियुक्तों की सह-अपराधिता साबित होती है और परिस्थितियों की संपूर्ण शृंखला स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करती है कि

अभियुक्तों ने षड्यंत्र रचा है जैसाकि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है ।

16. इस न्यायालय ने **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली)** बनाम **नवजोत संधू** उर्फ **अफसान गुरु**[1] वाले मामले में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में निर्दिष्ट तथ्य के प्रकट होने के प्रश्न पर विचार किया है । इस न्यायालय ने इस संबंध में अनेक विनिश्चयों पर विचार किया है और **पुलुकुटी कोट्टया और अन्य** बनाम **एम्परर**[2] वाले मामले में के विनिश्चय को निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "125. हमारा यह मत है कि **कोट्टया** वाला मामला (ए. आई. आर. 1947 पी. सी. 67) इस प्रतिपादना के लिए एक नजीर है कि 'तथ्य का प्रकटीकरण' प्रस्तुत की गई या पाई गई वस्तु के तुल्य नहीं हो सकता । यह उससे कहीं अधिक है । 'तथ्य का प्रकटीकरण' तथ्य के इस कारण से सृजित हो कि अभियुक्त द्वारा दी गई सूचना उसकी जानकारी या चेतना को प्रदर्शित करे कि वह तथ्य किसी विशिष्ट स्थान पर किस प्रकार विद्यमान था ।
>
> 126. अब हम इस न्यायालय की उन नजीरों पर विचार करेंगे जिनमें **कोट्टया** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लिया गया था । **कोट्टया** (उपर्युक्त) वाले मामले में किए गए विनिश्चय का विनिश्चयाधार निर्णय के रेखांकित पैरा में ऊपर दिखाया गया है जिसे इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है ।
>
> 127. **कोट्टया** (उपर्युक्त) वाले मामले के विनिश्चयाधार का मूल सार इस न्यायालय द्वारा महाराष्ट्र राज्य **बनाम** दामू (उपरोक्त) वाले मामले में स्पष्ट किया गया है । इस निर्णय के पृष्ठ 283 पर पैरा 35 में न्यायमूर्ति थॉमस ने यह मत व्यक्त किया है –
>
> > 'पुलुकुटी कोट्टया **बनाम** एम्परर (उपरोक्त) वाले मामले में प्रिवी काउंसेल द्वारा दिया गया विनिश्चय इस निर्वचन के समर्थन में अत्यधिक कोट की जाने वाली नजीर है कि धारा में परिकल्पित 'प्रकट तथ्य' वह स्थान होता है जहां से वस्तु बरामद की गई है और 'प्रकट तथ्य' उस वस्तु की अभियुक्त को

---

[1] (2005) 11 एस. सी. सी. 600.

[2] ए. आई. आर. 1947 पी. सी. 67.

जानकारी भी है किंतु दी गई सूचना का स्पष्ट संबंध इसी प्रभाव का होना चाहिए ।'

मोहम्मद इनायतुल्लाह **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(1976) 1 एस. सी. सी. 828] वाले मामले में न्यायमूर्ति सरकारिया ने, यह स्पष्ट करते हुए साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में उल्लिखित 'प्रकट तथ्य' अभिव्यक्ति भौतिक या मानसिक तथ्य तक ही सीमित नहीं है जिसका इन्द्रियों द्वारा आभास किया जा सके, बल्कि इसके अंतर्गत मानसिक तथ्य भी आता है, **पुलुकुटी कोट्टया** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सार का उल्लेख करते हुए 'प्रकट तथ्य' के अर्थ को समझाया है । विद्वान् न्यायाधीश ने न्यायपीठ की ओर से इस निर्णय के पृष्ठ 832 पर पैरा 13 में यह मत व्यक्त किया है –

'अब यह निष्पक्ष रूप से तय हो गया है कि 'प्रकट तथ्य' के अंतर्गत न केवल प्रस्तुत की गई भौतिक वस्तुएं आती हैं बल्कि वह स्थान भी आता है जहां से लेकर वह वस्तु प्रस्तुत की गई है और उससे संबंधित अभियुक्त की जानकारी भी इसके अंतर्गत आती है । {पुलुकुटी कोट्टया **बनाम** एम्परर (उपरोक्त) और उदय भान **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य [1962] सप्ली. (2) एस. सी. आर. 830 वाले मामले देखिए ।'}"

17. **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **दामू गोपीनाथ शिन्दे और अन्य**[1] वाले मामले में अभियुक्त द्वारा किया गया यह कथन कि बालक का शव एक स्थान विशेष पर लाया गया था और घटनास्थल से कांच का टूटा हुआ टुकड़ा बरामद किया गया जो उक्त प्रयोजन के लिए अभिकथित रूप से प्रयोग की गई सह-अभियुक्त की मोटरसाइकिल की पीछे वाली लाइट का टूटा हुआ भाग था । अभियुक्त के कथन से इस तथ्य का प्रकटीकरण होता है कि अभियुक्त उस मोटरसाइकिल विशेष द्वारा शव को घटनास्थल पर लेकर आया था, (ऐसी स्थिति में) अभियुक्त का यह कथन साक्ष्य में ग्राह्य होगा । इस न्यायालय ने इस प्रकार अधिकथित किया है :–

"36. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में उल्लिखित मूल सिद्धांत पश्चात्वर्ती घटनाओं द्वारा पुष्टिकरण किए जाने का सिद्धांत है । यह सिद्धांत इस बात पर आधारित है कि यदि किसी कैदी से प्राप्त की गई सूचना के आधार पर कोई तथ्य प्रकट होता है तब ऐसा

[1] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1691.

प्रकटीकरण इस बात की गारंटी देता है कि कैदी द्वारा दी गई सूचना सत्य है । यह जानकारी संस्वीकृत हो सकती है और अनपराधिक प्रकृति की भी, किंतु यदि इसके परिणामस्वरूप कोई तथ्य प्रकट होता है, तब यह एक विश्वसनीय सूचना बन जाती है । इस प्रकार विधान-मंडल ने ऐसी जानकारी के इस भाग को ही सीमित करते हुए साक्ष्य में प्रयोग किए जाने के लिए अनुज्ञात किया है । यह सुस्थापित है कि किसी वस्तु की बरामदगी तथ्य का प्रकटीकरण नहीं है जैसाकि इस धारा में परिकल्पित है । पुलुकुटी कोट्टया **बनाम** एम्परर (ए. आई. आर. 1947 पी. सी. 67) वाले मामले में इस निर्वचन के समर्थन के लिए अत्यधिक कोट की जाने वाली नजीर है कि इस धारा में परिकल्पित 'प्रकट तथ्य' के अंतर्गत वह स्थान जहां से लाकर वस्तु प्रस्तुत की गई है और उससे संबंधित अभियुक्त की जानकारी भी आती है किंतु दी गई जानकारी का संबंध स्पष्ट रूप से उस प्रभाव का होना चाहिए ।

37. निःसंदेह, साक्ष्य में ग्राह्य किए जाने के लिए सूचना का केवल वह भाग ही अनुज्ञात किया जाता है जो 'स्पष्ट रूप से इस प्रकार प्रकट किए गए साक्ष्य से संबंधित होता है ।' किंतु सूचना को ग्राह्य बनाने के लिए इतना छोटा नहीं किया जा सकता कि उससे कोई अर्थ या आशय न निकले । ग्राह्य सूचना का विस्तार इतना होना चाहिए कि उसके भाव को समझा जा सके । इस मामले में अभि. सा. 44 द्वारा प्रकट किया गया तथ्य यह है कि मुकिन्द तोरात (अभियुक्त 3) दीपक के शव को मोटरसाइकिल से घटनास्थल पर लाया था ।

38. इस एक जानकारी के आधार पर किस प्रकार तथ्य प्रकट हुआ ? निःसंदेह उसी नहर से दीपक के शव की बरामदगी उस जानकारी के परिणामस्वरूप हुई है जो अभि. सा. 44 ने प्राप्त की थी । यदि अभियुक्त से प्राप्त जानकारी के अनुसार और उसके परिणामस्वरूप कुछ अधिक प्रकट नहीं होता, तब यह बिल्कुल भी नहीं माना जाता कि किसी भी तथ्य का प्रकटीकरण हुआ है । किंतु चूंकि कांच का टुकड़ा घटनास्थल से बरामद किया गया था और वह टुकड़ा गुरुजी (अभियुक्त 2) की मोटरसाइकिल के पीछे की ओर लगी लाइट (बैक लाइट) का भाग था, इसलिए बिल्कुल यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अन्वेषण अधिकारी को यह तथ्य प्रकट हुआ

कि गुरुजी (अभियुक्त 2) उस मोटरसाइकिल से शव को घटनास्थल पर लेकर आया था ।

39. तथ्य के उक्त प्रकटीकरण को ध्यान में रखते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करना चाहेंगे कि गुरुजी (अभियुक्त 2) द्वारा दी गई यह जानकारी कि दीपक का शव एक घटनास्थल पर मोटरसाइकिल से लाया गया था, साक्ष्य में ग्राह्य है । अतः इस जानकारी से अभियोजन पक्षकथन ऊपर उल्लिखित सीमा तक साबित हो जाता है ।"

18. **इस्माईल** बनाम **एम्परर**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि एक अभियुक्त द्वारा दी गई जानकारी के परिणामस्वरूप एक अन्य अभियुक्त का पता लगाया जाता है तब पुलिस को दिया गया पहले अभियुक्त का कथन जिसमें उसने सह-अभियुक्त के पते-ठिकाने का उल्लेख किया था, पहले अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होगा ।

19. **सूबेदार और अन्य** बनाम **किंग एम्परर**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्त द्वारा दिया गया ऐसा कथन जो स्वयं अभियुक्त और अन्य व्यक्तियों को अपराध में आलिप्त करता हो, "प्रथम इत्तिला रिपोर्ट" नहीं कहलाया जा सकता । तथापि, यह अभिनिर्धारित किया गया कि यद्यपि इसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट नहीं माना जा सकता फिर भी इसका प्रयोग साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन दी गई सूचना के रूप में किया जा सकता है । इस प्रकार यह अभिनिर्धारित किया गया है :–

"इकबाली साक्षी और अपीलार्थियों में से एक अभियुक्त को रंगे हाथों गिरफ्तार किया गया । उन्होंने उस अधिकारी के समक्ष संस्वीकृति कथन सहित कई कथन किए जिसने उन्हें गिरफ्तार किया था । उन्होंने आगे और भी कथन दिए और गुट के अन्य सदस्यों के नामों की सूची भी दी । उसके आधार पर अन्वेषण अधिकारी ने अपने उच्चतर अधिकारी को एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उस जानकारी का उल्लेख किया गया था जो उसे प्राप्त हुई थी और उसमें उन व्यक्तियों के नाम भी थे जिनका पता गिरफ्तार किए गए

---

[1] ए. आई. आर. 1946 सिंध 43.

[2] ए. आई. आर. 1924 इलाहाबाद 207.

उन दो अभियुक्तों से चला था । विद्वान् न्यायाधीश ने किसी प्रकार (मुश्किल से ही) इस पुलिस रिपोर्ट को, जोकि मात्र संस्वीकृति है, 'प्रथम इत्तिला रिपोर्ट' कहा है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 के अधीन सुज्ञात प्राविधिक रिपोर्ट है जिसके अंतर्गत संज्ञेय अपराध के संबंध में प्रथम सूचना दी जाती है । यह आम तौर पर शिकायतकर्ता या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा दी जाती है । अभियुक्त द्वारा दिए गए कथन की भाषा किसी भी प्रकार की हो सकती है । अभियुक्त द्वारा दिए गए कथन की कौतुकता को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट कहा जाना मुझे इतना आश्चर्यजनक लगा कि जब अपीलार्थी के काउंसेल ने न्यायाधीश द्वारा 'प्रथम इत्तिला रिपोर्ट' का प्रयोग किए जाने पर मेरे समक्ष दलील दी, मैंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया । विद्वान् न्यायाधीश ने यह महसूस किया कि वह संस्वीकृति कथन पर विचार कर रहे हैं किंतु वे यह मूल्यांकन करने के लिए क्षणभर के लिए असफल हो गए कि स्वयं दस्तावेज अग्राह्य है और सूचना का अवलंब केवल धारा 27 के अधीन ही लिया जा सकता था । अर्थात् अन्य अभियुक्त के संबंध में, साक्ष्य देने वाला अधिकारी यह कह सकता है – 'मैंने नारायण और ठाकुरी से प्राप्त सूचना के परिणामस्वरूप उन्हें गिरफ्तार किया है । जब मैंने उन्हें गिरफ्तार किया तब उन्होंने मेरे समक्ष जो कथन किया उसके आधार पर मैंने इन व्यक्तियों को गिरफ्तार किया ।' ऐसी जानकारी का धर्मज रूप से जो प्रयोग किया जा सकता है, वह मात्र यही है कि जब विचारण के दौरान अभियुक्त के विरुद्ध प्रत्यक्ष साक्ष्य दिया जाता है और अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य होता है, तब प्रतिरक्षा पक्ष यह पूछने के लिए स्वतंत्र है कि उस समय किसी अभियुक्त विशेष के नाम का उल्लेख किया गया था या नहीं .....।"

20. उपुर्यक्त अभिव्यक्तियों (सिद्धांत-वाक्यों) पर विचार करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि महबूब अली और मोहम्मद फीरोज के कथन के आधार पर तथ्य प्रकट हुआ था । सह-अभियुक्त को अभियुक्त महबूब और फीरोज द्वारा दी गई शनाख्त के आधार पर गिरफ्तार किया गया था । वह जाली करेंसी नोटों का काम कर रहा था, यह जानकारी पुलिस को उन्हीं के द्वारा मिली थी । कूटरचित करेंसी नोटों की बरामदगी भी अंजू अली से हुई थी । इस प्रकार, उपर्युक्त अभियुक्तों को सह-अभियुक्त अंजू अली की

जानकारी थी जिसे उनके द्वारा शनाख्त किए जाने पर गिरफ्तार किया गया था । ये तथ्य पुलिस की जानकारी में नहीं थे, इसलिए तथ्य का प्रकटीकरण करने वाले अभियुक्तों के कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार स्पष्ट रूप से ग्राह्य हैं जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और 26 में अंतर्विष्ट पुलिस अभिरक्षा में किए गए संस्वीकृति कथन की अग्राह्यता के बाबत सामान्य उपबंधों के प्रति एक अपवाद है ।

21. परिणामतः, हमें इन अपीलों में कोई सार दिखाई नहीं देता है । विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दंडादेश जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, समुचित पाए गए हैं । इस प्रकार गुणता के अभाव में ये अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस.

[2016] 3 उम. नि. प. 18

दर्शन सिंह

बनाम

पंजाब राज्य

6 जनवरी, 2016

न्यायमूर्ति दीपक मिश्र और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 और 11 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302] – हत्या – अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् – स्कूल का उपस्थिति रजिस्टर अभिगृहीत न किया जाना – घटना वाले दिन के लिए अपीलार्थी द्वारा एक दिन पूर्व छुट्टी का आवेदन दिया जाना – अपीलार्थी द्वारा स्कूल में आकस्मिक छुट्टी का आवेदन जिस दिन के लिए दिया गया उसी दिन घटना घटित हुई और घटनास्थल पर अपीलार्थी की मौजूदगी साबित की गई तथा साथ ही स्कूल रजिस्टर अभिगृहीत नहीं किया गया, ऐसी स्थिति में अपीलार्थी का अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् साबित नहीं माना जाएगा और उसकी दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

इस मामले में अभियुक्त दर्शन सिंह और अन्य (एक ओर) तथा शिकायतकर्ता (दूसरी ओर) के बीच खेतों में सिंचाई को लेकर विवाद चल रहा था । तारीख 17 फरवरी, 1995 को लगभग 11.00 बजे पूर्वाह्न में दोनों पक्षों के बीच झगड़ा हो गया । परिणामस्वरूप अभियुक्त दर्शन सिंह सहित कई अभियुक्तों के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया और विचारण न्यायालय ने कई अभियुक्तों को विभिन्न अपराधों का दोषी पाया किंतु दर्शन सिंह, बूटा सिंह और लक्ष्मण दास को दोषमुक्त कर दिया । दोषसिद्ध किए गए अभियुक्तों अर्थात् सुरेन सिंह, झंडा सिंह, जसमैल सिंह और पाल सिंह ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने झंडा सिंह, जसमैल सिंह और पाल सिंह को दोषमुक्त कर दिया किंतु सुरेन सिंह की दोषसिद्धि कायम रखी । राज्य ने विचारण न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करके दर्शन सिंह की दोषमुक्ति को चुनौती दी जिसके परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय ने दर्शन को संता सिंह की हत्या का दोषी पाया । इसके पश्चात् दर्शन सिंह ने उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को उचित ठहराते हुए दर्शन सिंह की अपील खारिज कर दी । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने अपीलार्थी दर्शन सिंह की प्रतिरक्षा के अभिवाक् पर विचार किया जिसे विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था किंतु उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किया गया था । इस तथ्य पर कोई भी आक्षेप नहीं किया गया है कि अपीलार्थी दर्शन सिंह सीनियर सेकेन्डरी स्कूल, जनेरियन में प्रयोगशाला सहायक के रूप में कार्यरत था । प्रतिरक्षा साक्षियों के कथनों और अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के पश्चात्, न्यायालय, उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत है कि अभियुक्त दर्शन सिंह ने अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् गलत किया है । अभिलेख पर यह साबित हो गया है कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट, फरीदपुर के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107/151 के अधीन चल रही कार्यवाहियों में उसे 17 फरवरी, 1995 को उपस्थित होना था । आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा दर्शन सिंह की अपराध में मौजूदगी और भूमिका का विस्तार से वर्णन किया गया है, यह विश्वास करना कठिन है कि तारीख 17 फरवरी, 1995 को आकस्मिक अवकाश पर जाने के लिए दर्शन सिंह ने तारीख 16 फरवरी, 1995 को आवेदन किया था और अगले

दिन अर्थात् तारीख 17 फरवरी, 1995 को पूर्वाह्न में स्कूल में उपस्थित था और उसने उसके पश्चात् अपराह्न में छुट्टी ली थी । इस घटना के तत्काल पश्चात् उपस्थिति रजिस्टर को अभिगृहीत नहीं किया गया था । अपीलार्थी का अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् ढुलमुल है । अन्यत्र का अर्थ "कहीं और" है । अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् दंड संहिता के अध्याय IV में अंतर्विष्ट सामान्य अपवाद में नहीं आता है । यह साक्ष्य का एक नियम है जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 11 के अधीन अनुमोदित है । तथापि, अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध मामला साबित किए जाने के पश्चात्, प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् साबित किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त शर्त पूरी की गई है । (पैरा 16 और 17)

अपीली दांडिक अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 2099.

1998 की दांडिक अपील सं. 209 और 568 तथा 1998 की दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 654 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा पारित किए गए तारीख 2 सितंबर, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री के. टी. एस. तुलसी (ज्येष्ठ अधिवक्ता), कुवैर बौद्ध, नवन दीप मट्टा, नीरज गुप्ता और राजकमल
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री सौरभ अजय गुप्ता (अपर महाधिवक्ता), निशांत बिशनोई और कुलदीप सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत ने दिया ।

न्या. पंत – 1998 की दांडिक अपील सं. 209 और 568 तथा 1998 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 654 में तारीख 2 सितंबर, 2008 को पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय चंडीगढ़ द्वारा पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई है । राज्य द्वारा फाइल की गई अपील जो वर्तमान अपीलार्थी दर्शन सिंह की दोषमुक्ति के विरुद्ध फाइल की गई थी, मंजूर की गई और दर्शन सिंह की दोषमुक्ति को उलट दिया गया । वर्तमान अपीलार्थी को उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास भोगने तथा 5,000/-

रुपए जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त छह मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था । अपीलार्थी दर्शन सिंह को "दंड संहिता" की धारा 324 के अधीन दंडनीय अपराध का भी दोषी पाया गया था और एक वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भोगने तथा 1,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त दो मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया)

2. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है और अभिलेख पर प्रस्तुत दस्तावेजों का परिशीलन किया है ।

3. अभियोजन पक्षकथन, संक्षेप में, इस प्रकार है कि शिकायतकर्ता और उसके नातेदार एक ओर और दूसरी ओर अभियुक्तों, के बीच खेतों की सिंचाई को लेकर विवाद चल रहा था । इस विवाद के कारण, एक दूसरे के बीच हमला किए जाने की घटनाएं पहले भी हो चुकी थीं । इन परिस्थितियों में दोनों पक्षकार कार्यपालक मजिस्ट्रेट, फरीदकोट के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 107/151 के अधीन कार्यवाहियों में उपस्थित हो रहे थे । तारीख 17 फरवरी, 1995 को शिकायतकर्ता अमरीक सिंह (अभि. सा. 1), राज सिंह (अभि. सा. 3), सुखचैन सिंह (अभि. सा. 2), हरबंश सिंह (मृतक) और उनके पिता मंदेर सिंह तथा चचेरे-तयेरे भाई गुरुसेवक सिंह मामा, संत सिंह (एक अन्य मृतक) और बूटा सिंह न्यायालय में पेश होने के लिए गए । अभियुक्त की ओर से सुरेन सिंह, जसमैल सिंह, दर्शन सिंह (वर्तमान अपीलार्थी), झंडा सिंह और बूटा सिंह उस तारीख को न्यायालय में पेश होने के लिए पहुंचे । लगभग 11.00 बजे पूर्वाह्न में दोनों दलों के बीच झगड़ा हो गया और गाली-गलौज आरंभ हो गई, सुरेन सिंह ने बचन सिंह के मौजूद होने पर आक्षेप किया जो कि शिकायतकर्ता अमरीक सिंह का नातेदार था और वह किसी भी मुकदमे में पक्षकार नहीं था । सुरेन सिंह ने जो कि एक अमृतधारी सिख है, अपनी सिरीसाहिब (छोटी कृपाण) निकाली और भजन सिंह पर वार किया । जब शिकायतकर्ता पक्ष ने उन्हें अलग-अलग करने का प्रयास किया, सुरेन सिंह ने मंदेर सिंह पर कृपाण से वार किया । सुरेन सिंह ने शिकायतकर्ता अमरीक सिंह के बाएं कंधे पर भी वार किया और सुखचैन सिंह पर दो वार किए । सुखचैन अब भी नहीं रुका और उसने मृतक हरबंश सिंह पर कृपाण से वार किया । अभियुक्त दर्शन सिंह (अपीलार्थी) ने भी अपनी कृपाण निकाल ली और उसने एक अन्य मृतक अर्थात् संता सिंह पर वार करके क्षतियां पहुंचाईं ।

अभियुक्त दर्शन सिंह (अपीलार्थी) के संबंध में यह अभिकथन किया गया है कि उसने राज सिंह पर भी वार किए थे । ताल सिंह और झंडा सिंह ने गुरुसेवक सिंह को दबोच लिया और दर्शन सिंह ने उन पर हमला किया । अभियुक्त बूटा सिंह ने अन्य अभियुक्तों को उकसाया कि कोई भी जिंदा न बचे । आहतों को गुरु गोबिन्द सिंह मेडिकल अस्पताल, फरीदकोट पहुंचाया गया जहां पर संता सिंह और हरबंश सिंह की क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई ।

4. इस घटना की रिपोर्ट शिकायकर्ता अमरीक सिंह (अभि. सा. 2) द्वारा दर्ज कराई गई । इस रिपोर्ट के आधार पर 17 फरवरी, 1995 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 14 पुलिस थाना, नगर फरीदकोट में रजिस्ट्रीकृत की गई । इस मामले का अन्वेषण पुलिस उप-निरीक्षक रंजीत सिंह (अभि. सा. 17) द्वारा किया गया जिन्होंने शवों को अपने कब्जे में लिया, उन्हें मुहरबंद किया, मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार की और उन्हें शवपरीक्षण के लिए भेज दिया । डा. सरबजीत सिंह संधू (अभि. सा. 4) ने तारीख 17 फरवरी, 1995 को संता सिंह और हरबंश सिंह के शवों का शवपरीक्षण किया और शवपरीक्षण रिपोर्टें तैयार कीं । अन्य आहतों की भी चिकित्सा परीक्षा डा. सरबजीत सिंह संधू (अभि. सा. 4) और डा. मंजीत सिंह (अभि. सा. 5) द्वारा की गई । कुछ अभियुक्तों को भी क्षतियां पहुंची थीं जिनमें अभियुक्त पाल सिंह, अभियुक्त सुरेन सिंह और अभियुक्त झंडा सिंह हैं । साक्षियों से परिप्रश्न के पश्चात् और अन्वेषण पूरा होने पर सहायक पुलिस उप-निरीक्षक राम सिंह (अभि. सा. 16) ने जिन्होंने उप-निरीक्षक रंजीत सिंह से अन्वेषण का कार्यभार संभाला था, न्यायालय में अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया ।

5. मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के पश्चात् 1995 का सेशन मामला सं. 33 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । तारीख 7 जुलाई, 1995 को अपर सेशन न्यायाधीश, फरीदकोट ने सभी अभियुक्तों अर्थात् सुरेन सिंह, दर्शन सिंह (वर्तमान अपीलार्थी), पाल सिंह, झंडा सिंह, जसमैल सिंह, बूटा सिंह और लक्षमण दास सभी अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 148, 302/149 के अधीन अपराधों के लिए आरोप विरचित किए, साथ ही दंड संहिता की धारा 307/149, 324/149, 218 और 201 के अधीन भी आरोप विरचित किए गए जिसके लिए अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की ।

6. इसके पश्चात्, अभियोजन पक्ष ने अमरीक सिंह इत्तिलाकर्ता (अभि.

सा. 1), सुखचैन सिंह (अभि. सा. 2), राज सिंह (अभि. सा. 3) ये तीनों आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी, डा. सरबजीत सिंह संधू (अभि. सा. 4) जिन्होंने शवपरीक्षण किया था, डा. मंजीत सिंह (अभि. सा. 5), गुरचरनजीत कौर (अभि. सा. 6), अहलमद, एडीसी मोगा के आशुलिपिक उजागर सिंह (अभि. सा. 7) अर्थात् सहायक उप-निरीक्षक बसंत सिंह (अभि. सा. 8), पुलिस हैड कांस्टेबल सगन सिंह (अभि. सा. 9), पुलिस निरीक्षक पृथ्वी सिंह (अभि. सा. 10), प्रीति पाल सिंह एस. एस. टीचर (अभि. सा. 11), ड्राफ्टमैन धरम सिंह (अभि. सा. 12), मालखाना मुहर्रिर हैड कांस्टेबल बलजीत सिंह (अभि. सा. 13), डा. एस. पी. सिंघला (अभि. सा. 14), पुलिस उप-निरीक्षक शिवराज भूषण (अभि. सा. 15), पुलिस उप-निरीक्षक राम सिंह (अभि. सा. 16), पुलिस निरीक्षक रंजीत सिंह (अभि. सा. 17), पुलिस कांस्टेबल जगजीत सिंह (अभि. सा. 18) और अहलमद सतीश कालिया (अभि. सा. 9) की परीक्षा कराई ।

7. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त के समक्ष रखा गया । इसका उत्तर देते हुए अभियुक्तों ने यह अभिकथन किया कि उनके विरुद्ध जो साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है, गलत है । अपीलार्थी दर्शन सिंह ने अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् किया कि तारीख 17 फरवरी, 1995 को वह सीनियर सेकेन्डरी स्कूल, जनेरियन में प्रयोगशाला सहायक के रूप में ड्यूटी पर था । अन्य अभियुक्तों ने आत्म प्रतिरक्षा का अभिवाक् किया है । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से सतनाम कौर (प्रतिरक्षा साक्षी 1), राजेन्द्र कुमार (प्रतिरक्षा साक्षी 2), दर्शन सिंह अर्थात् प्राथमिक स्कूल, पाखी खुर्द के अध्यापक (प्रतिरक्षा साक्षी 3), अहलमद पवन कुमार (अभि. सा. 4) जे. बी. तिवारी (अभि. सा. 5) , मुखत्यार सिंह (अभि. सा. 6), ओम प्रकाश (अभि. सा. 7) और सहायक पुलिस उप-निरीक्षक हरविंदर पाल सिंह (अभि. सा. 8) की परीक्षा कराई गई ।

8. विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अभियुक्त बूटा सिंह, दर्शन सिंह और लक्षमण दास के विरुद्ध आरोप साबित नहीं किया गया है, इसलिए उन्हें दोषमुक्त किया गया । तथापि, अभियुक्त सुरेन सिंह को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हरबंश की हत्या कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया गया और सुखचैन सिंह की हत्या का प्रयास करने के लिए दंड संहिता की धारा 307 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया । सुरेन सिंह को दंड संहिता की धारा 324

के अधीन दोषसिद्ध किया गया । शेष अभियुक्तों अर्थात् झंडा सिंह, जसमैल सिंह और पाल सिंह को दंड संहिता की धारा 302/34, 307/34 और 324/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया । दंड की मात्रा के प्रश्न पर सुनवाई के पश्चात् विचारण न्यायालय ने दोषसिद्ध व्यक्तियों को विभिन्न दंडादेशों से दंडादिष्ट किया ।

9. दोषसिद्ध किए गए व्यक्ति अर्थात् सुरेन सिंह, झंडा सिंह, जसमैल सिंह और पाल सिंह ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी दोषसिद्धि को चुनौती दी और उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा झंडा सिंह, जसमैल सिंह और पाल सिंह की अपील मंजूर की, किंतु सुरेन सिंह द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी गई । इन अपीलों के साथ दर्शन सिंह की दोषमुक्ति के विरुद्ध संबद्ध राज्य द्वारा फाइल की गई 1998 की अपील सं. 568/1998 मंजूर की गई, और दर्शन सिंह को संता सिंह की हत्या कारित करने के लिए दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और उसे आजीवन कारावास भोगने तथा 5,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । दर्शन सिंह को गुरुसेवक सिंह और राज सिंह पर घातक आयुध से जानबूझकर क्षति कारित करने के लिए दंड संहिता की धारा 324 के अधीन भी दोषसिद्ध किया और एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 2 सितंबर, 2008 को पारित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, अभियुक्त दर्शन सिंह जिसे विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था, की ओर से यह अपील फाइल की गई है, किंतु उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के आदेश को उलट दिया गया और उसकी दोषसिद्धि कर दी गई ।

10. अपीलार्थी की ओर से ज्येष्ठ अधिवक्ता के. टी. एस. तुलसी ने हमारे समक्ष यह दलील दी है कि जब अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हों, तब ऐसी स्थिति में विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के आदेश को उच्च न्यायालय को उलटना नहीं चाहिए । इसके अतिरिक्त यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी दर्शन सिंह तारीख 17 फरवरी, 1995 को स्कूल में अपनी ड्यूटी पर था और वह उस समय घटनास्थल पर मौजूद नहीं था जब घटना घटित हुई थी और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति में हस्तक्षेप नहीं

किया जा सकता । हमारा ध्यान अन्यत्र उपस्थित होने के अभिवाक् के संबंध में प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रस्तुत कि गए साक्ष्य की ओर दिलाया गया है ।

11. इसके प्रतिकूल, राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि प्रश्नगत घटना में, सुरेन सिंह ने हरबंश सिंह की हत्या की है और अपीलार्थी दर्शन ने संता सिंह की हत्या कारित की है । यह भी दलील दी गई है कि प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा अन्यत्र उपस्थित होने का जो अभिवाक् किया गया है उसे उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् ठीक ही गलत पाया है । राज्य के विद्वान् काउंसेल ने आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथन निर्दिष्ट किए हैं ।

12. हमने परस्पर विरोधी दलीलों और मामले के सम्पूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया है । वर्तमान मामले में 3 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात् अमरीक सिंह (अभि. सा. 1), सुखचैन सिंह (अभि. सा. 2) और राज सिंह (अभि. सा. 3) हैं । इस मामले में घटना दिन में घटित हुई थी । उक्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के शरीर पर कारित हुई क्षतियों की सम्पुष्टि डा. सरबजीत सिंह (अभि. सा. 4), डा. मंजीत सिंह (अभि. सा. 5) और डा. एस. पी. सिंघला (अभि. सा. 14) के साक्ष्य से होती है । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को आसानी से त्यक्त नहीं किया जा सकता । जब एक बार अभियोजन पक्ष द्वारा अपने कर्तव्य का निर्वहन कर दिया गया तब यह साबित करने का भार अपीलार्थी पर आ जाता है कि अपीलार्थी अर्थात् दर्शन सिंह घटनास्थल पर अन्य अभियुक्तों के साथ मौजूद नहीं था और यह कि वह अन्य किसी जगह पर मौजूद था । आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने दर्शन सिंह की विशिष्ट भूमिका को स्पष्ट किया है कि उसने किस प्रकार संता सिंह पर हमला किया जिससे मृत्यु-पूर्व की क्षतियां पहुंचीं जिनकी सम्पुष्टि संता सिंह की शवपरीक्षण रिपोर्ट से भी होती है । मृतक को मृत्यु-पूर्व पहुंची छह क्षतियों में से पांच क्षतियां वेधकर कारित की गई हैं । मृतक संता सिंह की शव-परीक्षण रिपोर्ट में से इन क्षतियों को इस प्रकार उद्धृत किया जा रहा है :–

> "1. वक्ष के बाईं ओर अग्रभाग में 3 से. मी. × 0.5 से. मी. माप का वेधकर कारित किया गया अनुप्रस्थ घाव जो बाएं चूचुक के नीचे 6 से. मी. की दूरी पर घड़ी में 4 बजे की दशा में पार्श्व में स्थित है । रक्त का थक्का बना हुआ है । विच्छेदन करने पर यह घाव मध्य में हृदयावरण और बाएं निलय को वेधता हुआ अंदर तक फैला हुआ है । हृदयावरण थैली में लगभग 200 घन से. मी. द्रव रूप में रक्त है ।

2. वक्ष के बाईं ओर पार्श्व में 3 से. मी. × 0.5 से. मी. माप का अनुप्रस्थ वेधित घाव जो क्षति सं. 1 के पार्श्व में 6 से. मी. की दूरी पर मौजूद है । यह घाव अस्थि तक गहरा है । रक्त का थक्का मौजूद है ।

3. उदर के पीछे बाईं ओर 2 से. मी. × 0.5 से. मी. माप का अनुप्रस्थ वेधित घाव है जो मध्य रेखा के पार्श्व में 3 से. मी. की दूरी पर है और विच्छेदन के बाईं ओर श्रोणि-फलक के पश्च भाग में मेरुरज्जू के निकट 15 से. मी. की दूरी पर स्थित है, हृदयावरण और बड़ी आंत कटी हुई है । उदरीय गुहा में लगभग 500 घन से. मी. रक्त मौजूद है और थक्केदार रक्त भी मौजूद है ।

4. उदर के पीछे बाईं ओर 2.5 से. मी. × 0.5 से. मी. माप का अनुप्रस्थ वेधित घाव जो क्षति सं. 3 से 6 से. मी. की दूरी पर पार्श्व में स्थित है । रक्त का थक्का मौजूद है । यह घाव त्वचा तक गहरा है ।

5. वक्ष के पीछे बाईं ओर 1.5 से. मी. × 25 से. मी. माप का तिरछा वेधित घाव मौजूद है जो मध्य रेखा से 2 से. मी. की दूरी पर है और ग्रीवा के नीचे 20 से. मी. की दूरी पर है, यह घाव अस्थि तक गहरा है । थक्केदार रक्त मौजूद है ।

6. वक्ष के पीछे बाईं ओर पर 4 से. मी. × 0.5 से. मी. माप का अनुप्रस्थ वेधित घाव मौजूद है जो मध्य रेखा से 5 से. मी. और ग्रीवा से 12 से. मी. की दूरी पर है । थक्केदार रक्त मौजूद है । घाव अस्थि तक गहरा है ।"

13. अभिलेख से पता चलता है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अमरीक सिंह (अभि. सा. 1) को घटना के दौरान निम्न क्षति कारित हुईं :–

"बाएं कंधे के जोड़ के पार्श्व में 10.5 से. मी. की दूरी पर नीचे की ओर 2.4 से. मी. × 1 से. मी. माप का छिन्न घाव है ।

इस क्षति को 6 घंटों के लिए संप्रेक्षणाधीन रखा गया और यह क्षति धारदार आयुध से कारित की गई थी । एक्स-रे रिपोर्ट के अनुसार क्षतियां साधारण प्रकृति की पाई गईं जो धारदार आयुध से कारित की गई थीं ।"

14. एक अन्य साक्षी सुखचैन सिंह (अभि. सा. 2) की अभिलेख पर साबित की गई क्षति रिपोर्ट के अनुसार उसे निम्न क्षतियां पहुंचीं :–

"1. ललाट के मध्य भाग में 1.0 से. मी. × 0.25 से. मी. माप का छिन्न घाव पाया गया है । एक्स-रे कराने की सलाह दी गई है ।

2. वक्ष के दाईं ओर उरोस्थि से 17 से. मी. की दूरी पर 2 से. मी. × 1 से. मी. माप का छिन्न घाव । अत्यधिक रक्त मौजूद है । एक्स-रे कराने की सलाह दी गई है ।

3. कटि-प्रदेश में क्षति सं. 2 के नीचे 10 से. मी. की दूरी पर 3 से. मी. × 2 से. मी. माप का छिन्न घाव मौजूद है । शल्य चिकित्सा और एक्स-रे कराए जाने की सलाह दी गई है ।"

15. तीसरे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी राज सिंह (अभि. सा. 3) को घटना के दिन निम्न क्षतियां पहुंचीं जो अभिलेख पर साबित की गई हैं :–

"1. दाएं नितम्ब में अग्र-उत्तरवर्ती श्रोणिक मेरुदंड के नीचे 6.5 से. मी. की दूरी पर 1.9 से. मी. × 1.0 से. मी. माप का छिन्न घाव है । एक्स-रे कराने की सलाह दी गई है ।

2. दाएं वक्ष के नीचे की ओर 2 से. मी. × 1 से. मी. माप का छिन्न घाव है जो दाएं अग्रकक्षीय मोड़ के नीचे 22 से. मी. की दूरी पर अस्थि तक गहरा है और दाईं स्तनग्रन्थि के नीचे तथा आंशिक पार्श्विक भाग में 17 से. मी. की दूरी पर है । शल्य-चिकित्सा कराने की सलाह दी गई है ।"

16. अब हम अपीलार्थी दर्शन सिंह की प्रतिरक्षा के अभिवाक् पर विचार करेंगे जिसे विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था किंतु उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किया गया था । इस तथ्य पर कोई भी आक्षेप नहीं किया गया है कि अपीलार्थी दर्शन सिंह सीनियर सेकेन्डरी स्कूल, जनेरियन में प्रयोगशाला सहायक के रूप में कार्यरत था । प्रतिरक्षा साक्षियों के कथनों और अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के पश्चात्, हम उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत हैं कि अभियुक्त दर्शन सिंह ने अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् गलत किया है । अभिलेख पर यह साबित हो गया है कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट, फरीदपुर के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107/151 के अधीन चल रही कार्यवाहियों में उसे 17 फरवरी, 1995 को उपस्थित होना था । आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा दर्शन सिंह की अपराध में मौजूदगी और भूमिका का विस्तार से वर्णन किया गया है, यह विश्वास करना कठिन है कि तारीख

17 फरवरी, 1995 को आकस्मिक अवकाश पर जाने के लिए दर्शन सिंह ने तारीख 16 फरवरी, 1995 को आवेदन किया था और अगले दिन अर्थात् तारीख 17 फरवरी, 1995 को पूर्वाह्न में स्कूल में उपस्थित था और उसने उसके पश्चात् अपराह्न में छुट्टी ली थी । इस घटना के तत्काल पश्चात् उपस्थिति रजिस्टर को अभिगृहीत नहीं किया गया था । अपीलार्थी का अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् ढुलमुल है ।

17. अन्यत्र का अर्थ "कहीं और" है । अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् दंड संहिता के अध्याय IV में अंतर्विष्ट सामान्य अपवाद में नहीं आता है । यह साक्ष्य का एक नियम है जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 11 के अधीन अनुमोदित है । तथापि, अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध मामला साबित किए जाने के पश्चात्, प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् साबित किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त शर्त पूरी की गई है ।

18. अभिलेख पर प्रस्तुत सम्पूर्ण साक्ष्य की संवीक्षा करने के पश्चात्, हमें साक्ष्य के मूल्यांकन में कोई अवैधता दिखाई नहीं देती है और न ही उच्च न्यायालय द्वारा वर्तमान अपीलार्थी को दोषी पाने के संबंध में निकाले गए निष्कर्ष में कोई कमी दिखाई देती है ।

19. अतः, ऊपर चर्चा किए गए कारणों के आधार पर, हमें इस अपील में कोई बल दिखाई नहीं देता है और इसलिए यह खारिज की जानी चाहिए ।

20. तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है । उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश के शेष भाग को भोगने के लिए अपीलार्थी को संबद्ध न्यायालय द्वारा अभिरक्षा में लिया जाए ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

———————

ज्येष्ठ प्रभागीय वाणिज्यिक प्रबंधक और अन्य

बनाम

एस. सी. आर. कैटर्स, ड्राई फ्रूट्स, एफ. जे. एस. डब्ल्यू. एसोसिएशन और एक अन्य

29 जनवरी, 2016

न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा और न्यायमूर्ति अमिताव राय

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14, 19(1)(छ), 21 और 38 [सपठित रेल खान-पान नीति, 2010 का खंड 16 और 17] – समता और उपजीविका का अधिकार – रेल स्टेशनों पर खान-पान की लघु इकाइयों की अनुज्ञप्तियों का नवीकरण करने से इनकार – नए सिरे से अनुज्ञप्तियां प्रदान किए जाने के लिए बोली/निविदाएं आमंत्रित किया जाना – रेल बोर्ड द्वारा तारीख 9 अगस्त, 2010 को जारी वाणिज्यिक परिपत्र में विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों की लघु इकाइयों का नवीकरण करने की बात स्पष्ट है, इसलिए विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों को निविदा प्रक्रिया में सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 19(1)(छ), 21 और 38 [सपठित रेल खान-पान नीति, 2010 का खंड 16 और 17] – उपजीविका का अधिकार रेल स्टेशनों पर खान-पान की लघु इकाइयों की अनुज्ञप्तियों का नवीकरण करने से इनकार – नए सिरे से अनुज्ञप्तियां प्रदान किए जाने के लिए बोली/निविदाएं आमंत्रित किया जाना – 2010 की नीति के प्रवृत्त होने से पूर्व प्रदान की गई अनुज्ञप्तियों और इसके पश्चात् प्रदान की गई अनुज्ञप्तियों को दो प्रवर्गों में वर्गीकृत किए जाने की कार्यवाही मनमानी और विभेदकारी है और अनुज्ञप्तिधारियों की अनुज्ञप्ति का नवीकरण करने से इनकार करना उनके उपजीविका की स्वातंत्र्य के अधिकार से वंचित करने की कोटि में आता है तथा इससे अनुच्छेद 19(1)(छ) और 21 का अतिक्रमण होता है ।

प्रत्यर्थी, जो कि दक्षिण केन्द्रीय रेल कैट्र्स, ड्राई फ्रूट्स, फ्रूट जूस स्टॉल वेल्फेयर एसोसिएशन के सदस्य हैं, को "क" "ख" "ग" प्रवर्ग के रेल स्टेशनों पर साधारण लघु इकाई (जीएमयू) या विशेष लघु इकाई (एसएमयू) चलाने के लिए अनुज्ञप्तियां जारी की गई थीं । प्रत्यर्थी-

एसोसिएशन के सदस्यों के पक्ष में ये अनुज्ञप्तियां भारतीय रेल खान-पान और पर्यटक निगम लिमिटेड (आईआरसीटीसी) के सृजन से पूर्व खान-पान नीति, 2005 के अधीन प्रदान की गई थी । उक्त नीति के निबंधनों के अनुसार, "क" "ख" "ग" प्रवर्ग के अधीन आने वाले रेल स्टेशनों की संविदाएं आईआरसीटीसी को अंतरित की गई थीं जबकि "घ" से "च" प्रवर्ग के अधीन आने वाले रेल स्टेशनों की संविदाएं आईआरसीटीसी के इन इकाइयों का कार्यभार ग्रहण करने के लिए साधन-संपन्न होने तक दक्षिण केन्द्रीय रेल के नियंत्रणाधीन जारी रखी गई थी । खान-पान नीति, 2005 के अस्तित्व में रहने के दौरान वेल्फेयर एसोसिएशन के सदस्यों द्वारा धारित संविदाओं का नवीकरण किया गया था । उक्त नीति के स्थान पर खान-पान नीति, 2010 प्रतिस्थापित की गई । नई नीति के अधीन सभी विद्यमान बड़ी और लघु खान-पान इकाइयों की संविदाएं क्षेत्रीय रेलों द्वारा अधिनिर्णीत की जानी थीं और प्रबंधन किया जाना था । आईआरसीटीसी के पास केवल फूड प्लाजा, फूड कोर्ट्स और फास्ट फूड इकाइयां चलाने का कार्य छोड़ा गया था । खान-पान नीति, 2010 के अनुसरण में, दक्षिण केन्द्रीय रेल ने अनुज्ञप्तिधारियों के पक्ष में अनुज्ञप्तियों का तारीख 21 जुलाई, 2010 से तीन वर्ष की अवधि के लिए खान-पान नीति, 2010 में अनुबद्ध शर्तों के अधीन रहते हुए नवीकरण प्रदान किया । नवीकृत अनुज्ञप्तियों का तारीख 20 जुलाई, 2013 को पर्यवसान होना था । ज्येष्ठ प्रभागीय वाणिज्यिक प्रबंधक, विजयवाड़ा ने तारीख 26 अप्रैल, 2013 को विजयवाड़ा प्रभाग में "क" और "ख" प्रवर्ग के रेल स्टेशनों पर विभिन्न साधारण लघु इकाइयों पर खान-पान सेवाओं की व्यवस्था के लिए खाद्य और खान-पान सेवा प्रदाताओं से मुहरबंद बोलियां आमंत्रित करते हुए बोली-सूचना आमंत्रित की । तारीख 3 मई, 2013 को एक इसी प्रकार की अधिसूचना "क-1" "क" और "ख" प्रवर्ग के रेल स्टेशनों पर विशेष लघु इकाइयों में खान-पान स्टॉल/फलों और फलों के रस के स्टॉलों के स्थापन के लिए जारी की गई । प्रत्यर्थी-एसोसिएशन, जिसके सदस्यों के पास विद्यमान अनुज्ञप्तियां थीं, ने व्यथित होकर आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद के एकल न्यायाधीश के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की । प्रत्यर्थी-एसोसिएशन ने यह आग्रह किया कि नए सिरे से बोलियां आमंत्रित करने की कार्यवाही विभेदकारी है और खान-पान नीति, 2010 के उपबंधों के प्रतिकूल भी है । प्रत्यर्थी-एसोसिएशन का मुख्य अभिवाक् यह था कि खान-पान नीति, 2010 के निबंधनों के अनुसार विद्यमान अनुज्ञप्तिधारी अपनी अनुज्ञप्तियों का तीन वर्ष की अवधि के लिए नवीकरण कराने के

हकदार हैं । उन्होंने यह निवेदन किया कि अपीलार्थी को कैंटीनों तथा फल और फलों के रस के स्टालों के विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों की अनुज्ञप्तियों का नवीकरण करने के लिए निदेश दिया जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 16 अगस्त, 2013 के निर्णय और आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि खान-पान नीति, 2010 में अनुज्ञप्तिधारियों के बीच वर्षों की उस संख्या के आधार पर भेद नहीं किया गया है जब से वे अपने कारबार कर रहे हैं । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि खान-पान नीति, 2010 के अधीन प्रत्येक रेल स्टेशन की क्षमता और पूर्ववर्ती वर्षों के दौरान अनुज्ञप्तिधारियों के व्यापारावर्त के आधार पर अनुज्ञप्ति शुल्क पुनरीक्षित किया जा सकता है । चूंकि अनुज्ञप्ति-शुल्क का लगातार पुनरीक्षण होता रहता है और वृद्धिरुद्ध नहीं रहता है, इसलिए नवीकरणों के कारण रेल को कोई हानि होने का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि वेल्फेयर एसोसिएशन के सदस्य उनके द्वारा खान-पान नीति, 2010 के पैरा 16.1.3 और 16.2.1 में अनुबद्ध शर्तों का समाधान करने पर अनुज्ञप्तियों के नवीकरण के हकदार हैं । अपीलार्थियों द्वारा अपील फाइल करने पर उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा रिट अपीलों में अपने तारीख 12 सितम्बर, 2013 के निर्णय और आदेश द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश को कायम रखा गया । अपीलार्थियों ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – रेल बोर्ड ने तारीख 9 अगस्त, 2010 को वाणिज्यिक परिपत्र सं. 37 जारी किया, इस परिपत्र से यह स्पष्ट होता है कि खान-पान नीति, 2010 के खंड 16 और 17 के अनुसार अनुज्ञप्ति का नवीकरण सभी विद्यमान लघु इकाइयों के अनुज्ञप्तिधारियों को अनुदत्त किया जाना अपेक्षित है । यह भी स्पष्ट होता है कि विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों को निविदा प्रक्रिया में सम्मिलित किए जाने की आवश्यकता नहीं है । दक्षिण केन्द्रीय रेल के मुख्य वाणिज्यिक प्रबंधक द्वारा जारी तारीख 23 अगस्त, 2011 के परिपत्र में दक्षिण केन्द्रीय रेल के सभी प्रभागीय वाणिज्यिक प्रबंधकों और अन्य अधीनस्थ अधिकारियों को यह निदेश दिया गया है कि इस बात की पुष्टि की जाए कि "क-1" "क" और "ख" प्रवर्ग के रेलवे स्टेशनों पर की सभी साधारण लघु इकाइयों और विशेष लघु इकाइयों के कार्यकाल का प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् उनके समाधानप्रद कार्य-संपादन और 2010 की नीति के अनुसार सभी देयों तथा बकायों का संदाय करने

पर नवीकरण किया जाए । उक्त परिपत्र को देखते हुए, प्रत्यर्थी एसोसिएशन के सभी सदस्यों की खान-पान संबंधी अनुज्ञप्तियों का जुलाई, 2013 तक नवीकरण किया गया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश के निष्कर्षों को खंड न्यायपीठ द्वारा कायम रखा गया है और यह न्यायालय इनमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता है । भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में यह आज्ञापक है कि राज्य की कार्यवाही मनमानी और विभेदकारी नहीं होनी चाहिए । उसे किन्हीं ऐसी बाह्य बातों से भी मार्गदर्शित नहीं होना चाहिए जो समता के सिद्धांत के प्रतिकूल हों । (पैरा 20)

इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के लिए एक और महत्वपूर्ण पहलू स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर विगत 67 वर्षों में रेल संपत्ति के कुप्रशासन का है । यद्यपि विधि का यह एक मान्यताप्राप्त सिद्धांत है कि रेल की संपत्ति लोक संपत्ति है, तो भी वास्तविकता यह है कि प्राइवेट उद्यमियों और उद्योगों को कच्ची सामग्री का एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवहन करके अपना कारबार चलाने के लिए अनुज्ञात किया जाता है । रेल अधिनियम, 1989 अधिनियमित होने के पश्चात् रेल संपत्ति का प्रबंध करने के लिए नीति या नियम विरचित करके इसे अनुज्ञप्तिधारियों के पक्ष में आबंटन करने के लिए, जिसमें बड़ी मात्रा में खाली पड़ी संपत्ति की बाबत अनुज्ञप्ति फीस या अधिभोग प्रभार नियत करना सम्मिलित है जिससे बहुत अधिक राजस्व मिल सकता है जो कि जनसाधारण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक प्रशंसनीय ध्येय है, अधिनियम के अध्याय 11क के अधीन रेल भूमि विकास प्राधिकरण स्थापित किया गया । रेलों द्वारा समय-समय पर ऐसे बड़े प्रचालकों की बाबत अनुज्ञप्ति फीस का पुनरीक्षण नहीं किया गया । उन व्यक्तियों की, जो प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्य हैं और जो इन लघु इकाइयों पर अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह से निर्भर हैं, अनुज्ञप्तियों का नवीकरण न करने और उन्हें सार्वजनिक प्रतिस्पर्धा में भागीदार बनाने की नीति पूर्णतः अनुचित, अयुक्तियुक्त और मनमानी है । ऐसे व्यक्तियों के अपनी आजीविका के अधिकार से वंचित होने की संभावना भी एक महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर इस न्यायालय द्वारा अपीलार्थियों द्वारा विरचित नीति का निर्वचन करने के लिए विचार किया जाना है । बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या का मुकाबला करने में राज्य की निष्क्रियता को देखते हुए उसका यह कठोर दृष्टिकोण भयावह है । लोक कृत्यों को प्राइवेट उद्यमियों को सौंपने से स्थिति बदतर हो जाती है जो बाद में सरकार की नीतियों का देश के गरीब और निर्धन लोगों के

विरुद्ध विदोहन करते हैं । यदि अपीलार्थियों को नीति के बहाने अनुज्ञप्तिधारियों के पक्ष में अनुज्ञप्तियों के नवीकरण से इनकार करने की अनुज्ञा दी जाती है तो यह उन्हें संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन गारंटीकृत उपजीविका की स्वातंत्र्य के अधिकार तथा उपजीविका के अधिकार से वंचित करने की कोटि में आएगा और अपीलार्थियों की यह कार्यवाही सामाजिक न्याय तथा समाज के कमजोर वर्गों तथा देश के बेरोजगार युवाओं के उद्धार के प्रति उसके सांविधानिक कर्तव्य के पूर्णतः विरुद्ध होगी । सामाजिक न्याय की विकसित धारणा को ध्यान में रखते हुए, हम प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्यों को, जो अनुज्ञप्तिधारी हैं, उनके छोटे-मोटे कारबार जारी रखने के लिए, विशेष तौर पर देश में कुप्रशासन और सम-समाज के सांविधानिक सिद्धांत, जो सभी नागरिकों को गरिमामय जीवन जीने का अवसर प्रदान करता है, के अप्रवर्तन के कारण रोजगार की संभावना के अभाव में, अनुज्ञात करते हैं । अतः, यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि खान-पान नीति, 2010 के उपबंध संबंधित प्रत्यर्थियों पर लागू होते हैं । प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्यों की अनुज्ञप्तियों का नवीकरण न करने की रेलों की कार्यवाही मनमानी, अयुक्तियुक्त, अनुचित और विभेदकारी है और इसे विधि की दृष्टि से कायम रखने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । (पैरा 24, 26 और 27)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1995] (1995) 3 एस. सी. सी. 42 :
कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सेंटर बनाम
भारत संघ ; 25

[1984] [1984] 4 उम. नि. प. 605 =
(1984) 4 एस. सी. सी. 410 :
साधुराम बंसल बनाम **पुलिन सरकार** ; 25

[1983] [1983] 2 उम. नि. प. 135 =
(1982) 3 एस. सी. सी. 235 :
पीपल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स
और अन्य बनाम **भारत संघ** ; 22

[1981] [1981] 4 उम. नि. प. 1133 =
(1981) 1 एस. सी. सी. 608 :
फ्रांसिस कोराली मुल्लिन बनाम **प्रशासक, संघ राज्यक्षेत्र दिल्ली और अन्य** ; 26

[1980] [1980] 2 उम. नि. प. 961 =
(1979) 3 एस. सी. सी. 489 :
आर. डी. शेट्टी बनाम **अन्तरराष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण** । 20

निर्दिष्ट निर्णय

[2015] (2015) 5 एस. सी. सी. 813 :
लाला राम बनाम **भारत संघ** ; 7

[2015] (2015) 1 एस. सी. सी. 192 :
चारु खुराना बनाम **भारत संघ** ; 17

[2009] (2009) 5 एस. सी. सी. 313 :
बैंक आफ इंडिया और अन्य बनाम **के. मोहनदास और अन्य** ; 15

[1994] (1994) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 694 :
जीवन दास बनाम **भारतीय जीवन बीमा निगम और एक अन्य** ; 12

[1986] [1986] 1 उम. नि. प. 269 =
(1985) 3 एस. सी. सी. 545 :
ओल्गा टेलिस बनाम **बम्बई नगर निगम** ; 16

[1985] [1985] 4 उम. नि. प. 112 =
(1985) 3 एस. सी. सी. 267 :
राम एंड श्याम कंपनी बनाम **हरियाणा राज्य** ; 8

[1981] [1981] 4 उम. नि. प. 3 =
(1981) 1 एस. सी. सी. 315 :
जीवन बीमा निगम बनाम **डी. जे. बहादुर** । 18

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 618-620.

2013 की रिट अपील सं. 1573-1575 में आंध्र प्रदेश उच्च

न्यायालय, हैदराबाद के तारीख 12 सितम्बर, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री एन. के. कौल, अपर महा-सालिसिटर, (सुश्री) शिल्पा नायर, आर. एम. बजाज, एस. एन. भट और श्रीकांत एन. त्रिदल

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री पी. के. गोस्वामी, राजू रामचंद्रन्, ज्येष्ठ अधिवक्तागण, वी. के. शुक्ला, (सुश्री) अंचल मेहरोत्रा, डा. राजीव शर्मा (मध्यक्षेपी की ओर से), वेंकटेश्वर राव अनुमोलू, गोली राम कृष्ण, शेखावत गोयल, अरुणभ चौधरी, पार्थिव के. गोस्वामी, कौस्तुव तालुकदार, यशराज सिंह बुंदेला, (सुश्री) दीक्षा राय, (सुश्री) रंजीता रोहतगी, मैथिली विजय कुमार टी. और विक्रम आदित्य नारायण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा ने दिया ।

न्या. गौड़ा – मध्यक्षेप के लिए किए गए आवेदनों को मंजूरी दी जाती है ।

2. इजाजत दी गई ।

3. वर्तमान अपीलें 2013 की रिट अपील सं. 1573-1575 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद द्वारा तारीख 12 सितम्बर, 2013 के उस आक्षेपित निर्णय और आदेश से उद्भूत हुई हैं, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के उस आदेश को कायम रखा, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रत्यर्थी खान-पान नीति, 2010 के अधीन अपनी अनुज्ञप्तियों का नवीकरण कराने के हकदार हैं ।

4. उन सुसंगत तथ्यों का, जो हमारे लिए पक्षकारों की ओर से दी गई विरोधी विधिक दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक हैं, इसमें नीचे संक्षेप में उल्लेख किया जाता है :–

दक्षिण केन्द्रीय रेल कैट्रर्स, ड्राई फ्रूट्स, फ्रूट जूस स्टाल वेल्फेयर एसोसिएशन (जिसे इसमें इसके पश्चात् ''वेल्फेयर एसोसिएशन'' कहा गया है) हमारे समक्ष प्रत्यर्थी हैं । वेल्फेयर एसोसिएशन के सदस्यों को ''क'' ''ख'' ''ग'' प्रवर्ग के रेल स्टेशनों पर साधारण लघु इकाई (जीएमयू) या विशेष लघु इकाई (एसएमयू) चलाने के लिए अनुज्ञप्तियां जारी की गई थीं । प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्यों के पक्ष में ये अनुज्ञप्तियां भारतीय रेल खान-पान और पर्यटक निगम लिमिटेड (जिसे इसमें इसके पश्चात् ''आईआरसीटीसी'' कहा गया है) के सृजन से पूर्व खान-पान नीति, 2005 के अधीन प्रदान की गई थीं । उक्त नीति के निबंधनों के अनुसार, ''क'' ''ख'' ''ग'' प्रवर्ग के अधीन आने वाले रेल स्टेशनों की संविदाएं आईआरसीटीसी को अंतरित की गई थीं जबकि ''घ'' से ''च'' प्रवर्ग के अधीन आने वाले रेल स्टेशनों की संविदाएं आईआरसीटीसी के इन इकाइयों का कार्यभार ग्रहण करने के लिए साधन-संपन्न होने तक दक्षिण केन्द्रीय रेल के नियंत्रणाधीन जारी रखी गई थीं । खान-पान नीति, 2005 के अस्तित्व में रहने के दौरान वेल्फेयर एसोसिएशन के सदस्यों द्वारा धारित संविदाओं का नवीकरण किया गया था । उक्त नीति के स्थान पर खान-पान नीति, 2010 प्रतिस्थापित की गई । नई नीति के अधीन, सभी विद्यमान बड़ी और लघु खान-पान इकाइयों की संविदाएं क्षेत्रीय रेलों द्वारा अधिनिर्णीत की जानी थीं और प्रबंधन किया जाना था । आईआरसीटीसी के पास केवल फूड प्लाजा, फूड कोर्ट्स और फास्ट फूड इकाइयां चलाने का कार्य छोड़ा गया था । खान-पान नीति, 2010 के अनुसरण में, दक्षिण केन्द्रीय रेल ने अनुज्ञप्तिधारियों के पक्ष में अनुज्ञप्तियों का तारीख 21 जुलाई, 2010 से, यह वह तारीख है जिसको आईआरसीटीसी से ग्रहण की गई साधारण लघु इकाइयों और विशेष लघु इकाइयों की बाबत खान-पान नीति, 2010 प्रभावी की गई थी, तीन वर्ष की अवधि के लिए खान-पान नीति, 2010 के पैरा 16.1.3 और 16.2.1 में अनुबद्ध शर्तों के अधीन रहते हुए नवीकरण प्रदान किया । नवीकृत अनुज्ञप्तियों का तारीख 20 जुलाई, 2013 को पर्यवसान होना था । ज्येष्ठ प्रभागीय वाणिज्यिक प्रबंधक, विजयवाड़ा ने तारीख 26 अप्रैल, 2013 को विजयवाड़ा प्रभाग में ''क'' और ''ख'' प्रवर्ग के रेल स्टेशनों पर विभिन्न साधारण लघु इकाइयों पर खान-पान सेवाओं की व्यवस्था के लिए खाद्य और खान-पान सेवा प्रदाताओं से एकल प्रक्रम दो-पैकेट व्यवस्था (सिंगल स्टेज टू-पैकेट

सिस्टम) पर मुहरबंद बोलियां आमंत्रित करते हुए बोली-सूचना आमंत्रित कीं । तारीख 3 मई, 2013 को एक इसी प्रकार की अधिसूचना "क-1" "क" और "ख" प्रवर्ग के रेल स्टेशनों पर विशेष लघु इकाइयों में खान-पान स्टाल/फलों और फलों के रस के स्टालों के स्थापन के लिए जारी की गईं । प्रत्यर्थी-एसोसिएशन, जिसके सदस्यों के पास विद्यमान अनुज्ञप्तियां थीं, ने व्यथित होकर आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद के एकल न्यायाधीश के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की । प्रत्यर्थी-एसोसिएशन ने यह आग्रह किया कि नए सिरे से बोलियां आमंत्रित करने की कार्यवाही विभेदकारी है और खान-पान नीति, 2010 के उपबंधों के प्रतिकूल भी है । प्रत्यर्थी-एसोसिएशन का मुख्य अभिवाक् यह था कि खान-पान नीति, 2010 के निबंधनों के अनुसार विद्यमान अनुज्ञप्तिधारी अपनी अनुज्ञप्तियों का तीन वर्ष की अवधि के लिए अपने समाधानप्रद कार्य-संपादन, सभी शोध्यों और बकाया के भुगतान तथा न्यायालय में चल रहे मामलों, यदि कोई हो, को वापस लेने के अध्यधीन रहते हुए, नवीकरण कराने के हकदार हैं । उन्होंने यह निवेदन किया कि अपीलार्थी को कैंटीनों तथा फल और फलों के रस के स्टालों के विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों की अनुज्ञप्तियों का नवीकरण करने के लिए निदेश दिया जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 16 अगस्त, 2013 के निर्णय और आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि खान-पान नीति, 2010 में अनुज्ञप्तिधारियों के बीच वर्षों की उस संख्या के आधार पर भेद नहीं किया गया है जब से वे अपने कारबार कर रहे हैं । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि खान-पान नीति, 2010 के अधीन प्रत्येक रेल स्टेशन की क्षमता और पूर्ववर्ती वर्षों के दौरान अनुज्ञप्तिधारियों के व्यापारावर्त के आधार पर अनुज्ञप्ति शुल्क पुनरीक्षित किया जा सकता है । चूंकि अनुज्ञप्ति-शुल्क का लगातार पुनरीक्षण होता रहता है और वृद्धिरुद्ध नहीं रहता है, इसलिए नवीकरणों के कारण रेल को कोई हानि होने का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि वेल्फेयर एसोसिएशन के सदस्य उनके द्वारा खान-पान नीति, 2010 के पैरा 16.1.3 और 16.2.1 में अनुबद्ध शर्तों का समाधान करने पर अनुज्ञप्तियों के नवीकरण के हकदार हैं । अपीलार्थियों द्वारा अपील फाइल करने पर उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा रिट अपीलों में अपने तारीख 12 सितम्बर, 2013 के निर्णय और आदेश द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय और

आदेश को कायम रखा गया । इसलिए, अपीलार्थियों द्वारा वर्तमान अपीलें फाइल की गई हैं ।

5. हमने दोनों पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना । हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए अभिलेख पर के अभिवाकों और साक्ष्य के आधार पर मामले की परिस्थितियों तथा दोनों पक्षकारों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेलों द्वारा दी गई विरोधात्मक विधिक दलीलों को ध्यान में रखते हुए हमारे विचार के लिए मुख्य प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या हमारे समक्ष प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्य खान-पान नीति, 2010 के निबंधनों के अनुसार अपनी अनुज्ञप्तियों के नवीकरण कराने के हकदार हैं ।

6. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महा-सालिसिटर, श्री एन. के. कौल ने हमारा ध्यान खान-पान नीति, 2010 के महत्वपूर्ण उपबंधों की ओर आकृष्ट किया । इस नीति का उद्देश्य निम्नलिखित है :–

> "1.1 उत्तम व्यापारिक और आतिथ्यपूर्ण पद्धतियों को अपनाकर यात्रियों को स्वास्थ्यप्रद, अच्छी गुणवत्ता का किफायती भोजन उपलब्ध कराना ।
>
> 1.2 इस नीति का समावेशित दृष्टिकोण होगा, जहां संपन्न से लेकर निर्धन तक को खान-पान सेवाएं सामाजिक रूप से उत्तरदायी रीति में उपलब्ध कराई जाएंगी ।
>
> 1.3 इससे सरकार के समस्त सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति होनी चाहिए, जिसमें समय-समय पर जारी किए गए सरकार के निदेशों के अनुसार आरक्षण के उपबंध भी सम्मिलित हैं ।"

7. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने यह दलील दी कि खान-पान नीति, 2010 के निबंधन पूर्णतः स्पष्ट हैं । यहां बृहत्तर मुद्दा अनुज्ञप्तिधारियों की जीविका के अधिकार का है जो कि प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्य हैं । संविधान के उपबंधों के अधीन किसी भी उत्तरदायी सरकार का मुख्य सरोकार लोगों का कल्याण है । विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने **लाला राम** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले का अवलंब लिया, जिसमें कल्याणकारी राज्य की धारणा पर निम्नलिखित रूप में चर्चा की गई है :–

---

[1] (2015) 5 एस. सी. सी. 813.

"कल्याणकारी राज्य एक ऐसी सरकार की धारणा का द्योतन करता है, जिसमें राज्य अपने सभी नागरिकों की आर्थिक और सामाजिक कल्याण की संरक्षा और अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और धन का साम्यपूर्ण वितरण और उन सभी को समान अवसर तथा लोक उत्तरदायित्व प्रदान करना, जो स्वयं के लिए उनका उपभोग करने में असमर्थ हैं और इसके अंतर्गत शिष्ट जीवनयापन के लिए न्यूनतम उपबंध करना आ सकते हैं । कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य 'अधिकतम लोगों का अधिकतम हित और सभी को फायदा तथा सभी के लिए प्रसन्नता' होता है । यह महत्वपूर्ण है कि जहां राज्य एक कल्याणकारी राज्य है, वहां राज्य की प्रतिबद्धता जनता के प्रति होगी । कल्याणकारी राज्य जन-साधारण के हित के लिए योजनाएं बनाने और फायदाप्रद स्कीम चलाने के लिए आबद्ध होता है । इस प्रकार, एक कल्याणकारी राज्य की मूलभूत विशेषता सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है । गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और वैयक्तिक कर रोपण एक कल्याणकारी राज्य के कतिपय पहलुओं के उदाहरण हैं । कल्याणकारी राज्य व्यक्तियों के लिए जन्म से लेकर मृत्यु तक राज्य प्रायोजित सहायता मुहैया कराता है । तथापि, एक कल्याणकारी राज्य को मूल कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है, जैसे राज्य द्वारा मुहैया की जाने वाली ऐसी कल्याणकारी सेवाओं के उपबंध का वांछनीय स्तर क्या होना चाहिए, क्योंकि प्रत्यक्षतः हिताधिकारियों के अभिदाय से अधिक पर सेवाओं को वित्तपोषित करने के लिए संसाधनों के साम्यपूर्ण उपबंध से कठिनाइयां उत्पन्न होंगी । कल्याणकारी राज्य एक ऐसा राज्य होता है जिसकी उसके राज्यक्षेत्र के भीतर निवास करने वाले अधिकतम लोगों को अधिकतम प्रसन्नता सुनिश्चित करने की ईप्सा होती है । कल्याणकारी राज्य को शिष्ट जीवनयापन के लिए सभी सुविधाएं मुहैया कराने का प्रयत्न करना चाहिए, विशिष्ट रूप से गरीब, कमजोर, वृद्ध और निःशक्त अर्थात् उन सभी व्यक्तियों के लिए जो स्वीकृततः समाज के कमजोर वर्ग से संबंध रखते हैं । भारत के संविधान के अनुच्छेद 38 और 39 में यह उपबंध हैं कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की सभी संस्थाओं अनुप्रमाणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा । इन अधिकारों में आजीविका के साधन, स्वास्थ्य और समाज में सभी वर्गों के लोगों के लिए विशेष रूप से

युवा, वृद्ध और स्त्रियों तथा सापेक्ष रूप से समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के सामान्य कल्याण समाविष्ट हो सकते हैं । इन समूहों को सामान्यतया लगभग प्रत्येक संगठन में संरक्षण के विशेष उपायों की आवश्यकता होती है । लोगों की प्रसन्नता किसी कल्याणकारी राज्य का अंतिम उद्देश्य है और किसी राज्य को तब तक कल्याणकारी राज्य नहीं कहा जा सकता है जब तक कि वह इसकी प्राप्ति के लिए भरसक प्रयास न करे ।"

(बल देने के लिए इस न्यायालय द्वारा रेखांकन किया गया है)

8. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने इसके बाद **राम एंड श्याम कंपनी** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया, जिसके सुसंगत पैरा को इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"12. हम स्पष्ट रूप से उस निर्धारित मत पर प्रकाश डालेंगे जो प्राइवेट संपत्ति और समाज की संपत्ति के प्रयोग और व्ययन के बीच प्रभेद करता है । प्राइवेट संपत्ति का स्वामी किसी अन्य व्यक्ति को कोई क्षति कारित किए बिना ऐसी किसी भी रीति में इसका संव्यवहार कर सकता है जिसमें वह चाहता है । किंतु समाजवादी या यदि यह शब्द किसी व्यक्ति को अप्रिय लगता है तो समाज की अथवा लोक संपत्ति का लोक प्रयोजन के लिए और लोक हित में संव्यवहार किया जाना चाहिए । इसमें सुभिन्न अंतर यह है कि प्राइवेट संपत्ति के स्वामी के सामने ऐसी विभिन्न बातें हो सकती हैं जो उसे उसकी संपत्ति कौड़ी के मोल व्ययन करने हेतु अनुज्ञात कर सकती है । दूसरी ओर लोक संपत्ति का व्ययन न्यास के लक्षण के स्वरूप का होता है चूंकि उसके व्ययन से कोई निरर्थक बात नहीं होनी चाहिए तथा उसका व्ययन अच्छी कीमत पर होना चाहिए ताकि राज्य प्रशासन के खजाने में आने वाला अधिक राजस्व लोक प्रयोजन को पूरा करे अर्थात् कल्याणकारी राज्य अधिक निधियों की उपलभ्यता के कारण अपने फायदेप्रद क्रियाकलापों का विस्तार करने में समर्थ हो सके । यह बात इस एक महत्वपूर्ण परिसीमा के अध्यधीन है कि समाजवादी संपत्ति का बाजार की कीमत से कम कीमत पर भी व्ययन किया जा सकता है अथवा संवैधानिक रूप से मान्यताप्राप्त कुछ परिभाषित लोक प्रयोजनों को पूरा करने के लिए नाममात्र कीमत पर

[1] [1985] 4 उम. नि. प. 112 = (1985) 3 एस. सी. सी. 267.

भी व्ययन किया जा सकता है और उनमें से एक प्रयोजन संविधान के भाग 4 में उल्लिखित उद्देश्यों को पूरा करना है । किंतु जहां व्ययन केवल राजस्व को बढ़ाने के सिवाय किसी अन्य प्रयोजन के लिए नहीं हो, वहां राज्य बाजार अर्थव्यवस्था में उपलभ्य सर्वोत्तम बाजार कीमत प्राप्त करने की बाध्यता के अधीन है । प्राइवेट संपत्ति के स्वामी को उसकी नीलामी करने की आवश्यकता नहीं है और न ही वह चालू बाजार कीमत पर उसका व्ययन करने के लिए बाध्य है । वैयक्तिक मोह का घनिष्ठ संबंध, रिश्तेदारी, सहानुभूति, धार्मिक भावना अथवा सीमित विकल्प, जिसे वह बेचने के लिए रजामंद हो, ऐसे तथ्य हैं जो संपत्ति बिना किसी आपत्ति के कौड़ी के मोल विक्रय करने के लिए अनुज्ञात कर सकते हैं । कल्याणकारी राज्य को लोक संपत्ति के स्वामी के रूप में लोक संपत्ति का व्ययन करते समय ऐसी कोई स्वतंत्रता नहीं है । कल्याणकारी राज्य अधिकतम लोगों की भलाई के लिए विद्यमान रहता है, जब वह गरीबी के उन्मूलन के लिए समाजवादी राज्य होने की घोषणा करता है । उसका प्रयत्न उसकी संपत्ति का व्ययन करते समय सर्वोत्तम उपलभ्य कीमत प्राप्त करने का होना चाहिए क्योंकि जितना अधिक राजस्व होगा, कल्याणकारी क्रियाकलापों को उतना अधिक प्रोत्साहन मिलेगा और यह एक बड़ी उपलब्धि होगी । वित्तीय प्रतिबंध क्रियाकलापों की गति को कमजोर कर सकते हैं । ऐसा मत कल्याणकारी क्रियाकलापों का विस्तार करने के प्रयोजन के लिए व्यापक रूप से जनता की सेवा करता है, जिनके लिए प्रारंभिक रूप से संविधान कल्याणकारी राज्य की स्थापना की परिकल्पना करता है ।'

(बल देने के लिए हमारे द्वारा रेखांकन किया गया है)

9. यात्रियों के हित का सामाजिक उद्देश्यों के साथ कोई परस्पर संबंध नहीं है । खान-पान नीति, 2010 का मुख्य उद्देश्य रेल यात्रियों को किफायदी कीमत पर भोजन उपलब्ध कराना है । विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने यह भी दलील दी कि राज्य इस बाबत एक नई नीति विरचित करने के लिए विधि के अनुसार हकदार है । विद्वान् महा-सालिसिटर ने यह दलील दी कि इस नीति में विस्तृत क्रियाविधि अंतर्विष्ट है और इसमें पूरी तरह से स्पष्ट किया गया है कि यह किसके लिए है । विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने हमारा ध्यान इस नीति के खंड 3.3.1 की ओर आकृष्ट किया, जो निम्नलिखित है :–

"3.3.1 फूड प्लॉजा, फूड कोर्ट्स, फास्ट फूड इकाइयों के सिवाय सभी विद्यमान बड़ी और छोटी खान-पान इकाइयां क्षेत्रीय रेल द्वारा अधिनिर्णीत की जाएंगी और प्रबंध किया जाएगा । ऐसी सभी संविदाओं का प्रबंध फिलहाल आईआरसीटीसी द्वारा किया जा रहा है और संविदा अवधि के पर्यवसान पर ये क्षेत्रीय रेलों द्वारा अधिनिर्णीत की जाएंगी । आईआरसीटीसी संविदा के पर्यवसान पर क्षेत्रीय रेलों को सौंपे जाने के लिए अपेक्षित किसी संविदा का नवीकरण नहीं करेगा ।"

10. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने हमारा ध्यान 2010 की नीति के खंड 16.1.3 की ओर भी आकृष्ट किया, जो निम्नलिखित है :–

"16.1.3 क, ख और ग प्रवर्ग के स्टेशनों पर सभी साधारण लघु इकाइयों का पांच वर्ष की अवधि के लिए, प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् समाधानप्रद कार्य-संपादन, सभी शोध्यों और बकाया के भुगतान करने तथा न्यायालय में चल रहे मामलों, यदि कोई हो, को वापस लेने पर, नवीकरण करने के उपबंध के साथ, आबंटन किया जाएगा । घ, ङ और च प्रवर्ग के स्टेशनों पर सभी साधारण लघु इकाइयों का पांच वर्ष की अवधि के लिए, प्रत्येक पांच वर्ष की अवधि के पश्चात् समाधानप्रद कार्य-संपादन, सभी शोध्यों और बकाया के भुगतान करने तथा न्यायालय में चल रहे मामलों, यदि कोई हों, को वापस लेने पर अतिरिक्त पांच वर्ष की अवधि के लिए नवीकरण के उपबंध के साथ, आबंटन किया जाएगा ।"

विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने यह दलील दी कि खंड 16.1.3 के फलस्वरूप प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्य साधिकार अपनी अनुज्ञप्ति के नवीकरण का दावा नहीं कर सकते हैं । विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने 2010 की नीति के खंड 26.1.1 का भी अवलंब लिया, जो निम्नलिखित है :–

"26.1.1 आईआरसीटीसी द्वारा दी गई और क्षेत्रीय रेलों को अंतरित की गईं सभी विद्यमान परिचालित अनुज्ञप्तियां उनकी संविदात्मक अवधि की वैधता तक विद्यमान खान-पान नीति, 2005 द्वारा शासित होंगी ।"

इसके अतिरिक्त, इस नीति का खंड 26.1.4 निम्नलिखित है :–

"26.1.4 यह नीति नए सिरे से दी गई अनुज्ञप्तियों और विद्यमान अनुज्ञप्तियों की समाप्ति, अनवीकरण, रिक्ति आदि की

स्थिति में दी गई अनुज्ञप्तियों पर भी लागू होगी ।"

11. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने आगे यह दलील दी कि कल्याणकारी राज्य को लोक हित की अधिक-से-अधिक देख-रेख के लिए अधिक धन सृजित करना होता है । उसने यह भी दलील दी कि प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्यों का यह दावा, कि ऊपर निर्दिष्ट रेल स्टेशनों पर उनकी अनुज्ञप्ति को नवीकरण कराने का उनका एक निहित अधिकार है और सरकार अपने प्रतिस्पर्धियों का विस्तार नहीं कर सकती है, विधि के अनुसार पूर्णतः असमर्थित है ।

12. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने आगे यह दलील दी कि संपूर्ण नीति को चुनौती नहीं दी गई है । केवल अनुज्ञप्ति के नवीकरण का अधिकार प्रदत्त करने वाले खंड को ही चुनौती दी गई है । ऐसे मामलों में न्यायिक पुनर्विलोकन की गुंजाइश सीमित होती है । न्यायालय को इसकी विधिमान्यता की परीक्षा करने के लिए यह आवश्यक है कि या तो नीति मनमानी हो, या किसी स्पष्ट गलती से ग्रसित हो और अनुचित हो, या संवैधानिक उपबंधों के प्रतिकूल हो । विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने अपनी दलीलों के समर्थन में **जीवन दास** बनाम **भारतीय जीवन बीमा निगम और एक अन्य**[1] वाले मामले का यह दलील देने के लिए अवलंब लिया कि जीविका के अधिकार का एक वाणिज्यिक उद्यम के रूप में भरपूर फायदा लेने के लिए लोक संपत्ति के प्रयोग तक विस्तार नहीं किया जा सकता है । उस मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "कोई स्वामी अपनी संपत्ति के फायदेप्रद उपयोग और उपभोग के लिए स्वयं अपने तरीके से इसका व्यौहार करने का हकदार है । कोई लोक प्राधिकारी भी समान रूप से एक वाणिज्यिक उद्यम के रूप में लोक संपत्ति का भरपूर फायदे के लिए प्रयोग करने का हकदार है । किसी अभिधारी/अनुज्ञप्तिधारी का बेदखल होना एक अनिवार्य घटना के रूप में अपरिहार्य है । इसलिए, जीविका के सिद्धांत को वाणिज्यिक प्रचालन के क्षेत्र पर विभेदकारी रूप में विस्तारित नहीं किया जा सकता है ।"

13. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों में से कुछ की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री प्रशांत के. गोस्वामी ने हमारा ध्यान खान-पान नीति, 2010 की ओर आकृष्ट किया । उसने यह दलील दी कि राजस्व

---

[1] (1994) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 694.

संग्रह राज्य के लिए अनुज्ञप्तिधारियों की अनुज्ञप्तियों के नवीकरण का विनिश्चय करने के लिए एक मानदंड या विचारणा नहीं हो सकती है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि इन छोटी-छोटी दुकान/छतरी के मालिकों की अनुज्ञप्तियों को कुछ रेल अंचलों द्वारा नवीकृत तो किया गया है, जबकि अन्य द्वारा नहीं और अपीलार्थियों की यह कार्यवाही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की अतिक्रमणकारी है ।

14. प्रत्यर्थियों में से एक प्रत्यर्थी अनुज्ञप्तिधारी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री राजू रामचंद्रन् ने यह दलील दी कि सदस्यों की अनुज्ञप्तियों का नवीकरण करने का खान-पान नीति, 2010 के अधीन सन्नियम है और नवीकरण के अधिकार को विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों की संविदाओं के साथ पढ़ा जाना चाहिए । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि केन्द्रीय सरकार, जो देश भर में रेल चला रही है और रेल बड़ी संख्या में यात्रियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला मुख्य परिवहन उद्योग है, के सामाजिक उद्देश्यों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के संरक्षण के अतिरिक्त आजीविका के अधिकार का संरक्षण भी आवश्यक रूप से सम्मिलित होना चाहिए ।

15. श्री रामचंद्रन् ने आगे यह दलील दी कि नवीकरण खंड का अर्थान्वयन करने के लिए विधिसम्मत रूप से दो मत संभव हैं । एक मत यह है कि अनुज्ञप्तियों का नवीकरण जो कि केवल निविदा प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता है और दूसरा यह है कि विद्यमान या पूर्व-विद्यमान अनुज्ञप्तियों का नवीकरण किया जाए । उसने यह दलील दी कि इसे "कांट्रा प्रोफरेंटम" या प्रारूपकार के विरुद्ध निर्वचन का सिद्धांत लागू करके सुलझाया जा सकता है । इस संबंध में विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा **बैंक आफ इंडिया और अन्य** बनाम **के. मोहनदास और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "31. किसी संविदा के अर्थान्वयन का एक सुप्रतिष्ठित सिद्धांत यह भी है कि उसके अनेक खंडों का सही अर्थ अभिनिश्चित करने के लिए उसे समग्र रूप में पढ़ा जाना चाहिए प्रत्येक खंड के शब्दों का इस प्रकार निर्वचन करना चाहिए जिससे कि उनका अन्य उपबंधों के साथ सामंजस्य बैठाया जा सके यदि ऐसे निर्वचन से उनका ऐसा अर्थ

[1] (2009) 5 एस. सी. सी. 313.

न निकलता हो जो स्वाभाविक रूप से संभाव्य है [(दी नार्थ ईस्टर्न रेलवे कंपनी **बनाम** एल. हेस्टिंग्स) 1900 ए. सी. 260] ।

32. मूलभूत स्थिति यह है कि बैंक ही संविदात्मक स्कीम में ऐसे निबंधनों को विनिर्मित करने के लिए उत्तरदायी हैं कि इस स्कीम के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के विकल्प का चुनाव करने वाले पेंशन विनियम, 1985 के अधीन पेंशन के लिए अर्ह होंगे और इसलिए वे स्पष्टता की खामी, यदि कोई है, का जोखिम उठाएं । संविदा के अर्थान्वयन का यह एक सुविख्यात सिद्धांत है कि यदि किसी पक्षकार द्वारा अनुप्रयोजित निबंधन अस्पष्ट हैं, तो उस पक्षकार के विरुद्ध निर्वचन किया जाता है (वर्बा चार्टरम फोरटियस ऐसीपियनटर कांट्रा प्रोफरेंटम) ।"

16. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने यह भी दलील दी कि इस नीति के सामाजिक उद्देश्यों का स्पष्ट रूप से अभिप्राय फायदा कमाने के उद्देश्य से बचना है । उसने **ओल्गा टेलिस** बनाम **बम्बई नगर निगम**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जीवन के प्रति अधिकार में जीविका का अधिकार सम्मिलित है । उस मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"32. जैसा कि हमने याचियों के मामले में संक्षिप्त आवृत्ति करते समय कहा है कि उनके तर्क का मुख्य आधार यह है कि अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन के प्रति अधिकार में उनकी जीविका का अधिकार सम्मिलित है और चूंकि गंदी बस्तियों और पटरियों पर बने निवास-गृहों से उनको बेदखल करने की दशा में वे अपनी जीविका से वंचित हो जाएंगे, अतः उनकी बेदखली उनके जीवन-वंचन के समकक्ष होने के कारण असांविधानिक है । तर्क के प्रयोजनार्थ, हम इस आधार पर इस तथ्यात्मक यथार्थता की धारणा करेंगे कि यदि याचियों को गंदी बस्तियों और पटरियों पर बने निवास-गृहों से बेदखल किया जाता है तो वे अपनी जीविका से वंचित हो जाएंगे । यह धारणा करने के पश्चात् हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है कि जीवन के प्रति अधिकार में जीविका का अधिकार सम्मिलित है या नहीं । हमें इस प्रश्न का केवल यही उत्तर सूझता है कि जीवन के

[1] [1986] 1 उम. नि. प. 269 = (1985) 3 एस. सी. सी. 545.

प्रति अधिकार में जीविका का अधिकार सम्मिलित है । अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के प्रति अधिकार की व्याप्ति अत्यधिक है । इसका केवल यह अभिप्राय नहीं है कि जीवन विधि की स्थापित प्रक्रिया के सिवाय, उदाहरणार्थ, मृत्यु के दंडादेश के अधिरोपण और निष्पादन द्वारा, निर्वापित किया या छीना नहीं जा सकता । किंतु, यह जीवन के प्रति अधिकार का एक पहलू मात्र है । इस अधिकार का इतना ही महत्वपूर्ण एक पहलू जीविका का अधिकार है क्योंकि कोई भी व्यक्ति जीने के साधनों, अर्थात् जीविका के साधनों, के बिना जीवित नहीं रह सकता । यदि जीविका के अधिकार को जीवन के प्रति अधिकार का अंग नहीं माना जाएगा तो किसी व्यक्ति को उसके जीवन के प्रति अधिकार से वंचित करने का सबसे सुगम तरीका यह होगा कि उसे निराकरण की सीमा तक उसके जीविका के साधनों से वंचित कर दिया जाए । ऐसा वंचन जीवन को न केवल उसके शक्तिमान तत्व से रहित और निरर्थक बना देगा बल्कि उसे जीने के लिए असंभव भी बना देगा और यदि जीविका का अधिकार जीवन के प्रति अधिकार का अंग नहीं माना जाएगा तो भी ऐसा वंचन विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार नहीं होगा । जीवन को संभव बनाने वाली एकमात्र वस्तु, न कि जीवन को जीने योग्य बनाने वाली वस्तु, जीवन के प्रति अधिकार का अविभाज्य अंग समझी जानी चाहिए । आप किसी व्यक्ति को जीविका के अधिकार से वंचित करके उसे उसके जीवन से वंचित कर देंगे । वास्तव में, इससे यह बात स्पष्ट होती है कि इतनी बड़ी संख्या में ग्रामीण-जन क्यों बड़े शहरों में आ रहे हैं । उनके शहरों में आने का कारण ग्रामों में जीविका का कोई साधन न होना है । उन्हें अपने ग्रामों के चूल्हे और घर छोड़ने के लिए विवश करने वाला बल जीवित रहने के लिए संघर्ष, अर्थात् जीवन के लिए संघर्ष है । अतः जीवन और जीविका के साधनों के मध्य संबंध का प्रमाण अकाट्य है । उन्हें जीवित रहने के लिए खाना है : केवल मुट्ठी भर लोग ही खाने के लिए जीवित रहने की विलासिता का बोझ उठा सकते हैं । वे ऐसा तभी कर, अर्थात् खा सकते हैं जब उनके पास जीविका के साधन हों । यही वह प्रसंग है जिसमें न्यायाधिपति डगलस ने बक्सी वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की थी कि मनुष्य के पास कार्य करने का अधिकार उसकी सबसे मूल्यवान स्वाधीनता है क्योंकि यह किसी व्यक्ति को जीवित रहने योग्य बनाता है तथा जीवन के प्रति अधिकार एक मूल्यवान स्वतंत्रता है । मून **बनाम** इलिनायस

[(1877) 94 यू. एस. 113] वाले मामले में न्यायाधिपति फील्ड ने यह मताभिव्यक्ति की थी कि 'जीवन' से प्राणी-अस्तित्व से बढ़कर कोई चीज अभिप्रेत है और जीवन-वंचन के विरुद्ध निषेध का विस्तार उन सभी सीमाओं और कोई काम करने की वैधानिक स्वतंत्रताओं तक है जिनसे जीवन उपभोग्य बनता है । इस न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति खड़क सिंह **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य [1964] 1 एस. सी. आर. 332 वाले मामले में सानुमोदन उद्धृत की थी ।

33. संविधान के अनुच्छेद 39(क) में, जो कि राज्य की नीति का निदेशक तत्व है, यह उपबंधित है कि राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया, इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो । अनुच्छेद 41 में, जो एक अन्य निदेशक तत्व है, अन्य बातों के साथ-साथ, यह उपबंधित है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर बेकारी और अनर्ह अभाव की दशा में काम पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा । अनुच्छेद 37 में यह उपबंधित है कि निदेशक तत्व किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होने के बावजूद भी देश के शासन के लिए मूलभूत तत्व हैं । अनुच्छेद 39(क) और 41 में अंतर्विष्ट तत्व मूल अधिकारों के अर्थ और उनकी अंतर्वस्तु के बोध और निर्वचन के लिए समान रूप से मूलभूत माने जाने चाहिए । यदि राज्य के ऊपर यह बाध्यता है कि वह नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन और काम करने का अधिकार प्राप्त कराए तो जीवन के प्रति अधिकार के तत्व से जीविका के अधिकार को निकालना अतिसिद्धांतवादिता मात्र होगा । राज्य को किसी निश्चयात्मक कार्यवाही द्वारा इस बात के लिए विवश नहीं किया जा सकेगा कि वह नागरिकों के लिए जीविका के पर्याप्त साधनों अथवा काम की व्यवस्था करे । किंतु, यदि कोई व्यक्ति विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवाय अपने जीविका के अधिकार से वंचित किया गया है तो वह ऐसे वंचन को यह कहकर चुनौती दे सकता है कि वह अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार का विरोधी है ।"

(बल देने के लिए इस न्यायालय द्वारा रेखांकित किया गया है)

17. ज्येष्ठ काउंसेल ने **चारु खुराना** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले

[1] (2015) 1 एस. सी. सी. 192.

में इस न्यायालय के हाल ही के विनिश्चय का भी अवलंब लिया, जिसमें **ओल्गा टेलिस** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित ऊपर उल्लिखित सिद्धांत को दोहराया गया है ।

18. दलीलों पर विस्तारपूर्वक विचार करने से पूर्व हम **जीवन बीमा निगम** बनाम **डी. जे. बहादुर**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर द्वारा व्यक्त मत को उद्धृत करेंगे, जिसमें विद्वान् न्यायाधीश ने सामाजिक न्याय से संबंधित विषय न्यायाधीशों के समक्ष विचार के लिए आने पर उनके लिए क्या मार्गदर्शी सिद्धांत होने चाहिएं, उन्हें निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया है :–

> "विधि ऐसा निर्जीव शिल्प नहीं है जो भारतीय-अंग्रेजी काल से हमें विरासत में मिली औपचारिक चिमटियों और रूढ़िगत तकनीक द्वारा बाध्य हो अपितु एक सजीव कला है जो भूतकाल से विच्छिन्न और वर्तमान काल के साथ अवधारित मिलन है और जिसे भारत के लोगों द्वारा अधिनियमित संविधान से आत्मिक शक्ति प्राप्त है । विधि, जैसा कि उपराष्ट्रपति जी. एस. पाठक अपने कई प्राख्यानों में जोर दिया करते थे, इंजीनियर के लिए उपकरण और एक शांतिपूर्ण 'सिविल क्रांति' है जिसके संघटक का एक भाग श्रमजीवी जैसे समाज के कमजोर मानवीय भाग के लिए सद्व्यवहार है । अद्भूत सामाजिक न्याय भारतीय विधियों के निर्वचन पर संविधान के प्रभाव का महत्व और विदेशी ज्ञान का अवलंब लेते हुए इस अनिवार्य स्वीकृत तथ्य को भूलना भारत की लोकतांत्रिक, सामाजिक और गणतंत्रवादी महत्वपूर्ण ज्योति को कमजोर करना है ।"

19. अपीलार्थियों का पक्षकथन, संक्षेप में, यह है कि रेलों को खान-पान नीति, 2010 अधिनियमित करने का अधिकार है । उक्त नीति के निबंधनों के अनुसार, केवल ऐसे अनुज्ञप्तिधारी जिन्हें 2010 की नीति के अधीन अनुज्ञप्ति दी गई थी, अपनी संविदाओं का नवीकरण कराने के हकदार हैं और यह फायदा उन अनुज्ञप्तिधारियों को प्रदान नहीं किया जा सकता है जिन्हें 2010 की नीति के पूर्व अनुज्ञप्ति प्रदान की गई थी । खान-पान नीति, 2010 के अनुसार विद्यमान खान-पान इकाइयों का अनुज्ञप्तियों की अवधि के पर्यवसान होने पर नवीकरण के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है । अनुज्ञप्तिधारी की अनुज्ञप्तियों का नीति के पैरा 16 के अधीन नवीकरण केवल खान-पान नीति, 2010 के अधीन आबंटित

---

[1] [1981] 4 उम. नि. प. 3 = (1981) 1 एस. सी. सी. 315.

अनुज्ञप्तिधारियों पर लागू होगा । अपीलार्थियों ने यह भी दलील दी कि क्षेत्रीय रेलों द्वारा 2013 तक अनुज्ञप्तियों का नवीकरण करने का अभिप्राय बोली और आबंटन प्रक्रिया अंतिम रूप से पूर्ण होने तक केवल अस्थायी व्यवस्था के रूप में प्रवृत्त करना था ।

20. हम अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलील को स्वीकार नहीं कर सकते हैं । रेल बोर्ड ने तारीख 9 अगस्त, 2010 को वाणिज्यिक परिपत्र सं. 37 जारी किया, जिसमें निम्नलिखित अनुदेश अंतर्विष्ट हैं :–

> "1. अनुज्ञप्त इकाइयों का अंतरण –
>
> (घ) क्षेत्रीय रेल उन सभी करारों का, जिनका पर्यवसान हो गया है या अगले छह महीने में पर्यवसान होना है, खान-पान नीति, 2010 के जारी होने की तारीख से छह माह के अधिकतम विस्तार के अध्यधीन रहते हुए विस्तार देकर, नवीकरण करे ।"

इस परिपत्र से यह स्पष्ट होता है कि खान-पान नीति, 2010 के खंड 16 और 17 के अनुसार अनुज्ञप्ति का नवीकरण सभी विद्यमान लघु इकाइयों के अनुज्ञप्तिधारियों को अनुदत्त किया जाना अपेक्षित है । यह भी स्पष्ट होता है कि विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों को निविदा प्रक्रिया में सम्मिलित किए जाने की आवश्यकता नहीं है । दक्षिण केन्द्रीय रेल के मुख्य वाणिज्यिक प्रबंधक द्वारा जारी तारीख 23 अगस्त, 2011 के परिपत्र में दक्षिण केन्द्रीय रेल के सभी प्रभागीय वाणिज्यिक प्रबंधकों और अन्य अधीनस्थ अधिकारियों को यह निदेश दिया गया है कि इस बात की पुष्टि की जाए कि "क-1" "क" और "ख" प्रवर्ग के रेलवे स्टेशनों पर की सभी साधारण लघु इकाइयों और विशेष लघु इकाइयों के कार्यकाल का प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् उनके समाधानप्रद कार्य-संपादन और 2010 की नीति के अनुसार सभी देयों तथा बकायों का संदाय करने पर नवीकरण किया जाए । उक्त परिपत्र को देखते हुए, प्रत्यर्थी एसोसिएशन के सभी सदस्यों की खान-पान संबंधी अनुज्ञप्तियों का जुलाई, 2013 तक नवीकरण किया गया था । मामले के इस पहलू पर उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "जबकि 2010 की नीति में स्वयं विद्यमान अनुज्ञप्तियों का छह माह से अनधिक अवधि के लिए नवीकरण करना परिकल्पित नहीं है, किंतु तारीख 9 अगस्त, 2010 के वाणिज्यिक परिपत्र सं. 37/2010

में जारी किए गए तुरंत प्रभाव से लागू अनुदेशों में क्षेत्रीय रेलों को अनुज्ञप्तियों का नवीकरण 2010 की नीति के जारी होने की तारीख से अधिकतम छह माह की अवधि के लिए करने के लिए निदेशित किया गया । यदि यह समझा जाए कि 2010 की नीति में केवल ऐसी अनुज्ञप्तियों का नवीकरण करने का उपबंध किया गया है जो उक्त नीति के अधीन जारी किए गए हैं, तब ऐसा कोई कारण नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने 2010 की नीति के प्रवर्तन में आने की तारीख से छह माह की अवधि के पर्यवसान पर निविदाएं आमंत्रित क्यों नहीं कीं । प्रत्यर्थी सं. 3 ने निविदाएं आमंत्रित करने की बजाय 2010 की नीति के पैरा 16.1.3 और 16.2.1 के निबंधनों के अनुसार तीन वर्ष की अवधि के लिए सभी साधारण लघु इकाइयों और विशेष लघु इकाइयों का नवीकरण किया । यहां तक कि यह नवीकरण पैरा 16.3 के संशोधित होने से पूर्व किया गया था । यदि पैरा 16.3 के संशोधन के पूर्व से ही 2010 की नीति को इसके सही भाव में समझा जाए, तो यह समझ से बाहर की बात है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने उक्त नीति को, उसका ऐसा निर्वचन करने की ईप्सा करते हुए जो कि इस नीति की स्पष्ट भाषा के प्रतिकूल है, एक अलग दृष्टि से प्रायोजित किया । 2010 की नीति में कहीं भी अनुज्ञप्तियों को दो प्रवर्गों में वर्गीकृत नहीं किया गया है अर्थात् जिन्हें 2010 की नीति के प्रारंभ होने से पूर्व अनुज्ञप्तियां प्रदान की गई थीं और जिन्हें उक्त नीति के पश्चात् अनुज्ञप्तियां प्रदान की गई थीं । इसके विपरीत, सभी साधारण लघु इकाइयों और विशेष लघु इकाइयों को एक ही प्रवर्ग के अधीन रखा गया है । इस बात को विचार में न लेते हुए कि रेलों द्वारा 2005 से पूर्व अनुज्ञप्तियां प्रदान की गई थीं या 2005 से आईआरसीटीसी द्वारा और 2010 के पश्चात् रेलों द्वारा प्रदान की गई थीं, अनुज्ञप्तियों के इन सभी प्रवर्गों का इसमें इसके पूर्व यथानिर्दिष्ट तीन अपेक्षाओं के पूर्ण किए जाने पर अनुज्ञप्तियों का नवीकरण किया जाना परिकल्पित है ।'

(बल देने के लिए इस न्यायालय द्वारा रेखांकन किया गया)

विद्वान् एकल न्यायाधीश के निष्कर्षों को खंड न्यायपीठ द्वारा कायम रखा गया है और हम इनमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं । भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में यह आज्ञापक है कि राज्य की कार्यवाही मनमानी और विभेदकारी नहीं होनी चाहिए । उसे किन्हीं ऐसी बाह्य बातों

से भी मार्गदर्शित नहीं होना चाहिए जो समता के सिद्धांत के प्रतिकूल हों । **आर. डी. शेट्टी** बनाम **अन्तरराष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "21. .....अतः अनुच्छेद 14 में प्रतिष्ठापित समता के सिद्धांत के आवश्यक उपनियम के रूप में यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि राज्य किसी के साथ संबंध स्थापित करने से इनकार करने के लिए हकदार है, फिर भी यदि वह ऐसा करता है तो वह ऐसे संबंध स्थापित करने के लिए किसी भी अपने पसंद के व्यक्ति का मनमाने ढंग से चयन नहीं कर सकता और एक-समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों में विभेद नहीं कर सकता अपितु उसे ऐसे किसी मापदंड या सिद्धांत के अनुकूल कार्य करना चाहिए जो युक्तियुक्तता और विभेद की कसौटी पर खरा उतरे और ऐसे मापदंड या सिद्धांत से किया गया कोई भी विचलन अविधिमान्य होगा यदि वह किसी तार्किक या अविभेदकारी आधार पर समर्थित या न्यायोचित नहीं ठहराया जा सके ।"
>
> (बल देने के लिए इस न्यायालय द्वारा रेखांकन किया गया)

21. भारत एक कल्याणकारी राज्य है । भारत के संविधान का अनुच्छेद 38, जो कि राज्य की नीति का निदेशक तत्व है, निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "38. राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा – (1) राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा ।
>
> 2. राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच की प्रतिष्ठा सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा ।"

22. प्रत्येक कल्याणकारी राज्य का यह कर्तव्य है कि वह रोजगार का

---

[1] [1980] 2 उम. नि. प. 961 = (1979) 3 एस. सी. सी. 489.

सृजन करे । वर्तमान में, देश के लाखों युवा बेरोजगार हैं । जैसा कि **ओल्गा टेलिस** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है, जीविका का अधिकार जीवन के प्रति अधिकार का भाग है । ऐसी अवस्था में, देश की बेरोजगार जनसंख्या के बहुत बड़े भाग का धनी और पूंजीपतियों द्वारा शोषण किया जाना संभाव्य है । अपने अभिकरणों के माध्यम से कार्य करते हुए राज्य का यह कर्तव्य है कि यह सुनिश्चित करे कि किसी कमजोर स्थिति के किसी व्यक्ति का शोषण न हो । **पीपल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स और अन्य** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति भगवती ने कमजोर और अशक्त व्यक्तियों के शोषण पर चिन्ता व्यक्त करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> ".....विधिसम्मत शासन का यह अर्थ नहीं है कि विधि का संरक्षण केवल कुछ भाग्यशाली लोगों को ही सुलभ हो अथवा यह कि विधि का उपयोग निहित स्वार्थों द्वारा उनके नागरिक और राजनैतिक अधिकारों के प्रवर्तन के बहाने यथा-पूर्व स्थिति को बचाने और कायम रखने के लिए करने दिया जाए । गरीबों के भी नागरिक और राजनैतिक अधिकार होते हैं तथा विधि-शासन उनके लिए भी होता है । हालांकि आज इसका अस्तित्व केवल कागज पर है यथार्थ में नहीं । यदि चीनी मिल मालिकों और मद्य सम्राटों को अपना कारबार करने और जन-साधारण का शोषण करके अपनी तिजोरियां भरने के लिए मूल अधिकार प्राप्त है तो क्या समाज के निम्नतम वर्ग के दलितों को अपने खून-पसीने की कमाई से ईमानदारीपूर्वक जीने का कोई मूल अधिकार प्राप्त नहीं है ? .....नागरिक और राजनीतिक अधिकार जो कि स्वाधीनता और लोकतंत्र के लिए अत्यंत मूल्यवान और अमूल्य हैं, हमारे विशाल जन-समूह को प्राप्य नहीं हैं । हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या अर्थात् असंख्य स्त्री-पुरुष और बालक बेहद निर्धन अवस्था में नारकीय जीवन बिता रहे हैं ; वे गरीबी की चक्की में पिस रहे हैं जिसने उनकी कमर तोड़ दी है और उनके नैतिक परिवेश को छिन्न-भिन्न कर दिया है । वर्तमान सामाजिक और आर्थिक प्रणाली में उनकी कोई आस्था नहीं है । ये गरीब और असहाय मनुष्य कौन से नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को प्रवर्तित कराएंगे ?"

23. यह न्यायालय काउंटरमजोरिटेरियन संस्था है और इसे सौंपे गए

---

[1] [1983] 2 उम. नि. प. 135 = (1982) 3 एस. सी. सी. 235.

कार्य के कारण यह सुनिश्चित करने के लिए कर्तव्यबद्ध है कि पददलित अल्पसंख्यकों और समाज के कमजोर वर्गों के लोगों के अधिकार कुचल न दिए जाएं ।

24. इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के लिए एक और महत्वपूर्ण पहलू स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर विगत 67 वर्षों में रेल संपत्ति के कुप्रशासन का है । यद्यपि विधि का यह एक मान्यताप्राप्त सिद्धांत है कि रेल की संपत्ति लोक संपत्ति है, तो भी वास्तविकता यह है कि प्राइवेट उद्यमियों और उद्योगों को कच्ची सामग्री का एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवहन करके अपना कारबार चलाने के लिए अनुज्ञात किया जाता है । रेल अधिनियम, 1989 अधिनियमित होने के पश्चात् रेल संपत्ति का प्रबंध करने के लिए नीति या नियम विरचित करके इसे अनुज्ञप्तिधारियों के पक्ष में आबंटन करने के लिए, जिसमें बड़ी मात्रा में खाली पड़ी संपत्ति की बाबत अनुज्ञप्ति फीस या अधिभोग प्रभार नियत करना सम्मिलित है जिससे बहुत अधिक राजस्व मिल सकता है जो कि जनसाधारण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक प्रशंसनीय ध्येय है, अधिनियम के अध्याय 11क के अधीन रेल भूमि विकास प्राधिकरण स्थापित किया गया । रेलों द्वारा समय-समय पर ऐसे बड़े प्रचालकों की बाबत अनुज्ञप्ति फीस का पुनरीक्षण नहीं किया गया । उन व्यक्तियों की, जो प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्य हैं और जो इन लघु इकाइयों पर अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह से निर्भर हैं, अनुज्ञप्तियों का नवीकरण न करने और उन्हें सार्वजनिक प्रतिस्पर्धा में भागीदार बनाने की नीति पूर्णतः अनुचित, अयुक्तियुक्त और मनमानी है । ऐसे व्यक्तियों के अपनी आजीविका के अधिकार से वंचित होने की संभावना भी एक महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर इस न्यायालय द्वारा अपीलार्थियों द्वारा विरचित नीति का निर्वचन करने के लिए विचार किया जाना है । बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या का मुकाबला करने में राज्य की निष्क्रियता को देखते हुए उसका यह कठोर दृष्टिकोण भयावह है । लोक कृत्यों को प्राइवेट उद्यमियों को सौंपने से स्थिति बदतर हो जाती है जो बाद में सरकार की नीतियों का देश के गरीब और निर्धन लोगों के विरुद्ध विदोहन करते हैं । यदि अपीलार्थियों को नीति के बहाने अनुज्ञप्तिधारियों के पक्ष में अनुज्ञप्तियों के नवीकरण से इनकार करने की अनुज्ञा दी जाती है तो यह उन्हें संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन गारंटीकृत उपजीविका की स्वातंत्र्य के अधिकार तथा उपजीविका के अधिकार से वंचित करने की कोटि में आएगा और अपीलार्थियों की यह

कार्यवाही सामाजिक न्याय तथा समाज के कमजोर वर्गों तथा देश के बेरोजगार युवाओं के उद्धार के प्रति उसके सांविधानिक कर्तव्य के पूर्णतः विरुद्ध होगी ।

25. **कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सेंटर** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "सामाजिक न्याय, समता और व्यक्ति की गरिमा सामाजिक प्रजातंत्र के आधार-स्तंभ हैं । 'सामाजिक न्याय' की धारणा में, जो कि भारत के संविधान में संयोजित है, प्रत्येक नागरिक के व्यक्तित्व की व्यवस्थित रूप से अभिवृद्धि और विकास के लिए आवश्यक विविध सिद्धांत समाविष्ट हैं । .....सामाजिक न्याय गरीब, कमजोर, दलितों, जनजातियों और समाज के वंचित वर्गों की कठिनाइयों को कम करने और गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए उन्हें समानता के स्तर पर लाने के लिए एक प्रबल साधन है । सामाजिक न्याय किसी समाज का एक सहज और एकल विचार ही नहीं अपितु गरीबों आदि को बाधाओं, निर्धनता से छुटकारा दिलाने और संकट दूर करने तथा उनके जीवन को जीने योग्य बनाने और समाज के बृहत्तर भाग के अधिकाधिक कल्याण के लिए जटिल सामाजिक परिवर्तन का एक आवश्यक अंग है । दूसरे शब्दों में, सामाजिक न्याय का उद्देश्य सारभूत मात्रा तक सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समानता को प्राप्त करना है, जो विधिसम्मत प्रत्याशा है । कर्मकार के लिए सामाजिक सुरक्षा, काम और आराम की न्यायसंगत मानविक दशाएं जीवन के प्रति उसके सार्थक अधिकार के अंग हैं और अपने व्यक्तित्व की आत्म-अभिव्यक्ति की प्राप्ति और गरिमा के साथ जीवन जीने के लिए राज्य को सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत का सामर्थ्य अनुसार हिस्सा देते हुए उन्हें स्वास्थ्य, आर्थिक सुरक्षा और सभ्य जीवन के कम-से-कम न्यूनतम स्तर पर पहुचांने के लिए सुविधाएं और अवसर प्रदान करने चाहिएं ।"

इसके अतिरिक्त, **साधुराम बंसल** बनाम **पुलिन सरकार**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] (1995) 3 एस. सी. सी. 42.

[2] [1984] 4 उम. नि. प. 605 = (1984) 4 एस. सी. सी. 410.

"सामाजिक न्याय की धारणा में कोई रूढ़िवादी सूत्र या कोई जादुई माया । इससे तो मात्र यह अभिप्रेत है कि जहां तक दो पक्षकारों का संबंध है, उनके बीच यदि कोई संव्यवहार एक पक्षकार के साथ इस प्रकार किया जाता है जिससे कि दूसरे पक्षकार को कोई गंभीर हानि नहीं पहुंचती है, तो न्यायालय का झुकाव समाज के कमजोर वर्ग की ओर होगा । सामाजिक न्याय बहुसंख्यक व्यक्तियों के अधिकतम लाभ का अभिज्ञान होगा जहां कि किसी भी व्यक्ति को प्रोद्भूत विधिक अधिकारों का प्रवंचन नहीं किया जाए । यदि ऐसा किया जा सकता है तो वस्तुतः यह निश्चित है कि सामाजिक न्याय तकनीकी नियम पर अभिभावी होगा । यह समय तथा स्थिति की अनुभूत आवश्यकताओं के प्रत्युत्तर में है जिससे कि बृहत्तर संख्यागण को अधिक लाभ पहुंचाया जा सके भले ही वहां किसी पक्षकार के पक्ष में किसी तकनीकी नियम से मुंह मोड़ना पड़े ।"

26. सामाजिक न्याय की विकसित धारणा को ध्यान में रखते हुए, हम प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्यों को, जो अनुज्ञप्तिधारी हैं, उनके छोटे-मोटे कारबार जारी रखने के लिए, विशेष तौर पर देश में कुप्रशासन और सम-समाज के सांविधानिक सिद्धांत, जो सभी नागरिकों को गरिमामय जीवन जीने का अवसर प्रदान करता है, के अप्रवर्तन के कारण रोजगार की संभावना के अभाव में, अनुज्ञात करते हैं । **फ्रांसिस कोराली मुल्लिन** बनाम **प्रशासक, संघ राज्यक्षेत्र दिल्ली और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा गरिमा के साथ जीने के अधिकार को जीवन के प्रति अधिकार का भाग होना निम्नलिखित रूप में निर्वचित किया गया है :–

"हमारे विचार में जीवन के प्रति अधिकार के अंतर्गत मानविक गरिमा के साथ रहने से संबंधित अधिकार अंतर्विष्ट है और साथ ही साथ उससे संबंधित जो कुछ भी है, वह सभी इसमें शामिल है अर्थात् जीवन की साधारण आवश्यकताएं मात्र जैसे कि पर्याप्त रोटी, कपड़ा और मकान तथा परिशीलन, लेखन के लिए अन्य विभिन्न रूपों में अपने आप को अभिव्यक्त करने के लिए सुविधाएं और स्वतंत्र रूप से आने-जाने और साथ ही मनुष्यों के साथ मिलने-जुलने और संपर्क करने के लिए सुविधाएं । निस्संदेह, इस अधिकार का आकार उपांगों की अंतर्वस्तु देश के आर्थिक विकास की व्याप्ति पर निर्भर करेगा

[1] [1981] 4 उम. नि. प. 1133 = (1981) 1 एस. सी. सी. 608.

किंतु यह आवश्यक है कि मामले को चाहे किसी भी दृष्टि से देखा जाए, उसके अंतर्गत जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं संबंधी अधिकार तथा ऐसे कृत्यों और कार्यकलाप को अग्रसर करने का अधिकार जो कि स्वयं मनुष्य की न्यूनतम अभिव्यक्ति मात्र गठित करता है ।"

27. अतः, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि खान-पान नीति, 2010 के उपबंध संबंधित प्रत्यर्थियों पर लागू होते हैं । प्रत्यर्थी-एसोसिएशन के सदस्यों की अनुज्ञप्तियों का नवीकरण न करने की रेलों की कार्यवाही मनमानी, अयुक्तियुक्त, अनुचित और विभेदकारी है और इसे विधि की दृष्टि से कायम रखने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है ।

28. ऊपर उल्लिखित कारणों से यह न्यायालय उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है । ये सिविल अपील खारिज की जाती हैं । आक्षेपित आदेश पर रोकादेश लगाने वाले तारीख 11 अप्रैल, 2014 के आदेश को बातिल किया जाता है । तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि केवल वे अनुज्ञप्तिधारी अपनी अनुज्ञप्तियों के नवीकरण के लिए अर्ह हो सकेंगे जो शपथपत्र पर यह घोषणा कर सकते हैं कि उनके पास उनके नाम में रेलवे स्टेशनों पर एक से अधिक दुकान या खोमचे की अनुज्ञप्ति या बेनामी अनुज्ञप्ति नहीं है और अनुज्ञप्ति-फीस में समय-समय युक्तियुक्त वृद्धि के लिए तैयार हैं । सभी लंबित आवेदनों का निपटारा किया जाता है ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

जस.

[2016] 3 उम. नि. प. 57

राम सरन वार्ष्णेय और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

5 फरवरी, 2016

न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर और न्यायमूर्ति एन. वी. रमण

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 498क और 506 [सपठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 3 और 4] – विवाहिता को तंग किया जाना – विवाहिता की तीन ननद का अपनी ससुराल में दो अवसर पर आने से उनके द्वारा विवाहिता को तंग किए जाने का कोई संकेत नहीं मिलता, अतः, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर तीनों ननद के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करना न्यायसंगत नहीं है अतः केवल सास और श्वसुर के विरुद्ध ही उक्त धाराओं के अधीन आपराधिक कार्यवाही किया जाना उचित और तर्कसंगत है ।

मुकुल गुप्ता का विवाह तारीख 11 जून, 1997 को सोनिया गुप्ता के साथ हुआ था । राम सरन वार्ष्णेय और सरोज वार्ष्णेय क्रमशः विवाहिता के सास और श्वसुर हैं । अपीलार्थी-4, 5 और 6 विवाहिता की ननदें हैं । तारीख 9 दिसंबर, 2000 को अपीलार्थी-3 (पति) और विवाहिता के इस विवाह संबंध से एक पुत्री ने जन्म लिया । यह अभिकथन किया गया है कि विवाहित-पति और विवाहिता, तारीख 30 अक्तूबर, 2001 तक पुणे में वैवाहिक गृह में रहे थे, क्योंकि इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थियों ने यह पक्षकथन रखा है कि विवाहिता, तारीख 30 अक्तूबर, 2001 को वैवाहिक गृह छोड़कर चली गई थी । यह भी अभिकथन किया गया है कि तारीख 15 मार्च, 2002 को विवाहिता ने राम सरन वार्ष्णेय अपीलार्थी-1 और सरोज वार्ष्णेय अपीलार्थी-2 के लखनऊ स्थित मकान में बलपूर्वक प्रवेश करने का प्रयास किया । परिणामतः अपीलार्थी-1 और 2 ने विवाहिता को अपने मकान में प्रवेश करने से रोकने के लिए सिविल कार्यवाहियां संस्थित कीं । तारीख 15 मार्च, 2002 के आदेश द्वारा जिला न्यायाधीश, लखनऊ ने आवश्यक रोक आदेश अपीलार्थी-1 और 2 के पक्ष में पारित किया । कुल मिलाकर इसका यह परिणाम हुआ कि अपीलार्थी-1 को आबंटित किए गए मकान अर्थात् सी-79, बटलर पैलेस कालोनी, पुलिस थाना हजरतगंज, लखनऊ में न्यायालय की अनुमति के बिना बलपूर्वक प्रवेश करने से

विवाहिता को रोक दिया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पक्षकारों के बीच संबंध सौहार्द नहीं थे । अतः मुकुल गुप्ता ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1956 की धारा 13 के अधीन सोनिया गुप्ता के विरुद्ध विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल की । सुनवाई के दौरान अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि मुकुल गुप्ता द्वारा विवाह-विच्छेद अर्जी फाइल किए जाने पर प्रतिशोधात्मक दृष्टि से सोनिया गुप्ता ने दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के साथ पठित दंड संहिता की धारा 498क और 506 के अधीन पुलिस थाना शिव कुट्टी, इलाहाबाद में 2002 की अपराध सं. 326 के तहत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई । विवाहिता द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह अभिकथन किया गया है कि अपीलार्थी उसे तंग करते थे । इस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के दर्ज किए जाने के परिणामस्वरूप मामले का अन्वेषण पुलिस निरीक्षक कृष्ण पाल सिंह को सौंपा गया । अपीलार्थियों पर विवाहिता द्वारा लगाए गए अभिकथनों के आधार पर गिरफ्तारी से बचने के लिए, उन्होंने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष 2002 की रिट याचिका सं. 2600 फाइल की । इसमें विवाद नहीं है कि उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी थी । उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – तारीख 10 जुलाई, 2003 को तैयार की गई मामला बंद करने की द्वितीय रिपोर्ट पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा सम्यक् रूप से विचार किया गया है । तारीख 1 मार्च, 2008 को पारित आदेश में सेशन न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित उपर्युक्त निष्कर्ष को अपीलार्थियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है, अतः इसे अंतिम माना जा सकता है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील की पुनरावृत्ति किए बिना न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि दी गई दलीलें पूर्णतया न्यायोचित हैं और उन्हें स्वीकार किया जाना चाहिए । मामले को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय एतद्द्वारा अभिनिर्धारित करता है कि तारीख 6 सितंबर, 2006 के आदेश को पारित करते समय, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने तारीख 10 जुलाई, 2003 की मामला बंद करने की द्वितीय रिपोर्ट पर सम्यक् रूप से विचार किया है । मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट तारीख 6 सितंबर, 2006 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित आदेश पर आधारित है, जिसके द्वारा पुनः अन्वेषण किए जाने का आदेश किया गया था । प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि अपीलार्थियों द्वारा फाइल

किए गए पुनरीक्षण आवेदन में (जो सेशन न्यायाधीश, लखनऊ के समक्ष फाइल किया गया था), मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पुनः अन्वेषण किए जाने का आदेश पारित किया गया था जिस पर 7 नवंबर, 2006 को रोक लगा दी गई । सेशन न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा पारित किए गए उपर्युक्त रोक आदेश को दृष्टिगत करते हुए, कोई भी अन्वेषण तारीख 6 सितंबर, 2006 के आदेश पारित किए जाने के पश्चात् पुनः नहीं किया जा सकता था । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई है कि "मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट" तारीख 27 फरवरी, 2007 को प्रस्तुत की गई थी । जबकि तारीख 7 नवंबर, 2006 को पारित अंतरिम आदेश तारीख 1 मार्च, 2008 को निष्प्रभाावी हुआ था अर्थात् उस समय जब अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सेशन न्यायाधीश द्वारा खारिज किया गया था । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि तारीख 27 फरवरी, 2007 को तैयार की गई मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट जारी करने के लिए जो अन्वेषण की सम्पूर्ण प्रक्रिया की गई है वह विधि की दृष्टि से बातिल है । मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पुनः अन्वेषण किए जाने के आदेश के पश्चात् तैयार की गई मामला बंद किए जाने की तृतीय रिपोर्ट पर न्यायालय को कोई संदेह नहीं है । मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित किए गए उक्त आदेश पर तारीख 7 नवंबर, 2006 को सेशन न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा रोक लगाई गई और वह आदेश तारीख 1 मार्च, 2008 तक बना रहा था । इसी दौरान, रोक आदेश के बने रहने तक अन्वेषण पूरा किया गया और तृतीय अन्वेषण अधिकारी एन. के. बाजपयी ने तारीख 27 फरवरी 2007 को मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट प्रस्तुत की । चूंकि उपरोक्त अन्वेषण के आधार पर तारीख 27 फरवरी, 2007 को तैयार की गई मामला बंद करने की रिपार्ट से स्पष्ट रूप से न्यायिक आदेश का अतिक्रमण होता है, न्यायालय की सुविचारित राय में, इस प्रकार प्रस्तुत की गई रिपोर्ट विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है और उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता । इसमें इसके ऊपर अभिलिखित निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि जहां तक वर्तमान संविवाद का संबंध है मामला बंद किए जाने की द्वितीय और तृतीय रिपोर्टों पर विचार नहीं किया गया है, विधि की दृष्टि से न्यायोचित अभिवाक् के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता । यह दलील तदनुसार खारिज की जाती है ।

अपीलार्थी सं. 4, 5 और 6 अर्थात् विवाहिता भावना वार्ष्णेय, रेणु गुप्ता और तुनिका जायसवाल, ये सभी सोनिया गुप्ता की ननदें हैं । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, ये सभी महिलाएं प्रत्यर्थी सं. 2 (विवाहिता) के पति अर्थात् मुकुल गुप्ता की बहने हैं । न्यायालय को यह बताया गया है कि अपीलार्थी सं. 4, 5 और 6 सभी विवाहित हैं और अलग-अलग स्थानों पर रहती हैं । वे अपीलार्थी सं. 1 से 3 में से किसी के भी साथ नहीं रहती हैं । चूंकि ये महिलाएं विवाहित हैं और स्वतंत्र रूप से अलग-अलग स्थानों पर रहती हैं, इसलिए उनको अपीलार्थी सं. 1 से 3 के साथ सोनिया गुप्ता के संबंधों से कोई लेना देना नहीं है । इसके अतिरिक्त, न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर भी दिलाया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 अर्थात् सोनिया गुप्ता द्वारा किसी भी अपीलार्थी अर्थात् अपीलार्थी सं. 4, 5 और 6 पर कोई भी स्पष्ट अभिकथन नहीं किया गया है । यहां तक कि मामले की सुनवाई के दौरान, सोनिया गुप्ता जो स्वयं न्यायालय में पेश हुई थी, उक्त तथ्यात्मक स्थिति पर विवाद नहीं किया है । सुनवाई के दौरान सोनिया गुप्ता की ओर से मात्र दलील यह दी गई है कि प्रत्यर्थी सं. 2 के वैवाहिक गृह पर तीनों ननद "गृह प्रवेश" और अपनी पुत्री के "नामकरण" के अवसर पर मिलने आई थीं । न्यायालय का यह मत है कि सोनिया गुप्ता के घर पर तीनों ननदों का इन दो अवसरों पर आने का उद्देश्य आयोजन में सम्मिलित होना था और इसे यह नहीं कहा जा सकता है कि इन महिलाओं ने प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ उत्पीड़न का व्यवहार किया था । किसी भी स्थिति में, इस मामले के अभिलेख पर ऐसी किसी भी सामग्री के अभाव में जिसका संबंध इन दो अवसरों पर सोनिया गुप्ता को तंग किए जाने के साथ हो, न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि अपीलार्थी सं. 4, 5 और 6 के विरुद्ध संस्थित की गई कार्यवाही जो 10 अप्रैल, 2002 को सोनिया गुप्ता द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर की गई थी, न्यायोचित नहीं है । यह कार्यवाही अभिखंडित किए जाने योग्य है । तदनुसार यह अभिखंडित की जाती है । (पैरा 18, 19, 21, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 5 एस. सी. सी. 762 :
विनय त्यागी बनाम **इरशाद अली** उर्फ **दीपक और अन्य** । 15

अपीली दांडिक अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 128.

2008 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 2463 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ के तारीख 1 दिसंबर, 2008 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सुश्री हुजैफा अहमदी (ज्येष्ठ अधिवक्ता), सर्वश्री एम. शोएब आलम, शाहरुख आलम, रोहन और उज्ज्वल सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से — श्री पवनश्री अग्रवाल और सुश्री प्रगति नीखरा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर ने दिया ।

न्या. खेहर – वर्तमान अपील में तारीख 7 मई, 2008 को पारित किए गए उस आदेश को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा अपीलार्थियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 498क और 506 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 के अधीन आरोप पत्र फाइल किए जाने पर कार्यवाही की गई थी । मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा तारीख 12 मई, 2008 को पारित किए गए उस आदेश को भी चुनौती दी गई है जिसके द्वारा उपरोक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपीलार्थियों के विरुद्ध फाइल किए गए आरोप पत्र का संज्ञान लिया था ।

2. संविवाद से संबंधित तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है । इस संबंध में यह बताना सुसंगत होगा कि मुकुल गुप्ता (अपीलार्थी-3) का विवाह तारीख 11 जून, 1997 को सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी-2) के साथ हुआ था । राम सरन वार्ष्णेय (अपीलार्थी-1) और सरोज वार्ष्णेय (अपीलार्थी-2) क्रमशः प्रत्यर्थी-2 के सास और श्वसुर हैं । अपीलार्थी-4, 5 और 6 प्रत्यर्थी-2 की ननद हैं ।

3. तारीख 9 दिसंबर, 2000 को अपीलार्थी-3 और प्रत्यर्थी-2 के इस विवाह संबंध से एक पुत्री ने जन्म लिया । यह अभिकथन किया गया है कि अपीलार्थी-3 और प्रत्यर्थी-2, तारीख 30 अक्तूबर, 2001 तक पुणे में वैवाहिक गृह में रहे थे, क्योंकि इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थियों ने यह पक्षकथन रखा है कि प्रत्यर्थी-2, तारीख 30 अक्तूबर, 2001 को वैवाहिक गृह छोड़कर चली गई थी । यह भी अभिकथन किया गया है कि तारीख

15 मार्च, 2002 को प्रत्यर्थी-2 ने राम सरन वार्ष्णेय और सरोज वार्ष्णेय (अर्थात् सास-श्वसुर) के लखनऊ स्थित मकान में बलपूर्वक प्रवेश करने का प्रयास किया । परिणामतः अपीलार्थी-1 और 2 ने प्रत्यर्थी-2 को अपने मकान में प्रवेश करने से रोकने के लिए सिविल कार्यवाहियां संस्थित कीं । तारीख 15 मार्च, 2002 के आदेश द्वारा जिला न्यायाधीश, लखनऊ ने आवश्यक रोक आदेश अपीलार्थी-1 और 2 के पक्ष में पारित किया । कुल मिलाकर इसका यह परिणाम हुआ कि अपीलार्थी-1 को आबंटित किए गए मकान अर्थात् सी-79, बटलर पैलेस कालोनी, पुलिस थाना हजरतगंज, लखनऊ में न्यायालय की अनुमति के बिना बलपूर्वक प्रवेश करने से प्रत्यर्थी-2 को रोक दिया गया ।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पक्षकारों के बीच संबंध सौहार्द नहीं थे । अतः मुकुल गुप्ता (अपीलार्थी-3) ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1956 की धारा 13 के अधीन सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी-2) के विरुद्ध विवाह-विच्छेदन की अर्जी फाइल की । सुनवाई के दौरान अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि मुकुल गुप्ता (अपीलार्थी-3) द्वारा विवाह-विच्छेद अर्जी फाइल किए जाने पर प्रतिशोधात्मक दृष्टि से सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी-2) ने दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के साथ पठित दंड संहिता की धारा 498क और 506 के अधीन पुलिस थाना शिव कुट्टी, इलाहाबाद में 2002 की अपराध सं. 326 के तहत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई । प्रत्यर्थी-2 द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह अभिकथन किया गया है कि अपीलार्थी उसे तंग करते थे । इस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के दर्ज किए जाने के परिणामस्वरूप मामले का अन्वेषण पुलिस निरीक्षक कृष्ण पाल सिंह को सौंपा गया । अपीलार्थियों पर प्रत्यर्थी-2 द्वारा लगाए गए अभिकथनों के आधार पर गिरफ्तारी से बचने के लिए, उन्होंने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष 2002 की रिट याचिका सं. 2600 फाइल की । इसमें विवाद नहीं है कि उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी थी ।

5. कृष्ण पाल सिंह ने मामले का अन्वेषण करने के पश्चात् तारीख 27 अप्रैल, 2003 को मामला बंद करने की रिपोर्ट फाइल की । उक्त रिपोर्ट को इसमें इसके पश्चात् "मामला बंद करने की प्रथम रिपोर्ट" कहा जाएगा । उक्त रिपोर्ट की भाषा निम्न प्रकार है :–

> "यह कथन किया गया है कि तारीख 10 अप्रैल, 2002 को शिकायतकर्ता की ओर से पुलिस थाना शिव कुट्टी, इलाहाबाद ने सूचना प्राप्त होने और मामला दर्ज किए जाने के पश्चात् पुलिस थाना

हजरतगंज के सहायक पुलिस उप-निरीक्षक श्री के. पी. सिंह ने अन्वेषण आरंभ किया और उसकी जानकारी पुलिस थाना हजरतगंज के सर्किल अधिकारी को दी । इसके पश्चात् मैंने अन्वेषण किया और सम्पूर्ण मामले का अन्वेषण करने तथा साक्षियों के कथन अभिलिखित करने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह पाया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथनों में कोई सार नहीं है । इसके अतिरिक्त, दोनों पक्षों के बीच आपसी मतभेदों और अहंकार को लेकर विवाद था । अभियुक्त ने पहले ही विवाह-विच्छेद के लिए एक मामला फाइल कर रखा था और इसके प्रतिशोध में शिकायतकर्ता पत्नी ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई । सम्पूर्ण साक्ष्य का परिशीलन करने पर दहेज का कोई भी मामला, जैसाकि अभिकथन किया गया है, नहीं बनता है । अतः, अन्वेषण के दौरान साक्ष्य का अभाव होने के कारण अंतिम रिपोर्ट बंद की जाती है । अंतिम रिपोर्ट स्वीकार की जाए ।"

6. ऐसा प्रतीत होता है कि सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी-2) ने कृष्ण पाल सिंह द्वारा किए गए अन्वेषण पर असंतोष प्रकट किया है । अतः उसने पुलिस अधीक्षक, पूर्वी लखनऊ के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जिसमें उसने अन्य किसी पुलिस थाने द्वारा अन्वेषण किए जाने की मांग की । इस संदर्भ में, इस पर विचार करना सुसंगत होगा कि पुलिस अधीक्षक ने पुलिस थाना हजरतगंज के थाना प्रभारी द्वारा अन्वेषण किए जाने का आदेश किया । तदनुसार, बदन सिंह ने अन्वेषण किया । अन्वेषण करने के पश्चात्, बदन सिंह ने तारीख 10 जुलाई, 2003 को मामला बंद किए जाने की रिपोर्ट प्रस्तुत की । इस रिपोर्ट को इसमें इसके पश्चात् "मामला बंद किए जाने की द्वितीय रिपोर्ट" । इस रिपोर्ट की भाषा निम्न प्रकार है :–

"मैंने इस मामले के भूतपूर्व अन्वेषण अधिकारी द्वारा तैयार की गई केस डायरी का परिशीलन किया है और उस पर सूक्ष्मता से विचार किया है । मैंने केस डायरी से संबंधित कथनों और उपाबंधों की अंतर्वस्तु पर भी विचार किया है । मैंने शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के कथनों पर भी विचार किया है । शिकायतकर्ता पत्नी और उसके परिवार के सदस्यों ने 10 लाख रुपए की मांग दहेज के रूप में किए जाने का केवल मौखिक कथन किया है और इस संबंध में शिकायतकर्ता या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, यह साबित करने

के लिए कोई भी स्वतंत्र और निष्पक्ष साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया है कि दहेज में धन की मांग की गई थी । शिकायतकर्ता पत्नी अपने पति के साथ स्वेच्छा से आस्ट्रेलिया, अमरीका, सिंगापुर और पुणे में कई वर्ष रही थी । यह पति और पत्नी के बीच अहंकार का मामला है क्योंकि पत्नी का संबंध एक धनाढ्य और समृद्ध परिवार से है और वह एक शिक्षित महिला है, इसीलिए वह स्वयं को पति से किसी भी प्रकार कम नहीं समझती है । इसके अतिरिक्त, उसका पति मुकुल गुप्ता एक प्रशासनिक अधिकारी का पुत्र है और निदेशक जैसे उच्च पद पर कार्यरत है । पति ने परिवार न्यायालय, लखनऊ के समक्ष विवाह-विच्छेद का मामला फाइल किया है क्योंकि उसकी पत्नी उसके और उसके परिवार के सदस्यों के साथ समुचित व्यवहार नहीं करती थी । शिकायतकर्ता ने अपने पति पर यह दबाव डालने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई है कि वह विवाह-विच्छेद का मामला वापस ले ले और वह उसके साथ रहने लगे और इसीलिए पत्नी ने दहेज की मांग को लेकर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई है । भूतपूर्व अन्वेषण अधिकारी श्री सी. एल. सचान (पुलिस उप-निरीक्षक) ने मामले के प्रत्येक बिन्दु और शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के कथनों पर विचार किया है और अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है । भूतपूर्व अन्वेषण अधिकारी की रिपोर्ट और अन्य साक्षियों के कथनों का परिशीलन करने के पश्चात् मैं भूतपूर्व अन्वेषण अधिकारी द्वारा किए गए अन्वेषण से पूर्णतया सहमत हूं और मेरी सुविचारित राय में इस अन्वेषण अधिकारी द्वारा कोई भी ऐसी गलती नहीं की गई है जिसके आधार पर फिर से अन्वेषण किया जाना आवश्यक हो । अतः मैं भूतपूर्व अन्वेषण अधिकारी द्वारा किए गए अन्वेषण से पूर्णतया सहमत हूं और वर्तमान अंतिम रिपोर्ट फाइल की जा रही है जिसे स्वीकार किया जाए ।"

7. सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी-2) ने मामला बंद किए जाने के संबंध में तारीख 27 अप्रैल, 2003 की प्रथम रिपोर्ट फाइल किए जाने के विरुद्ध मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ के समक्ष अभ्यापत्ति अर्जी फाइल की है । पूर्वोक्त अभ्यापत्ति अर्जी तारीख 17 जुलाई, 2006 को फाइल की । प्रत्यर्थी-2 द्वारा उठाए गए मुद्दों पर विचार करने के पश्चात् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने तारीख 6 सितंबर, 2006 को पुनः अन्वेषण किए जाने का आदेश पारित किया था ।

8. तारीख 6 सितंबर, 2016 के आदेश से व्यथित होकर राम सरन वार्ष्णेय (अपीलार्थी-1) और सरोज वार्ष्णेय (अपीलार्थी-2) ने सेशन न्यायाधीश, लखनऊ के समक्ष 2006 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 378 फाइल किया । तारीख 7 नवंबर, 2006 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय ने तारीख 6 सितंबर, 2006 को पारित किए गए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के उस आदेश पर रोक लगाई जिसके द्वारा उन्होंने उस मामले में पुनः अन्वेषण करने का आदेश किया था ।

9. इस तथ्य के बावजूद कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित किए गए तारीख 6 सितंबर, 2006 के आदेश पर पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा रोक लगाई गई, एक अन्य अन्वेषण अधिकारी एन. के. बाजपयी द्वारा आगे अन्वेषण जारी रखा गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, अन्वेषण अधिकारी ने तारीख 27 फरवरी, 2007 को मामला बंद करने की रिपोर्ट प्रस्तुत की । इस रिपोर्ट को इसमें इसके पश्चात् "मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट" कहा गया है । यहां सम्पूर्ण रिपोर्ट का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है । तदनुसार, उस रिपोर्ट का सुसंगत भाग निम्न प्रकार उद्धृत किया जा रहा है :–

> "मुकुल गुप्ता (अभियुक्त-3) लंदन में तैनात है । तारीख 8 फरवरी, 2007 को लखनऊ वापस आने पर उससे सम्पर्क किया गया । उसके पिता श्री आर. एस. वार्ष्णेय और माता श्रीमती सरोज वार्ष्णेय सीतापुर, श्री नाथजी विहार कालोनी स्थित अपने मकान में रहते हैं । इन लोगों से भी सम्पर्क किया गया और उन्हें यह बताया गया कि तारीख 14 फरवरी, 2002 को जिला मजिस्ट्रेट के नाम एक शिकायत पत्र श्री डी. डी. वार्ष्णेय द्वारा लिखा गया था जो कि एक कूटरचित दस्तावेज है क्योंकि जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में ऐसा कोई भी पत्र प्राप्त नहीं हुआ था । इस संबंध में तारीख 8 अगस्त, 2002 को एक सबूत प्रस्तुत किया गया है और उसकी एक प्रति फाइल की गई है । मुकुल ने यह भी बताया है कि उसने सोनिया के नाम 2,50,000/- रुपए का एक बैंक ड्राफ्ट बनवाया था और अप्रैल, 2003 से प्रभावी 5,000/- रुपए प्रतिमाह के रूप में विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों के दौरान अनुरक्षण के रूप में दिया गया है । उसने सोनिया के कथन की एक प्रमाणित प्रति भी दी है जो इलाहाबाद में न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन मामला सं. 365/02 के अनुसार अभिलिखित किया गया है ।

इस दस्तावेज में सोनिया ने यह स्वीकार किया है कि मुकुल ने एफडी तैयार कराई थी और वह अनुरक्षण भत्ता 5,000/- रुपए प्रतिमाह की दर पर प्राप्त कर रही है । मुकुल ने यह भी संस्वीकृत किया है कि उसके और मुकुल के बीच तनावपूर्ण संबंध थे और वह मुकुल से माफी मांगा करती थी । सोनिया ने यह भी संस्वीकृत किया है कि तारीख 9 फरवरी, 2002 को उसने मुकुल को ईमेल भेजा था जिसमें उसने यह उल्लेख किया था कि मुकुल के परिवार वाले दहेज की मांग कर रहे हैं और कह रहे हैं कि 10 लाख रुपए न दिए जाने पर सोनिया को तंग किया जाएगा और उसे यातना दी जाएगी । दहेज की मांग के संबंध में कोई भी साक्ष्य या स्वतंत्र साक्षी शिकायतकर्ता द्वारा या उसके परिवार के सदस्य द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त किसी भी साक्षी ने दहेज के रूप में आस्ट्रेलिया, अमरीका, सिंगापुर और पुणे में भी 10 लाख रुपए मांगे जाने की बात नहीं कही है । यह विवाद पति और पत्नी के बीच अहंकार को लेकर हुआ था क्योंकि पत्नी एक धनाढ्य और समृद्ध परिवार से थी और उसने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उच्चतर शिक्षा प्राप्त की थी इसलिए वह स्वयं को अपने पति से किसी भी प्रकार कम नहीं समझती थी । मुकुल गुप्ता भी एक प्रशासनिक अधिकारी का पुत्र है और वह विदेश में एक उच्च पद पर नियुक्त है । उसने परिवार न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद का मामला फाइल किया है क्योंकि उसके और उसके परिवार वालों के साथ उसकी पत्नी उचित व्यवहार नहीं कर रही थी । पत्नी ने भी पति और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध दहेज का मामला इस दृष्टि से फाइल किया हुआ है कि पति विवाह-विच्छेद का मामला वापस ले ले और वह अपनी पत्नी के साथ रहने के लिए मजबूर हो जाए । भूतपूर्व अन्वेषण अधिकारी श्री सी. एल. सचान (उप-निरीक्षक) और उप-निरीक्षक श्री बदन सिंह पुलिस थाना हुसैनगंज ने शिकायतकर्ता और परिवार के सदस्यों द्वारा किए गए अभिकथन के प्रत्येक मुद्दों पर अन्वेषण का विश्लेषण करने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी ने अंतिम रिपोर्ट तैयार की है । मैं भूतपूर्व अन्वेषण अधिकारियों द्वारा किए गए पूर्ववर्ती अन्वेषणों से भी सहमत हूं । मेरे अनुसार, ऐसा कोई भी मुद्दा विचार किए जाने से शेष नहीं रहा है जिसके लिए आगे और अन्वेषण किया जाना आवश्यक हो । अतः, मैं पूर्ववर्ती अन्वेषण से सहमत हूं । अंतिम रिपोर्ट स्वीकार की जाए ।"

10. यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि प्रत्यर्थी-2 के सास-श्वसुर द्वारा फाइल किया गया पुनरीक्षण आवेदन जिसके अंतर्गत आगे अन्वेषण किए जाने के आदेश को चुनौती दी गई है, तारीख 1 मार्च, 2008 को खारिज कर दिया गया । ऐसा प्रतीत होता है, उक्त आदेश अंतिम चरण पर पहुंच चुका है क्योंकि अभिवाक् से इस मामले में अपीलार्थियों द्वारा कोई भी कार्यवाही किया जाना उपदर्शित नहीं होता है ।

11. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान दिलाया है कि मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात् इस न्यायालय द्वारा कोई भी निदेश इस मामले में आगे और अन्वेषण करने के लिए नहीं दिया गया है । सुनवाई के दौरान यह दलील दी गई है कि पुलिस के किसी भी वरिष्ठ अधिकारी द्वारा आगे और अन्वेषण किए जाने का भी आदेश नहीं किया गया है । फिर भी, अपीलार्थियों की सहायता के लिए प्रत्यर्थी-2 द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में आगे और अन्वेषण किया गया, जो "मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट" प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् भी तारीख 4 अप्रैल, 2002 को पुनः किया गया । यह दलील दी गई है कि उपर्युक्त अन्वेषण का तब पता चला जब सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी-2) ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ के समक्ष अन्वेषण की स्थिति जानने के लिए आवेदन किया था, तारीख 6 सितंबर, 2006 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा निदेश दिए जाने के अनुसरण में इस मामले में आगे अन्वेषण किया गया । उक्त आवेदन का संज्ञान लेते हुए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने तारीख 27 मार्च, 2008 को थाने के भारसाधक अधिकारी को, कार्रवाई किए जाने से संबंधित रिपोर्ट फाइल करने का निदेश दिया । इस प्रक्रम पर मामले का अन्वेषण एक अन्य अन्वेषण अधिकारी अर्थात् उमा शंकर त्रिपाठी को सौंपा गया ।

12. अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् चौथे अन्वेषण अधिकारी उमाशंकर त्रिपाठी ने तारीख 7 मई, 2008 को आरोप पत्र फाइल किया । उपरोक्त आरोप पत्र की अंतर्वस्तु निम्न प्रकार है :–

> "ऊपर उल्लिखित अभियोजन मामला तारीख 10 अप्रैल, 2002 को शिकायतकर्ता श्रीमती सोनिया गुप्ता के कथन के आधार पर दर्ज कराया गया जिसका अन्वेषण सर्वप्रथम पुलिस थाना हजरतगंज के सर्किल अधिकारी श्री पंकज गौतम, उप-निरीक्षक के. पी. सिंह, उप-निरीक्षक सी. एल. सचान और उप-निरीक्षक एस. के. बाजपयी द्वारा किया गया । सभी अन्वेषण अधिकारियों ने अन्वेषण के पश्चात् अंतिम

रिपोर्ट सं. 207 प्रस्तुत की । तथापि, माननीय न्यायालय ने शिकायतकर्ता की अर्जी के आधार पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 178 के अधीन अन्वेषण किए जाने का आदेश पारित किया । न्यायालय के आदेश के अनुसरण में अन्वेषण आरंभ किया गया ।

शिकायतकर्ता और साक्षियों के कथनों के आधार पर पूर्व में फाइल की गई अंतिम रिपोर्टों को खारिज करते हुए, कालम सं. 3 में रखे गए अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र सं. 203/08 दंड संहिता की धारा 498क/506 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया जा रहा है । कृपया साक्ष्य पर विचार करते हुए विधि अनुसार कार्रवाई करें ।

यह उल्लेखनीय है कि अभियुक्तों को माननीय उच्च न्यायालय द्वारा गिरफ्तार किए जाने पर रोक प्रदान की गई है । अन्वेषण पूरा किया जा रहा है । सभी अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जा रहा है ।"

मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ के समक्ष उपर्युक्त आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् तारीख 12 मई, 2008 को मामले का संज्ञान लिया गया और अपीलार्थियों को विचारण के लिए समन किया गया । उपरोक्त आदेश निम्न प्रकार है :–

"आज पुलिस थाना हजरतगंज में अपराध मामला सं. 326/02 के तहत अन्वेषण के पश्चात् अभियुक्त राम सरन वार्ष्णेय, श्रीमती सरोज वार्ष्णेय, मुकुल गुप्ता, श्रीमती भावना वार्ष्णेय, श्रीमती रेनु गुप्ता, श्रीमती तुनिका जायसवाल के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 498क/506 के अधीन आरोप पत्र जारी किया गया है । केस डायरी का परिशीलन किया गया है । चालान के लिए पर्याप्त आधार दिखाई देते हैं । अभियुक्तों का चालान किया जाता है । मामला रजिस्ट्रीकृत किया जाता है । मामले की सुनवाई के लिए तारीख 14 मई, 2008 को पहले ही नियत की जा चुकी है । अगली तारीख पर हाजिर होने का आदेश किया जाता है ।"

13. अपीलार्थियों ने तारीख 12 मई, 2008 के उस आदेश को चुनौती देते हुए एक अन्य पुनरीक्षण आवेदन सेशन न्यायालय, लखनऊ के समक्ष फाइल किया जिसके द्वारा संज्ञान लिया गया था । सेशन न्यायाधीश ने तारीख 1 जुलाई, 2008 को अपीलार्थियों द्वारा फाइल किए गए

पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया ।

14. अपीलार्थियों ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन 2008 का दांडिक प्रकीर्ण मामला सं. 2463 फाइल किया जिसमें तारीख 7 मई, 2008 के आरोप पत्र, तारीख 12 मई, 2008 के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश और तारीख 1 जुलाई, 2008 के सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित किए जाने की ईप्सा की गई । तारीख 1 दिसंबर, 2008 को उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश उस समय पारित किया गया जब उच्च न्यायालय के समक्ष दी गई चुनौती खारिज की गई थी ।

15. अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की ओर से प्रथम दलील यह दी गई कि तारीख 7 मई, 2008 का आरोप पत्र और तारीख 12 मई, 2008 का संज्ञान लेने का आदेश त्रुटिपूर्ण है । अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की दृढ़तापूर्वक दी गई दलील यह है कि चौथे अन्वेषण अधिकारी अर्थात् उमाशंकर त्रिपाठी तथा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने भी मामला बंद करने के संबंध में दी गई पूर्ववर्ती रिपोर्टों पर विचार नहीं किया है, इसीलिए तारीख 7 मई, 2008 के आरोप पत्र तथा मामले का संज्ञान लेने वाले तारीख 12 मई, 2008 का आदेश विधि की दृष्टि से कायम रखे जाने योग्य नहीं है । जहां तक मामले के वर्तमान पहलू का संबंध है, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **विनय त्यागी** बनाम **इरशाद अली** उर्फ **दीपक और अन्य**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया है । उपरोक्त निर्णय में अभिलिखित निम्न मताभिव्यक्तियों की ओर हमारा ध्यान दिलाया गया है :–

> "41. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173 के अधीन मजिस्ट्रेट की शक्ति की व्यापकता पर विचार करने पर अब हम उन रिपोर्टों का परिशीलन करेंगे जिन्हें इस संहिता के उपबंधों के अधीन और/या इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार अनुध्यात किया गया है । प्रथम और अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है । इसके पश्चात् अन्वेषण पूरा होने पर, पुलिस को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के निबंधनों में रिपोर्ट फाइल करनी चाहिए । इस रिपोर्ट को प्राथमिक रिपोर्ट कहना समुचित होगा क्योंकि न्यायालय के समक्ष अभियोजन मामले का मूल आधार यही रिपोर्ट है । न्यायालय द्वारा

[1] (2013) 5 एस. सी. सी. 762.

मामले के अभिलेख और उसके साथ उपाबद्ध दस्तावेजों पर विचार किया जाता है और इसके पश्चात् मजिस्ट्रेट से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह ऊपर उल्लिखित तीनों विकल्पों में से किसी भी एक का प्रयोग करे । कथित विकल्पों में से न्यायालय जिस अधिकारिता का प्रयोग करेगा वह विधि के सुस्थापित सिद्धांतों के अनुसरण में होगा । 'पुनः अन्वेषण' के लिए निदेश देने के संबंध में मजिस्ट्रेट की शक्ति एक ऐसी महत्वपूर्ण शक्ति है जिसका प्रयोग आपवादिक मामलों में और न्याय के हित के लिए किफायत से किया जाना चाहिए । निष्पक्ष, उचित और प्रश्नातीत अन्वेषण किए जाने के लिए अन्वेषण अभिकरण की जिम्मेदारी होती है और न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी सर्वेक्षण क्षमता के अंतर्गत इसका पालन किया जाना सुनिश्चित करे । इसके अतिरिक्त न्यायालय, मजिस्ट्रेट या पुलिस के आदेश द्वारा किए गए अन्वेषण के आधार पर पूरक रिपोर्ट फाइल की जानी चाहिए । ऐसी पूरक रिपोर्ट पर प्राथमिक रिपोर्ट के भाग के रूप में विचार किया जाना चाहिए । यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(3) से 173(6) के उपबंध संहिता की धारा 173(8) के निबंधनों में फाइल की गई ऐसी रिपोर्टों को लागू होंगे ।

42. इन दोनों रिपोर्टों पर संयुक्त रूप से विचार किया जाना चाहिए और इन रिपोर्टों और उनसे संबंधित दस्तावेजों के संचयी प्रभाव पर न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए जिसके आधार पर यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह उपधारित करने के लिए कोई आधार है या नहीं कि क्या अभियुक्त ने अपराध किया है । यदि इसका उत्तर नकारात्मक है तब इन रिपोर्टों के आधार पर न्यायालय संहिता की धारा 227 के उपबंधों के अनुसरण में अभियुक्त को उन्मोचित करेगा ।

49. अब हम एक महत्वपूर्ण पहलू पर विचार करेंगे कि संहिता की धारा 173(8) के उपबंधों का अर्थ किस प्रकार समझना चाहिए और न्यायालयों और अन्वेषण अभिकरणों को किस प्रकार लागू करना चाहिए । यह सत्य है कि यद्यपि संहिता की धारा 173(8) के उपबंधों के अंतर्गत कोई भी विशेष अपेक्षा पुनः अन्वेषण किए जाने या पूरक रिपोर्ट फाइल किए जाने के संबंध में न्यायालय की इजाजत द्वारा नहीं की गई है, अन्वेषण अभिकरण को मात्र समझना ही नहीं चाहिए

अपितु पुनः अन्वेषण किए जाने और पूरक रिपोर्ट फाइल करने के लिए न्यायालय की इजाजत से विधिक प्रक्रिया अपनानी चाहिए । न्यायालयों ने कुछ विनिश्चयों में ऐसा ही मत व्यक्त किया है । पुनः अन्वेषण किए जाने के लिए न्यायालय की पूर्वानुमति लेना और/या पूरक रिपोर्ट फाइल करने के संबंध में संहिता की धारा 173(8) के उपबंधों के अधीन विचार किया जाना चाहिए जो कि एक आवश्यक कार्यवाही है । ऐसे निर्वचन को (contemporanea expositio) **(समकालीन प्रतिपादना)** सिद्धांत द्वारा पूर्णतया स्पष्ट किया जा सकता है क्योंकि जिन मामलों पर लंबे समय से विचार किया जाता है और सिद्धांत कार्यान्वित किए जाते हैं उनकी पुष्टि विधि द्वारा की जानी चाहिए और निर्वचनात्मक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए ।

53. सक्षम अधिकारिता के न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह सभी रिपोर्टों, सम्पूर्ण अभिलेख और अन्वेषण अधिकरण द्वारा उसके साथ प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173(2) के निबंधनों में प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के रूप में विचार करे । यह नियम केवल निम्न अपवादों के अध्यधीन है –

(क) जहां विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा विशिष्ट आदेश अभियोजन के निवेदन पर पारित किया गया हो जिसके अनुसार किसी भी दस्तावेज को या कथन को या उसके किसी भाग को अपवर्जित करने के लिए सीमित किया गया हो ;

(ख) जहां अपनी आसाधारण या अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्चतर न्यायालय द्वारा यह निदेश देते हुए आदेश पारित किया जाता है कि कोई भी रिपोर्ट, पूरक रिपोर्ट या नए सिरे से किए गए अन्वेषण के आधार पर अथवा पुनः अन्वेषण किए जाने के आधार पर प्रस्तुत की गई रिपोर्ट या उस रिपोर्ट का कोई भाग अपवर्जित किया जाए, न्यायालय के अभिलेख को निरस्त किया जाए और उसे नास्ति तथ्य समझा जाए ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

16. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दी गई दलील में कोई भी गंभीर अस्पष्टता नहीं है । तारीख 7 मई,

2008 के आरोप पत्र, तारीख 12 मई, 2008 के संज्ञान लेने वाले आदेश का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मामला बंद करने के संबंध में प्रस्तुत की गई द्वितीय और तृतीय रिपोर्टों पर स्पष्ट रूप से विचार नहीं किया गया है । उपरोक्त तथ्यात्मक स्थिति में, हमारे सामने ऐसी कोई दुविधा नहीं है कि अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार न कर सकें । तथापि, अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दी गई दलील का खंडन उत्तर प्रदेश राज्य तथा व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में प्रस्तुत होने वाले प्रत्यर्थी-2 की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दृढ़तापूर्वक किया गया है ।

17. जहां तक मामला बंद करने के संबंध में प्रस्तुत की गई द्वितीय रिपोर्ट का संबंध है, प्रत्यर्थी राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि यह समझना चाहिए कि इस रिपोर्ट पर स्पष्ट रूप से विचार किया गया है, जब तारीख 27 अप्रैल, 2003 को तैयार की गई मामला बंद करने की प्रथम रिपोर्ट फाइल की गई थी, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने तारीख 6 सितंबर, 2006 को पुनः अन्वेषण किए जाने का आदेश पारित किया । उक्त दलील के समर्थन में, प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि अपीलार्थियों की ओर से तारीख 6 सितंबर, 2006 के आदेश को चुनौती के संबंध में दी गई मात्र दलील अपर सेशन न्यायाधीश, विशेष न्यायालय लखनऊ द्वारा तारीख 1 मार्च, 2008 को पारित आदेश के पैरा 6 में उल्लिखित है । ऊपर उल्लेख किया गया पैरा 6 निम्न प्रकार है :–

> "6. पुनरीक्षण आवेदन में मात्र यह आधार लिया गया है कि अन्वेषण अधिकारी अर्थात् एस. एस. आई. बदन सिंह द्वारा किए गए पुनः अन्वेषण, पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जिन्होंने विवादित आदेश पारित किया था, द्वारा विचार नहीं किया गया है । इस संदर्भ में, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि पुनः अन्वेषण का आदेश किए जाने पर प्रस्तुत की गई अंतिम रिपोर्ट पुलिस अधीक्षक (पूर्वी), लखनऊ द्वारा वापस भेजी गई जिसके आधार पर तारीख 29 जून, 2003 से एस. एस. आई. बदन सिंह ने अन्वेषण आरंभ किया और पूरक केस डायरी तैयार की । तारीख 10 जुलाई, 2003 को अंतिम रिपोर्ट जिसे पूर्ववर्ती अन्वेषण अधिकारी द्वारा अग्रेषित किया गया था और केवल उसे ही ए. एस. आई. बदन सिंह द्वारा केस डायरी का निरीक्षण करने के पश्चात् स्वीकार किया गया था और एस. एस. आई. बदन सिंह ने

कथनों और दस्तावेजों का अध्ययन किया और उसके पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(8) के अनुसार पुनः किए गए अन्वेषण की रिपोर्ट अग्रप्रेषित की । एस. एस. आई. बदन सिंह ने पुनः किए गए अन्वेषण के दौरान, किसी भी साक्षी के कथन का स्वयं उल्लेख नहीं किया अपितु पूर्ववर्ती अन्वेषण अधिकारी द्वारा उल्लिखित कथनों का अवलंब लेते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया है)

अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल की उपरोक्त एकमात्र दलील पर विचार करने पर, सेशन न्यायालय ने अपीलार्थियों के दावे को अभिखंडित करते हुए निम्न अभिलिखित किया :–

"10. पुनरीक्षण के दौरान, शपथपत्र प्रदर्श 18बी सहित माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद की लखनऊ न्यायपीठ के समक्ष रिट याचिका सं. 6588/एम.बी./2006 की अनुप्रमाणित फोटोकापी उपलब्ध कराई गई जो अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा संस्थित की गई थी जिसके द्वारा यह आवेदन किया गया कि पुलिस थाना हजरतगंज द्वारा किए गए अन्वेषण के दौरान पुलिस अभियुक्तों को गिरफ्तार नहीं करेगी और शिकायतकर्ता द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को खारिज करने की प्रार्थना भी की गई । तारीख 15 मई, 2002 को रिट याचिका सं. 2600/2002 में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए इस रिट याचिका में आदेश पारित किया गया जिसके अनुसार दंड संहिता की धारा 498क, 506 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अपराध सं. 326/2002 के अन्वेषण के दौरान पुलिस थाना हजरतगंज वाले मामले में पुनरीक्षणकर्ता/अभियुक्तों की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी गई । जिला न्यायालय, लखनऊ ने तारीख 15 मार्च, 2002 को पारित अपने व्यादेश द्वारा प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता के विरुद्ध एक व्यादेश जारी किया । यह व्यादेश प्रदर्श 18बी/37 और प्रदर्श 39 के रूप में उपलब्ध कराया गया । तारीख 18 अक्तूबर, 2006 को पारित माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय का आदेश (प्रदर्श 18बी/51) उपलब्ध कराया गया जिसके द्वारा अन्वेषण के दौरान पुनरीक्षणकर्ताओं की गिरफ्तारी पर माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद द्वारा रोक लगा दी गई, अतः अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ताओं के मामले पर तारीख 6 सितंबर, 2006 के विवादित आदेश अर्थात् पुनः अन्वेषण का निदेश

दिए जाने के आदेश द्वारा कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है । चूंकि ऊपर कथित आदेश पारित करते समय एस. एस. आई. बदन सिंह द्वारा किया गया पुनः अन्वेषण मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और पुनरीक्षण आवेदन में अन्य कोई भी आधार नहीं लिया गया था इसलिए विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई भी आधार दिखाई नहीं देता है । पुनरीक्षण आवेदन खारिज किए जाने योग्य है ।"

18. अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलीलों और सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए आदेश का परिशीलन करने पर, प्रत्यर्थियों के अनुसार, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थियों द्वारा दी गई एकमात्र दलील खारिज करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि तारीख 10 जुलाई, 2003 को तैयार की गई मामला बंद करने की द्वितीय रिपोर्ट पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा सम्यक् रूप से विचार किया गया है । तारीख 1 मार्च, 2008 को पारित आदेश में सेशन न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित उपर्युक्त निष्कर्ष को अपीलार्थियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है, अतः इसे अंतिम माना जा सकता है ।

19. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील की पुनरावृत्ति किए बिना हमारा यह समाधान हो गया है कि दी गई दलीलें पूर्णतया न्यायोचित हैं और उन्हें स्वीकार किया जाना चाहिए । मामले को उपरोक्त रूप में दृष्टिगत करते हुए, हम एतद्द्वारा अभिनिर्धारित करते हैं कि तारीख 6 सितंबर, 2006 के आदेश को पारित करते समय, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने सम्यक् रूप से तारीख 10 जुलाई, 2003 का मामला बंद करने की द्वितीय रिपोर्ट पर सम्यक् रूप से विचार किया है ।

20. जहां तक अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों का संबंध है, विचार के लिए केवल यह दलील शेष रह जाती है कि संबद्ध प्राधिकारियों ने तारीख 27 फरवरी, 2007 को तैयार की गई मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट पर विचार नहीं किया है, न अन्वेषण के समय पर अर्थात् जब तारीख 23 अप्रैल, 2008 को चौथी अन्वेषण रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, और न ही तारीख 7 मई, 2008 को आरोप पत्र प्रस्तुत किए जाने के समय पर, यहां तक कि तारीख 12 मई, 2008 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा संज्ञान लिए जाने के समय पर भी विचार नहीं किया गया है ।

21. द्वितीय दलील का खंडन करते समय जैसाकि पूर्वगामी पैराओं में देखा गया है, प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह इंगित किया है कि मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट तारीख 6 सितंबर, 2006 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित आदेश पर आधारित है, जिसके द्वारा पुनः अन्वेषण किए जाने का आदेश किया गया था । प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि अपीलार्थियों द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन में (जो सेशन न्यायाधीश, लखनऊ के समक्ष फाइल किया गया था), मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पुनः अन्वेषण किए जाने का आदेश पारित किया गया था जिस पर 7 नवंबर, 2006 को रोक लगा दी गई । सेशन न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा पारित किए गए उपर्युक्त रोक आदेश को दृष्टिगत करते हुए, कोई भी अन्वेषण तारीख 6 सितंबर, 2006 के आदेश पारित किए जाने के पश्चात् पुनः नहीं किया जा सकता था । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई है कि "मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट" तारीख 27 फरवरी, 2007 को प्रस्तुत की गई थी । जबकि तारीख 7 नवंबर, 2006 को पारित अंतरिम आदेश तारीख 1 मार्च, 2008 को निष्प्रभाावी हुआ था अर्थात् उस समय जब अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सेशन न्यायाधीश द्वारा खारिज किया गया था । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि तारीख 27 फरवरी, 2007 को तैयार की गई मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट जारी करने के लिए जो अन्वेषण की सम्पूर्ण प्रक्रिया की गई है वह विधि की दृष्टि से बातिल है ।

22. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पुनः अन्वेषण किए जाने के आदेश के पश्चात् तैयार की गई मामला बंद किए जाने की तृतीय रिपोर्ट पर हमें कोई संदेह नहीं है । मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित किए गए उक्त आदेश पर तारीख 7 नवंबर, 2006 को सेशन न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा रोक लगाई गई और वह आदेश तारीख 1 मार्च, 2008 (जब अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया दांडिक पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया गया था) तक बना रहा था । इसी दौरान, रोक आदेश के बने रहने तक अन्वेषण पूरा किया गया और तृतीय अन्वेषण अधिकारी एन. के. बाजपयी ने तारीख 27 फरवरी 2007 को मामला बंद करने की तृतीय रिपोर्ट प्रस्तुत की । चूंकि उपरोक्त अन्वेषण के आधार पर तारीख 27 फरवरी, 2007 को तैयार की गई मामला बंद करने की रिपार्ट से स्पष्ट रूप

से न्यायिक आदेश का अतिक्रमण होता है, हमारी सुविचारित राय में, इस प्रकार प्रस्तुत की गई रिपोर्ट विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है और उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता । इसमें इसके ऊपर अभिलिखित निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह समाधान हो गया है कि अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि जहां तक वर्तमान संविवाद का संबंध है मामला बंद किए जाने की द्वितीय और तृतीय रिपोर्टों पर विचार नहीं किया गया है, विधि की दृष्टि से न्यायोचित अभिवाक् के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता । यह दलील तदनुसार खारिज की जाती है ।

23. इसमें इसके ऊपर अभिलिखित हमारे निष्कर्ष के बावजूद, अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दी गई प्रथम दलील के संबंध में उनकी द्वितीय दलील को भी निर्दिष्ट करना महत्वपूर्ण होगा । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल की महत्वपूर्ण दलील यह है कि अपीलार्थी सं. 4, 5 और 6 अर्थात् भावना वार्ष्णेय, रेणु गुप्ता और तुनिका जायसवाल, ये सभी सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी-2) की ननदें हैं । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, ये सभी महिलाएं प्रत्यर्थी सं. 2 के पति अर्थात् मुकुल गुप्ता की बहने हैं । हमें यह बताया गया है कि अपीलार्थी सं. 4, 5 और 6 सभी विवाहित हैं और अलग-अलग स्थानों पर रहती हैं । वे अपीलार्थी सं. 1 से 3 में से किसी के भी साथ नहीं रहती हैं । चूंकि ये महिलाएं विवाहित हैं और स्वतंत्र रूप से अलग-अलग स्थानों पर रहती हैं, इसलिए उनको अपीलार्थी सं. 1 से 3 के साथ सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी सं. 2) के संबंधों से कोई लेना देना नहीं है । इसके अतिरिक्त, हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर भी दिलाया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 अर्थात् सोनिया गुप्ता द्वारा किसी भी अपीलार्थी अर्थात् अपीलार्थी सं. 4, 5 और 6 पर कोई भी स्पष्ट अभिकथन नहीं किया गया है । यहां तक कि मामले की सुनवाई के दौरान, सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी सं. 2) जो स्वयं न्यायालय में पेश हुई थी, उक्त तथ्यात्मक स्थिति पर विवाद नहीं किया है । सुनवाई के दौरान सोनिया गुप्ता की ओर से मात्र दलील यह दी गई है कि प्रत्यर्थी सं. 2 के वैवाहिक गृह पर तीनों ननद "गृह प्रवेश" और अपनी पुत्री के "नामकरण" के अवसर पर मिलने आई थीं । हमारा यह मत है कि सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी सं. 2) के घर पर तीनों ननदों का इन दो अवसरों पर आने का उद्देश्य आयोजन में सम्मिलित होना था और इसे यह नहीं कहा जा सकता है कि इन महिलाओं ने

प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ उत्पीड़न का व्यवहार किया था । किसी भी स्थिति में, इस मामले के अभिलेख पर ऐसी किसी भी सामग्री के अभाव में जिसका संबंध इन दो अवसरों पर सोनिया गुप्ता को तंग किए जाने के साथ हो, हमारा यह समाधान हो गया है कि अपीलार्थी सं. 4, 5 और 6 के विरुद्ध संस्थित की गई कार्यवाही जो 10 अप्रैल, 2002 को सोनिया गुप्ता (प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर की गई थी, न्यायोचित नहीं है । यह कार्यवाही अभिखंडित किए जाने योग्य है । तदनुसार यह अभिखंडित की जाती है ।

24. चूंकि, हमने तारीख 12 मई, 2008 के आक्षेपित समनादेश (अपीलार्थी सं. 1 से 3 के विरुद्ध) में हस्तक्षेप नहीं किया है । हम विचारण न्यायालय से यह विनती करना समुचित और ठीक समझते हैं कि वे अपराध मामला सं. 326/2002 जो कि पुलिस थाना शिवकुट्टी, इलाहाबाद में दंड संहिता की धारा 498क और 506 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अपीलार्थी सं. 1 से 3 के विरुद्ध उद्भूत है, का निपटारा जितना जल्दी हो सके किया जाए ।

25. वर्तमान अपील का निपटारा उपरोक्त निबंधनों में किया जाता है ।

अपील का निपटारा किया गया ।

अस.

[2016] 3 उम. नि. प. 77

मुकुन्द देवांगन

बनाम

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, आदि

11 फरवरी, 2016

न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ और न्यायमूर्ति अरुण मिश्र

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 2(10), 2(21), 2(47), 2(35), 2(41), 10(2) – परिवहन यान – चालन अनुज्ञप्ति – हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति रखने वाले चालक के लिए परिवहन यान चलाने का पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक है जबकि परिवहन यान हल्के मोटर यान वर्ग का यान है ।

प्रश्न यह उठाया गया है कि क्या हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति रखने वाले ड्राइवरों की परिवहन यान चलाने का पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक है जबकि परिवहन यान हल्के मोटर यान का एक वर्ग है । इस न्यायालय की भिन्न-भिन्न न्यायपीठों द्वारा व्यक्त मतों में विरोध को दूर करने के लिए मामले को भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष वृहत्तर न्यायपीठ गठित करने के लिए रखा जाए । उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्देश देते हुए,

अभिनिर्धारित – धारा 2(47) में यथा परिभाषित "परिवहन यान" का अभिप्राय सार्वजनिक सेवा यान, माल वाहन, शैक्षिक संस्था बस या प्राइवेट सेवा यान से है । सार्वजनिक यान को धारा 2(35) में परिभाषित किया गया है जिसका अभिप्राय भाड़े या प्रतिफल के लिए यात्रियों के वाहन हेतु प्रयुक्त या प्रयुक्त किए जाने के लिए अनुकूलित किसी मोटर यान से है और इसके अंतर्गत मैक्सी कैब, मोटर कैब, संविदा वाहन और बहुमंजिली यान है । "माल वाहन" जो एक परिवहन यान भी है को धारा 2(14) में परिभाषित किया गया है जिसका अभिप्राय केवल माल के वाहन के उपयोग के लिए संनिर्मित या अनुकूलित कोई मोटर यान या माल के वाहन के उपयोग के लिए इस प्रकार संनिर्मित या अनुकूलित न होते हुए किसी मोटर यान से है । यह निवेदन किया गया कि हल्का मोटर यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति धारक व्यक्ति जो प्राइवेट उपयोग के लिए रजिस्ट्रीकृत यान चला रहा है, उसी प्रकार का यान चला रहा है जो भाड़े या प्रतिफल के लिए यात्री ले जाने के प्रयोजन के लिए रजिस्ट्रीकृत या बीमाकृत है, में "परिवहन यान" चलाने के लिए पृष्ठांकन की अपेक्षा होगी, यह अधिनियम के उपबंधों द्वारा अनुध्यात नहीं है । ऐसे अनेक यान हैं जिनका उपयोग भाड़े या प्रतिफल पर यात्रियों को लाने या ले जाने के लिए और प्राइवेट उपयोग के लिए किया जा सकता है । यह भी निवेदन किया गया कि ऐसा चालक जो प्राइवेट उपयोग के लिए यान चलाने के लिए सक्षम है, वैसा ही यान चलाने का हकदार होगा यदि उसका उपयोग भाड़े या प्रतिफल पर या उक्त यान में माल लाने या ले जाने के लिए किया जाता है । यह भी निवेदन किया गया कि संशोधन अधिनियम सं. 54/1994 द्वारा प्रक्रिया को सरल बनाने न कि इसे जटिल बनाने और हल्के मोटर यान की अनुज्ञप्ति को अविधिमान्य बनाने के लिए किया गया और इसके धारक अधिनियम की धारा 2(21) में विनिर्दिष्ट भार के परिवहन यान चला सकते हैं । आगे यह निवेदन किया गया कि "यानों के वर्ग" और "यानों के प्रकार" में अंतर

है और हल्के मोटर यान प्रवर्ग के परिवहन यान चलाने के लिए पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक नहीं है जब व्यक्ति यान के उसी वर्ग अर्थात् हल्के मोटर यान को चलाने के लिए 1994 के संशोधन अधिनियम सं. 54 और 2001 में यथा संशोधित प्ररूप 4 और 6 के अनुसार सक्षम हैं । यह भी निवेदन किया गया कि इस न्यायालय ने अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि 2001 में प्ररूपों के अंतःस्थापन के पूर्व "हल्के मोटर यान" की अनुज्ञप्ति का धारक परिवहन यान भी चलाने के लिए सक्षम था । आगे यह भी निवेदन किया गया कि धारा 10(2)(घ) में अंतर्विष्ट उपबंधों में प्ररूपों के अंतःस्थापन द्वारा कोई परिवर्तन नहीं किया गया । यह भी निवेदन किया गया कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 3 आरंभ से ही परिवहन यान का उपबंध करती है । तथापि, धारा 10(2) में विनिर्दिष्ट यानों का वर्ग हल्का मोटर यान, मध्यम माल और यात्री मोटर यान और भारी माल और यात्री यान थे । वर्ष 1994 में लाए गए परिवर्तन द्वारा मध्यम और भारी माल और यात्री यान के स्थान पर परिवहन यान रखा गया और अशोक गंगाधर, अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया और कुलवंत सिंह वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, हल्का मोटर यान अनुज्ञप्ति धारक व्यक्ति परिवहन यान चलाने के लिए सक्षम था । धारा 10(2)(घ) में "हल्का मोटर यान" के उपबंध यथावत् बने हुए हैं । यह संशोधित नहीं किया गया है । यह भी निवेदन किया गया कि ऐसे प्ररूप जिन्हें संशोधित किया गया है अधिनियम के उपबंध के निर्वचन को लागू नहीं होंगे; जबकि 2007 में अंतःस्थापित नियम 8 का आशय उस प्रकार के यान को जोड़ना था । 2007 के नियम 8 के अंतःस्थापन का जो प्रभाव और प्रयोजन था, पर विचार नहीं किया । प्ररूप का निर्वचन अधिनियम और नियमों के उपबंधों के अनुसार किया जाना चाहिए । अधिनियम के उद्देश्य और संशोधन अधिनियम सं. 54/1994 पर किसी भी विनिश्चय में विचार नहीं किया गया और "हल्के मोटर यान", के लिए विहित भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रम के प्रभाव को भारी और मध्यम यान के लिए भी विचार नहीं किया गया है । आशेक गंगाधर मराठा, पैरा 10, एस. अय्यिपन बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी, कुलवंत सिंह और अन्य बनाम ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और नागासेट्टी बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी और अन्य वाले मामलों में यह मत व्यक्त किया गया है कि जब चालक हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति रखता है तो वह उस प्रवर्ग के परिवहन यान चलाने के लिए सक्षम है; जबकि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रभूलाल वाले मामले में यह मत व्यक्त

किया गया है कि वर्ष 2001 के पूर्व भी हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति रखने वाले चालक के लिए उस प्रवर्ग के परिवहन यान चलाने के लिए पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक था; जबकि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अन्नप्पा इरप्पा नेसारियो वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अधिकथित किया कि 28 मार्च, 2001 के पूर्व हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति धारक को परिवहन यान चलाने का पृष्ठांकन लेना आवश्यक नहीं था; जबकि न्यू इंडिया एश्योरेंस कपनी लिमिटेड बनाम रोशन बेन रहेमानसा फकीर और अन्य और ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अंगद कोल और अन्य वाले मामलों में यह मत व्यक्त किया गया कि धारा 2(41) में यथा उपबंधित हल्के मोटर यान भार के परिवहन यान चलाने के लिए हल्के मोटर यान अनुज्ञप्ति के धारक को अनुज्ञप्ति पर विनिर्दिष्ट पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक है । इस प्रकार पूर्व संशोधित स्थिति और वर्ष 2001 में प्ररूपों में संशोधन किए जाने के पश्चात् भी इन न्यायालयों के विनिश्चयों में विरोधाभास प्रकट होता है । पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित प्रश्नों को वृहत्तर न्यायपीठ को विनिर्दिष्ट किया जाना अपेक्षित है – 1. मोटर यान अधिनियम की धारा 2(21) में यथा परिभाषित "हल्का मोटर यान" की परिभाषा का क्या अर्थ लाया जाए ? क्या परिवहन यान को इससे अपवर्जित किया जाए ? 2. क्या "परिवहन यान" और "ओमनी बस" जिसका "सकल यान भार" 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है, "हल्का मोटर यान होगा" और मोटरकार या ट्रैक्टर या रोड रोलर जिसका "लदानरहित भार" 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है और धारा 10(2)(घ) में यथा उपबंधित "हल्के मोटर यान" के वर्ग को चलाने की अनुज्ञप्ति धारक परिवहन यान या ओमनी बस, जिसका "सकल यान भार" 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है या मोटरकार या ट्रैक्टर या रोड रोलर जिसका "लदानरहित भार" 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है, चलाने के लिए सक्षम होगा ? 3. धारा 10(2) के खंड (ङ) से (ज) जिसमें "मध्यम मालयान", "मध्यम यात्री मोटर यान", "भारी मालयान" और "भारी यात्री मोटर यान" के स्थान पर "परिवहन यान" प्रतिस्थापित करने से तारीख 14 नवंबर, 1994 से 1994 के अधिनियम सं. 54 के आधार पर किए गए संशोधन का क्या प्रभाव है ? क्या धारा 10(2)(ङ) के अधीन "परिवहन यान" पद का अंतःस्थापन केवल उक्त प्रतिस्थापित वर्गों से ही संबंधित है या यह अधिनियम की धारा 10(2)(घ) और 2(41) की परिधि से हल्के मोटर यान वर्ग के परिवहन यान को अपवर्जित करने के लिए भी है ? 4. वर्ष 1994 में यथा संशोधित धारा 10 के उपबंधों के प्रवर्तन के संबंध में

प्ररूप 4 की संशोधन का क्या प्रभाव है और क्या "हल्के मोटर यान" के वर्ग के परिवहन यान के लिए चालन अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त करने की प्रक्रिया में परिवर्तन किया गया है ? (पैरा 35, 36, 37, 38 और 39)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2015] (2015) 2 एस. सी. सी. 186 : **कुलवंत सिंह और अन्य** बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** ; 33

[2013] (2013) 7 एस. सी. सी. 62 : **एस. अय्यिपन** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी** ; 32

[2009] (2009) 11 एस. सी. सी. 356 : **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अंगद कोल और अन्य** ; 30

[2008] (2008) 8 एस. सी. सी. 253 : **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **रोशनबेन रहेमानसा फकीर और एक अन्य** ; 27

[2008] (2008) 12 एस. सी. सी. 385 : **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **जहारुल नीशा और अन्य** ; 25

[2008] (2008) 3 एस. सी. सी. 464 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया** उर्फ **नेसर्गी और अन्य** ; 28

[2008] (2008) 1 एस. सी. सी. 696 : **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रभू लाल** ; 26

[2004] (2004) 3 एस. सी. सी. 297 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह** ; 25

[2001] (2001) 8 एस. सी. सी. 56 :
नागासेट्टी बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य** ; 34

[1999] (1999) 6 एस. सी. सी. 620 :
अशोक गंगाधर मराठा बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** ; 24

[1997] [1997] 1 उम. नि. प. 178 = (1996) 5 एस. सी. सी. 21 :
सोहन लाल पासी बनाम **पी. शेष रेड्डी और अन्य** ; 23

[1987] [1987] 3 उम. नि. प. 544 = (1987) 2 एस. सी. सी. 654 :
स्कैंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **कोकिला बेन चंद्रबदन और अन्य** । 22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : **2011 की सिविल अपील सं. 5826 के साथ विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 32828, 32833 और 32835/2010, 8709-8710 और 8712-8713/2014, 20072, 3300 और 3302/2015, 887-890/2013, 16082/2012, 28455-28456/2013 सी. ए. सं. 6379/2013, एस. एल. पी. (सी.) सं. 13008, 15759-15760 और 14333-14334/2014, 6429/2015, 26364-26365/2014, 15924/2015, सी. ए. सं. 9990/2014, एस. एल. पी. (सी.) सं. 8704-8706/2014, सी. ए. सं. 4068-4069/2012, एस. एल. पी. (सी.) सं. 32827/2010 और सी. ए. सं. 8992/2012.**

2006 के प्रकीर्ण आवेदन सं. 940 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर द्वारा पारित तारीख 24 फरवरी, 2016 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री (सुश्री) किरण सूरी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, राजीव कुमार बंसल, राज सिंह राणा, अक्षय के. घई, आर. के. कपूर, (सुश्री) रेखा गिरी, (सुश्री) साई ज्योत्सना, अनीस अहमद खान, प्रवीन सेहरावत, प्रियादर्शी बनर्जी, पीयूश शर्मा, विक्रम सैनी, ए. के. मिश्र, पी. के. जैन, सौरभ जैन, एस. पी. सिंह राठोर, पी. के. गोस्वामी, सुधाकर द्विवेदी, उदय प्रकाश यादव, राघवेन्द्र शुक्ला, अपूर्व कुरूप, आदित्य चाणक्या बोक्सीपात्रा, रोहित राठी, अर्धेंदूमौली कुमार प्रसाद, (सुश्री) कृति मिश्रा, एस. जे. अमीत, गौतम कुमार, डा. (श्रीमती) विपीन गुप्ता, जय किशोर सिंह, गौतम गोदरा, आनंद वी. सेल्वाम, रविन्द्र के. अदसूरे, एच. के. चतुर्वेदी, (सुश्री) रुपाली चतुर्वेदी, (सुश्री) तनुज बग्गा शर्मा, डा. प्रवीण हंस, एन. डी. बी. राजू, रोहन गणपति, एन. गणपति, समीर श्रीवास्तव, विजेता ओहरी, अक्षत श्रीवास्तव, विष्णु मेहरा, (सुश्री) साक्षी मित्तल, अनिल कुमार, सुमित अत्री, उदय बी. दुबे, वी. एन. रघुपति, बालाजी श्रीनिवासन, (सुश्री) मीनाक्षी चौहान, रवि बक्शी, सुधीर माथुर, यश पाल ढींगरा, डा. मीरा अग्रवाल, आर. सी. मिश्रा, अमरजीत सिंह धेमान, अनकोलेकर गुरुदत्त, पुरुषोत्तम शर्मा

त्रिपाठी, मुकेश कुमार सिंह, आर. सी. मिश्रा, अरुप बनर्जी, अनीस अहमद खान, वी. के. गुप्ता, टी. जे. शर्मा, राजिन्दर माथुर, अपूर्व कुरुप और ए. सी. बोक्सीपात्रा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री (सुश्री) प्रियादर्शी गोपाल, (सुश्री) रमीज हाकीम, (मैसर्स ला एसोसिएट की ओर से), जी. बालाजी, (सुश्री) सोएई बी. कुरेशी, रवि प्रकाश, (सुश्री) उदित सिंह, चंद्र प्रकाश, राहुल कुमार, (सुश्री) मीनाक्षी मीधा, सी. एस. अश्री, (सुश्री) तानिया पांडेय, (सुश्री) शांता देवी रमण, गर्वेश कब्रा, अर्बाज हुस्सैन, रोहित सिन्हा, संजय कुमार सिंह, प्रदीप गौड़, अमित गौड़, अम्भोज कुमार सिन्हा, एम. के. दौ, किशोर रावत, अनीश कुमार गुप्ता, (सुश्री) दीप शिक्ला भारत, ब्रजेश कुमार, चंद्रा शेखर सुमन, वरिन्दर कुमार शर्मा, नवल किशोर साहू, डा. नीरा अग्रवाल, आर. सी. मिश्रा, अमरजीत सिंह धेमान, जावेद एम. राव, टी. एन. सक्सेना, एच. सी. खर्बन्दा, शाहीद अली राव, नंद राम, एस. एल. गुप्ता, गुरु नाथ आर. नाइक, आर. के. गुप्ता, राम आश्रय, विकाश चंद्रा, रविन्दर कुमार वाधवान, वरिन्दर कुमार शर्मा, अरविंद कुमार तिवारी, जेय प्रकाश यादव, आर. ए. गुप्ता, सी. के. राई, सुश्री नीरजा सचदेवा, (सुश्री) मीना माथुर, अजय सिंह, वरिन्दर कुमार, नफीस ए. सिद्दिकी, (सुश्री) निधी, बी.

सुब्रह्मणया प्रसाद, (सुश्री) रामीया हकीम, मैसर्स ला एसोसिएट, गौतम नारायण और अम्भोज कुमार सिन्हा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अरुण मिश्र ने दिया ।

न्या. मिश्र – प्रश्न यह उठाया गया है कि क्या हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति रखने वाले ड्राइवरों की परिवहन यान चलाने का पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक है जबकि परिवहन यान हल्के मोटर यान का एक वर्ग है ।

2. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना । पूर्वोक्त प्रश्न के विचार के लिए विभिन्न उपबंधों और विनिश्चयों को निर्दिष्ट करना आवश्यक है ।

3. चालन अनुज्ञप्ति को 1988 के अधिनियम की धारा 2(10) में परिभाषित किया गया है । उपबंध को यहां नीचे उद्धृत किया जा है :–

> "2(10) 'चालन अनुज्ञप्ति' से ऐसी अनुज्ञप्ति अभिप्रेत है जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा अध्याय 2 के अधीन दी गई है और जो उसमें विनिर्दिष्ट व्यक्ति को मोटर यान या किसी विनिर्दिष्ट वर्ग या वर्णन का मोटर यान, शिक्षार्थी से भिन्न रूप में चलाने के लिए प्राधिकृत करती है ।"

सकल यान भार को धारा 2(15) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

> "2(15) किसी यान की बाबत 'सकल यान भार' से यान का कुल भार और उस यान के लिए रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारी द्वारा अनुज्ञेय रूप में प्रमाणित और रजिस्ट्रीकृत भार अभिप्रेत है ।"

भारी मालयान को धारा 2(16) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

> "2(16) 'भारी मालयान' से अभिप्रेत है ऐसा कोई मालयान जिसका सकल यान भार ; या ऐसा ट्रैक्टर या रोड-रोलर जिसमें से किसी का लदान रहित भार, 12000 किलोग्राम से अधिक है ।"

भारी यात्री मोटर यान को धारा 2(17) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

> "2(17) 'भारी यात्री मोटर यान' से अभिप्रेत है ऐसा कोई लोक सेवा यान या प्राइवेट सेवा यान या शिक्षा संस्था बस या कोई बस

जिसका सकल यान भार, या ऐसी मोटर कार जिसका लदान रहित भार 12000 किलोग्राम से अधिक है ।"

हल्के मोटर यान को अधिनियम की धारा 2(21) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"2(21) 'हल्का मोटर यान' से अभिप्रेत है ऐसा परिवहन यान या बस जिसमें से किसी सकल यान भार, या ऐसी मोटरकार या ट्रैक्टर या रोड-रोलर जिसमें से किसी का लदान रहित भार 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है ।"

मध्यम मालयान को धारा 2(23) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"2(23) 'मध्यम मालयान' से हल्के मोटर यान या भारी मालयान से भिन्न कोई माल वाहन अभिप्रेत है ।"

मध्यम यात्री मोटर यान को 2(24) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"2(24) 'मध्यम यात्री मोटर यान' से ऐसा कोई लोक सेवा यान या प्राइवेट सेवा यान या शिक्षा संस्था बस अभिप्रेत है जो मोटर साइकिल, अशक्त यात्री गाड़ी, हल्का मोटर यान या भारी यात्री मोटर यान से भिन्न है ।"

मोटरकार को 1988 के अधिनियम की धारा 2(26) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"2(26) 'मोटरकार' से परिवहन यान, बस, रोड-रोलर, ट्रैक्टर, मोटरसाइकिल या अशक्त यात्री गाड़ी से भिन्न कोई मोटर यान अभिप्रेत है ।"

बस को धारा 2(29) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"2(29) 'बस' से ऐसा मोटर यान अभिप्रेत है जो छह से अधिक यात्रियों का, जिसके अंतर्गत ड्राइवर नहीं है, वहन करने के लिए निर्मित या अनुकूलित है ।"

ट्रैक्टर को अधिनियम की धारा 2(44) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"2(44) 'ट्रैक्टर' से ऐसा मोटर यान अभिप्रेत है जो स्वयं (नोदन के प्रयोजन के लिए काम में आने वाले उपस्कर से भिन्न) कोई भार

वहन करने के लिए निर्णय नहीं है, किंतु इसके अंतर्गत रोड-रोलर नहीं है ;"

परिवहन यान को धारा 2(47) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"2(47) 'परिवहन यान' से कोई सार्वजनिक सेवा यान, माल वाहन, शिक्षा संस्था बस या प्राइवेट सेवा यान अभिप्रेत है ;"

लदान रहित भार को धारा 2(48) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"2(48) 'लदान रहित भार' से यान या ट्रेलर का ऐसे सभी उपस्कर सहित भार अभिप्रेत है, जिसका उपयोग मामूली तौर पर यान या ट्रेलर के चालू होने पर किया जाता है किंतु इसमें ड्राइवर या परिचालक का भार सम्मिलित नहीं है तथा जहां आनुकल्पिक पुर्जों या बाडी का उपयोग किया जाता है वहां यान के लदान रहित भार से यान का, ऐसे सबसे भारी आनुकल्पिक पुर्जे या बाडी सहित भार अभिप्रेत है ;"

4. धारा 2 के अधीन उपबंध भारी माल यान, भारी यात्री मोटर यान, मध्यम माल यान, मध्यम यात्री मोटर यान और हल्के मोटर यान को पृथक्तः परिभाषित करते हैं । धारा 2(21) ऐसे हल्के मोटर यान के वर्ग के बारे में है जो परिवहन यान या बस को सम्मिलित करता है जिसमें दोनों में से सकल यान भार 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है या मोटरकार या ट्रैक्टर या रोड रोलर जिसमें से किसी लदान रहित भार 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है । परिवहन यान को धारा 2(47) में, बस को धारा 2(29) में परिभाषित किया गया है । तथापि, परिवहन यान या बस जिसका सकल यान भार 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है को 1988 के अधिनियम की धारा 2(21) में परिभाषित किया गया है । सकल यान भार को 2(15) में परिभाषित किया गया है । हल्के मोटर यान के मामले में परिवहन यान या बस का कुल भार, रजिस्ट्रीकर्ता पदाधिकारी द्वारा प्रमाणित भार 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं होना चाहिए और मोटरकार, ट्रैक्टर या रोड रोलर के मामले में यह आवश्यक है कि 1988 के अधिनियम की धारा 2(48) में यथापरिभाषित लदान रहित भार 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं होना चाहिए ।

5. मुद्दे पर आगे सविस्तार वर्णन करने के लिए अधिनियम के अन्य उपबंधों पर ध्यान देना आवश्यक है । सार्वजनिक सेवा यान, माल वाहन, शिक्षा संस्था बस और प्राइवेट सेवा यान को परिवहन यान में सम्मिलित

किया गया है । उन्हें क्रमशः धारा 2(35), 2(14), 2(11) और 2(33) में परिभाषित किया गया है । उपबंधों को यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

> "2(35) 'सार्वजनिक सेवा यान' से ऐसा कोई मोटर यान अभिप्रेत है जिसका उपयोग भाड़े या पारिश्रमिक पर यात्रियों का वहन करने के लिए किया जाता है या जिसे उपयोग के अनुकूल बना लिया गया है तथा इसके अंतर्गत बड़ी टैक्सी, मोटर टैक्सी, ठेका गाड़ी और मंजिली गाड़ी भी है ;
>
> 2(14) 'माल वाहन' से ऐसा कोई मोटर यान अभिप्रेत है जो केवल माल ढोने के काम के लिए निर्मित या अनुकूलित है या ऐसा कोई मोटर यान भी, जो ऐसे निर्मित या अनुकूलित नहीं है, इस दशा में अभिप्रेत है जबकि उसका उपयोग माल ढोने में किया जाता है ;
>
> 2(11) 'शिक्षा संस्था बस' से ऐसी कोई बस अभिप्रेत है जो किसी महाविद्यालय, विद्यालय या अन्य शिक्षा संस्था के स्वामित्वाधीन है और जिसका उपयोग शिक्षा संस्था के किसी क्रियाकलाप के संबंध में, विद्यार्थियों और कर्मचारिवृन्द के परिवहन के प्रयोजन के लिए ही किया जाता है ;
>
> 2(33) 'प्राइवेट सेवा यान' से ऐसा मोटर यान अभिप्रेत है जो छह से अधिक व्यक्तियों को, जिसके अंतर्गत ड्राइवर नहीं है, वहन करने के लिए निर्मित या अनुकूलित है और साधारणतः ऐसे यान के स्वामी द्वारा या उसकी ओर से, भाड़े या पारिश्रमिक से अन्यथा उसके व्यापार या कारबार के लिए, या उसके संबंध में, व्यक्तियों का वहन करने के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाया जाता है, किंतु इसमें लोक प्रयोजनों के लिए उपयोग में लाया जाने वाला मोटर यान नहीं है ;"

6. 1988 की अधिनियम की धारा 3 चालन अनुज्ञप्ति की आवश्यकता के बारे में है । इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

> "3. चालन अनुज्ञप्ति की आवश्यकता – (1) कोई व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थान में मोटर यान तभी चलाएगा जब उसके पास यान चलाने के लिए उसे प्राधिकृत करते हुए उसके नाम में दी गई प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति है ; और कोई भी व्यक्ति [ऐसी (मोटर टैक्सी या मोटरसाइकिल) से भिन्न जिसे उसने अपने उपयोग के लिए भाड़े पर लिया है या धारा 75 की उपधारा (2) के अधीन बनाई गई किसी

स्कीम के अधीन किराए पर लिया है] परिवहन यान को इस प्रकार तभी चलाएगा जब उसकी चालन अनुज्ञप्ति उसे विनिर्दिष्ट रूप से ऐसा करने का हकदार बनाती है ।

(2) वे शर्तें जिनके अधीन उपधारा (1) ऐसे व्यक्ति को लागू नहीं होगी जो मोटर यान चलाना सीख रहा है, ऐसी होंगी जो केंद्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

7. धारा 9 चालन अनुज्ञप्ति की मंजूरी के बारे में है, जो इस प्रकार है :–

"9. चालन अनुज्ञप्ति का दिया जाना – (1) कोई व्यक्ति, जो उस समय चालन अनुज्ञप्ति धारण करने या अभिप्राप्त करने के लिए निरर्हित नहीं है, उसको चालन अनुज्ञप्ति दिए जाने के लिए उस अनुज्ञापन प्राधिकारी को आवेदन कर सकेगा जिसकी अधिकारिता ऐसे क्षेत्र पर है –

(i) जिसमें वह व्यक्ति मामूली तौर पर निवास करता है या कारबार चलाता है ; या

(ii) जिसमें धारा 12 में निर्दिष्ट वह विद्यालय या स्थापन स्थित है, जहां वह मोटर यान चलाना सीख रहा है या सीख चुका है ।

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक आवेदन ऐसे प्रारूप में होगा और उसके साथ ऐसी फीस और ऐसे दस्तावेज होंगे, जो केंद्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(3) यदि आवेदक ऐसे परीक्षण में उत्तीर्ण हो जाता है, जो केंद्रीय सरकार द्वारा विहित किया जाए तो उसे चालन अनुज्ञप्ति दी जाएगी :

परंतु ऐसा परीक्षण वहां आवश्यक नहीं होगा जहां आवेदक यह दर्शित करने के लिए सबूत प्रस्तुत कर देता है कि –

(क) (i) आवेदक के पास ऐसे वर्ग के यान को चलाने के लिए पहले भी अनुज्ञप्ति थी और उस अनुज्ञप्ति की समाप्ति की तारीख तथा ऐसे आवेदन की तारीख के बीच की अवधि पांच वर्ष से अधिक नहीं है ; या

(ii) आवेदक के पास धारा 18 के अधीन जारी ऐसे वर्ग के यान को चलाने की चालन अनुज्ञप्ति है या पहले धारित करता था ; या

(iii) आवेदक के पास भारत के बाहर किसी देश के सक्षम प्राधिकारी द्वारा ऐसे वर्ग के यान को चलाने के लिए इस शर्त के अधीन दी गई चालन अनुज्ञप्ति है कि आवेदक धारा 8 की उपधारा (3) के उपबंधों का पालन करता है ;

(ख) आवेदक ऐसी किसी निःशक्तता से ग्रस्त नहीं है जिससे उसके द्वारा यान का चलाया जाना जनता के लिए खतरनाक हो सकता है ; और अनुज्ञापन प्राधिकारी उस प्रयोजन के लिए आवेदक से उसी प्ररूप और उसी रीति से, जो धारा 8 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट है, एक चिकित्सा-प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगा :

परंतु यह और कि जहां आवेदन मोटर यान को (जो परिवहन यान नहीं है) चलाने के लिए चालन अनुज्ञप्ति के लिए है वहां अनुज्ञापन प्राधिकारी आवेदक को इस उपधारा के अधीन विहित यान को चलाने के लिए सक्षमता परीक्षण से छूट दे सकेगा, यदि आवेदक के पास राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त मान्यताप्राप्त किसी संस्था द्वारा दिया गया चालन-प्रमाणपत्र है ।

(4) जहां आवेदन किसी परिवहन यान को चलाने की अनुज्ञप्ति के लिए है, वहां किसी आवेदक को तब तक प्राधिकृत नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके पास ऐसी न्यूनतम शैक्षिक अर्हताएं, जो केंद्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए, और धारा 12 में निर्दिष्ट किसी विद्यालय या स्थापन द्वारा दिया गया कोई चालन-प्रमाणपत्र न हो ।

(5) जहां आवेदक परीक्षण उत्तीर्ण नहीं करता है वहां उसे सात दिन की अवधि के पश्चात् परीक्षण पुनः देने की अनुज्ञा दी जा सकेगी :

परंतु जहां आवेदक तीन बार परीक्षण देने के पश्चात् भी उसे उत्तीर्ण नहीं करता है तो वह ऐसे अंतिम परीक्षण की तारीख से साठ दिन की अवधि की समाप्ति के पूर्व ऐसा परीक्षण पुनः देने के लिए अर्हित नहीं होगा ।

(6) चालन सक्षमता परीक्षण उस प्रकार के यान में किया जाएगा जिसका आवेदन में निर्देश है :

परंतु किसी ऐसे व्यक्ति की बाबत जिसने गियर वाली मोटर-साइकिल चलाने का परीक्षण उत्तीर्ण कर लिया है, यह समझा जाएगा

कि उसने बिना गियर वाली मोटरसाइकिल चलाने का परीक्षण भी उत्तीर्ण कर लिया है ।

(7) जब समुचित अनुज्ञापन प्राधिकारी को उचित रूप से आवेदन कर लिया गया है और आवेदक ने अपनी चालन सक्षमता की बाबत ऐसे प्राधिकारी का समाधान कर दिया है तब अनुज्ञापन प्राधिकारी आवेदक को चालन अनुज्ञप्ति देगा जब तक कि आवेदक चालन अनुज्ञप्ति धारण करने या अभिप्राप्त करने के लिए उस समय निरर्हित न हो :

परंतु कोई अनुज्ञापन प्राधिकारी मोटरसाइकिल या हलका मोटर यान चलाने के लिए चालन अनुज्ञप्ति इस बात के होते हुए भी कि वह समुचित अनुज्ञापन प्राधिकारी नहीं है उस दशा में दे सकेगा जिसमें उस अनुज्ञापन प्राधिकारी का समाधान हो जाता है कि इस बात का उचित और पर्याप्त कारण है कि आवेदक समुचित अनुज्ञापन प्राधिकारी को आवेदन करने में असमर्थ है :

परंतु यह और कि अनुज्ञापन प्राधिकारी आवेदक को यदि उसके पास पहले कोई चालन अनुज्ञप्ति थी तो नई चालन अनुज्ञप्ति तब तक नहीं देगा जब तक कि उसका यह समाधान नहीं हो जाता है कि उसकी पहली अनुज्ञप्ति की दूसरी प्रति प्राप्त करने में उसकी असमर्थता का उचित और पर्याप्त कारण है ।

(8) यदि अनुज्ञापन प्राधिकारी का, आवेदक को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् यह समाधान हो जाता है कि वह –

(क) आभ्यासिक अपराधी या आभ्यासिक शराबी है ; या

(ख) स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61) के अर्थ के अंतर्गत किसी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ का व्यसनी है ; या

(ग) ऐसा कोई व्यक्ति है जिसकी मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति को पहले किसी समय प्रतिसंहृत कर दिया गया है,

तो वह, लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से, ऐसे किसी व्यक्ति को चालन अनुज्ञप्ति देने से इनकार करने वाला आदेश कर सकेगा और इस उपधारा के अधीन अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा किए गए किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, आदेश की प्राप्ति के तीस दिन के

भीतर, विहित प्राधिकारी को अपील कर सकेगा ।

(9) मोटरसाइकिल चलाने के लिए इस अधिनियम के प्रारंभ के ठीक पूर्व प्रवृत्त कोई चालन अनुज्ञप्ति, ऐसे प्रारंभ के पश्चात् गियर वाली या बिना गियर वाली किसी मोटरसाइकिल के चलाने के लिए प्रभावी समझी जाएगी ।"

8. आवेदन ऐसे प्ररूप में दिया जाना चाहिए जो विहित किया जाए । धारा 10 चलाने के लिए अनुज्ञप्ति के प्ररूप और अंतर्वस्तु के बारे में है । 1994 के अधिनियम सं. 54 द्वारा 1994 में किए गए इसके संशोधन के पूर्व धारा 10 इस प्रकार है :–

"10. चालन अनुज्ञप्ति का प्ररूप और अंतर्वस्तु – (1) धारा 18 के अधीन दी गई चालन अनुज्ञप्ति के सिवाय प्रत्येक शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति और चालन अनुज्ञप्ति ऐसे प्ररूप में होगी और उसमें ऐसी जानकारी अंतर्विष्ट होगी, जो केंद्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए ।

(2) यथास्थिति, शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति या चालन अनुज्ञप्ति में यह भी अभिव्यक्त किया गया होगा कि धारक निम्नलिखित वर्गों में से एक या अधिक वर्ग का मोटर यान चलाने का हकदार है, अर्थात् –

(क) बिना गियर वाली मोटरसाइकिल ;

(ख) गियर वाली मोटरसाइकिल ;

(ग) अशक्त यात्री गाड़ी ;

(घ) हल्का मोटर यान ;

(ङ) मध्यम मालयान ;

(च) मध्यम यात्री मोटर यान ;

(छ) भारी मालयान ;

(ज) भारी यात्री मोटर यान ;

(झ) रोड-रोलर ;

(ञ) किसी विनिर्दिष्ट प्रकार का मोटर यान ।"

9. धारा 10(2) के उपबंधों से यह स्पष्ट है कि यान के वर्गों को पृथक्तः उपबंधित किया गया है । हल्के मोटर यान को धारा 10(2)(घ) में

उपबंधित किया गया है । परिवहन यान को धारा 10(2)(ङ) से 10(2)(ज) के स्थान पर, धारा 10(2)(ङ) में यथा उपबंधित मध्यम मालयान, धारा 10(2)(च) में उपबंधित मध्यम यात्री मोटर यान, धारा 10(2)(छ) में उपबंधित भारी मालयान और धारा 10(2)(ज) में भारी यात्री मोटर यान के स्थान पर 1994 में अंतःस्थापित किया गया था । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परिवहन यान को 1988 के अधिनियम के अधीन "हल्के मोटर यान", "भारी मोटर यान" आदि के प्रवर्ग के अधीन यथा स्थिति सकल यान भार या लदान रहित भार के अनुसार सम्मिलित किया गया था जो अधिनियम की धारा 2(21) में यथा परिभाषित हल्के मोटर यान की परिभाषा के साथ पठित अधिनियम की धारा 10(2) में दी गई पूर्वोक्त वर्गीकरण के पढ़ने मात्र से प्रकट है ।

अधिनियम की धारा 10 के उपबंधों को 1994 के संशोधन अधिनियम सं. 54 द्वारा संशोधित किया गया था । 1994 के संशोधन अधिनियम सं. 54 के उद्देश्यों और कारणों का कथन इस प्रकार है :–

> "1994 का संशोधन अधिनियम सं. 54 – उद्देश्यों और कारणों का कथन – मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) ने सड़क परिवहन को विनियमित करने वाली विभिन्न विधियों को समेकित और तर्कसंगत बनाया । मोटर यान अधिनियम, 1939 को प्रतिस्थापित करते हुए 1 जुलाई, 1989 से प्रवृत्त हुआ ।
>
> 2. मोटर यान अधिनियम, 1988 के प्रवृत्त होने के पश्चात् सरकार को राज्य सरकार परिवहन प्रचालकों और आम जनता से 1988 अधिनियम के कुछ उपबंधों के प्रचालन के कारण उनके द्वारा झेली जा रही असुविधा के बारे में कई अभ्यावेदन और सुझाव प्राप्त हुए । अतः, 1988 अधिनियम की परीक्षा और पुनर्विलोकन के लिए मार्च, 1990 में सरकार द्वारा एक पुनर्विलोकन समिति गठित की गई है ।
>
> 3. पुनर्विलोकन समिति की सिफारिशों को टिप्पणियों के लिए राज्य सरकारों को अग्रेषित किया गया और वे सामान्यतः इन सिफारिशों से सहमत थे । सरकार ने पुनर्विलोकन समिति की रिपोर्ट को अंतिम रूप देने के पश्चात्, अधिनियम में संशोधन करने के लिए परिवहन प्रचालकों और आम जनता से प्राप्त अनेक अभ्यावेदनों, पर भी विचार किया, पुनर्विलोकन समिति की सिफारिश और आम जनता

से प्राप्त अभ्यावेदनों पर आधारित प्रस्ताव का एक प्रारूप मामले में उनके विचार जानने के लिए परिवहन विकास परिषद् के समक्ष रखा गया । परिवहन विकास परिषद् द्वारा सुझाए गए महत्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित से संबंधित या उनके बारे में हैं, –

(क) देश में नए प्रकार के यानों का आगमन और वाणिज्यिक और निजी दोनों प्रकार के यानों की तेजी से बढ़ती संख्या ;

(ख) दीर्घसूत्री प्रक्रिया के बिना सड़क दुर्घटनाओं के पीड़ितों को पर्याप्त प्रतिकर उपलब्ध कराना ;

(ग) परिवहन सेक्टर में उपभोक्ताओं के हित को संरक्षित करना ;

(घ) सड़क सुरक्षा मानक, परिसंकटमय रसायनों का परिवहन और प्रदूषण नियंत्रण की चिंता ;

(ङ) राज्य परिवहन प्राधिकारियों को अधिक शक्तियों का प्रत्यायोजन और कतिपय मामलों में लोक प्राधिकारियों की भूमिका को तर्कसंगत बनाना ;

(च) सड़क परिवहन के क्षेत्र में प्रक्रियाओं का सरलीकरण और नीति का उदारीकरण ;

(छ) यातायात अपराधियों की शास्ति की वृद्धि ।

4. अतः उपरोक्त पृष्ठभूमि के आलोक में प्रस्तावित विधान तैयार किया गया है । विधेयक में अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध है –

(क) नए प्रकार के यानों की कतिपय परिभाषाओं का उपांतरण और प्रवर्धन ;

(ख) चालन अनुज्ञप्ति की मंजूरी की प्रक्रिया का सरलीकरण ;

(ग) यानों के परिवर्तन पर निर्बंधन लगाना ;

(घ) गैर प्रदूषणकारी ईंधनों पर यान चलाने की कतिपय छूट ;

(ङ) 'बेनामी' धारकों को रोकने के लिए व्यक्तिगत या

कंपनी धारक पर परिसीमा लगाना ;

(च) राज्यों को एक या अधिक राज्य परिवहन अपील अधिकरण नियुक्त करने को प्राधिकृत करना ;

(छ) ऐसे संघटकों के उपयोग पर दंडात्मक नियंत्रण रखना जो विनिर्माताओं द्वारा और व्यापारियों द्वारा भंडारण/विक्रय के लिए ही विहित मानकों के अनुरूप नहीं है ;

(ज) मार कर भाग जाने वाले मामलों के पीड़ितों के प्रतिकर की रकम में वृद्धि ;

(झ) प्रतिकर के लिए सड़क दुर्घटना पीड़ितों द्वारा आवेदन के फाइल करने के लिए समय-सीमा को हटाना ;

(ञ) कतिपय अपराधों के मामले में दंड को कठोर बनाना ;

(ट) आयु/आय के आधार पर जो अधिक उदार और तार्किक है, सड़क दुर्घटना पीड़ितों के प्रतिकर के संदाय के लिए नया पूर्व अवधारित फार्मूला तैयार करना ;

(ठ) विधि आयोग ने अपनी 119वीं रिपोर्ट में यह सिफारिश की थी कि दावे का प्रत्येक आवेदन ऐसे क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले दावा अधिकरण को किया जाए जिसमें दुर्घटना घटी है या ऐसे दावा अधिकरण को जिसकी अधिकारितागत स्थानीय सीमा के भीतर दावाकर्ता रहता है या कारबार करता है या ऐसी अधिकारिता के स्थानीय सीमा के भीतर जिसमें प्रतिवादी निवास करता है, यह दावाकर्ता के विकल्प पर है । विधेयक उक्त सिफारिश को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक उपबंध भी करता है ।"

धारा 10 को अधिनियम सं. 54/1994 द्वारा इस प्रकार संशोधित किया गया –

'10. चालन अनुज्ञप्ति का प्ररूप और अंतर्वस्तु – (1) धारा 18 के अधीन दी गई चालन अनुज्ञप्ति के सिवाय प्रत्येक शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति और चालन अनुज्ञप्ति ऐसे प्ररूप में होगी और उसमें ऐसी जानकारी अंतर्विष्ट होगी, जो केंद्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए ।

(2) यथास्थिति, शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति या चालन अनुज्ञप्ति में यह भी अभिव्यक्त किया गया होगा कि धारक निम्नलिखित वर्गों में से एक या अधिक वर्ग का मोटर यान चलाने का हकदार है, अर्थात् –

(क) बिना गियर वाली मोटरसाइकिल ;

(ख) गियर वाली मोटरसाइकिल ;

(ग) अशक्त यात्री गाड़ी ;

(घ) हल्का मोटर यान ;

(ङ) परिवहन यान ;

(च) रोड-रोलर ;

(छ) किसी विनिर्दिष्ट प्रकार का मोटर यान ।"

10. प्ररूप 4 जो केंद्रीय मोटर यान नियम, 1989 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1989 का नियम" कहा गया है) के नियम 14 के अधीन यथा विहित 28 मार्च, 2001 तक प्रचलित था, को नीचे उद्धृत किया गया है :–

"प्ररूप 4

(नियम 4 देखिए)

मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन का प्ररूप

सेवा में,

(पासपोर्ट आकार का फोटोग्राफ)

अनुज्ञापन प्राधिकारी

.....

मैं निम्नलिखित विवरण के यान चलाने के लिए स्वयं को समर्थ बनाने हेतु अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन करता हूं :

(क) बिना गियर वाली मोटरसाइकिल ;

(ख) गियर वाली मोटरसाइकिल ;

(ग) अशक्त यात्री गाड़ी ;

(घ) हल्का मोटर यान ;

(ङ) मध्यम मालयान ;

(च) मध्यम यात्री मोटर यान ;

(छ) भारी मालयान ;

(ज) भारी यात्री मोटर यान ;

(झ) रोड-रोलर ;

(ञ) किसी विनिर्दिष्ट प्रकार का मोटर यान ।

आवेदक द्वारा विशिष्टियां भरी जाएं

1. नाम .....

2. पिता/पति का नाम .....

3. स्थायी पता .....

(सबूत संलग्न करें)

4. अस्थायी पता/कार्यालयीय पता (यदि कोई है) .....

5. जन्मतिथि (सबूत संलग्न करें) .....

6. शैक्षिक अर्हता .....

7. पहचान चिह्न (1) .....

(2) .....

8. वैकल्पिक/रक्त समूह-आर.एच. फैक्टर .....

9. क्या आपके पास पहले अनुज्ञापन अनुज्ञप्ति है ? यदि हां तो ब्यौरे बताएं .....

10. ऐसे प्रत्येक दोषसिद्धि का ब्यौरा और तारीख जिसके पृष्ठांकन का आवेदक द्वारा धारित किसी अनुज्ञप्ति पर आदेश दिया गया है .....

11. क्या आपको यान चलाने की अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए निरर्हित किया गया है ? यदि हां, तो किस कारण से .....

12. क्या आपका अपनी समर्थता या योग्यता के बारे में ऐसे यान

चलाने जिसकी बाबत यान चलाने की अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन किया गया है, परीक्षण किया गया है ? यदि हां, तो निम्नलिखित ब्यौरे दें ।

परीक्षण की तारीख परीक्षणकर्ता प्राधिकारी परीक्षण का परिणाम

(1)

(2)

(3)

13. मैं अपना हाल ही के (पासपोर्ट आकार के फोटोग्राफ) की तीन प्रतियां संलग्न करता हूं (जहां लेमिनेटेड कार्ड का प्रयोग किया जाता है, फोटोग्राफ की आवश्यकता नहीं है) .....

14. मैं अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा जारी शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति संख्या ..... तारीख ..... संलग्न करता हूं ।

15. मैं ..... द्वारा जारी चालन प्रमाणपत्र सं. ..... तारीख ..... संलग्न करता हूं ।

16. मैंने शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति के लिए अपने आवेदन के साथ माता-पिता/संरक्षक की लिखित सहमति प्रस्तुत की है .....

17. मैंने शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति के लिए अपने आवेदन के साथ चिकित्सा योग्यता प्रमाणपत्र संलग्न किया है .....

18. मुझे केंद्रीय मोटर यान नियम, 1989 के नियम 6 के अधीन चिकित्सा परीक्षण से छूट प्राप्त है .....

19. मुझे केंद्रीय मोटर यान नियम, 1989 के नियम 11(2) के अधीन प्रारंभिक परीक्षण से छूट प्राप्त है .....

20. मैंने रुपए ..... की फीस संदत्त की है ।

मैं घोषित करता हूं कि मेरी सर्वोत्तम जानकारी और विश्वास के अनुसार उपरोक्त दी गई विशिष्टियां सही हैं ।

टिप्पण : जो लागू न हो उसे काट दें ।

तारीख : .....

आवेदक का हस्ताक्षर/अंगूठा निशान

चलाने की सक्षमता का परीक्षण प्रमाणपत्र

आवेदक ने केंद्रीय मोटर यान नियम, 1989 के नियम 15 के अधीन विहित परीक्षण उत्तीर्ण कर लिया है । परीक्षण तारीख ..... को (यहां रजिस्ट्रीकरण चिह्न और यान का विवरण लिखें) किया गया ।

आवेदक परीक्षण में असफल रहा ।

(खामी के ब्यौरों का उल्लेख करें)

तारीख .....

परीक्षणकर्ता प्राधिकारी का हस्ताक्षर

पूरा नाम और पदनाम

आवेदक के हस्ताक्षर के दो नमूने .....

जो लागू न हो उसे काट दें ।

11. तारीख 28 मार्च, 2001 तक नियम 14 के अधीन विहित प्ररूप से यह प्रकट है कि यानों का पूर्वोक्त वर्गीकरण वही रहा । 1988 के अधिनियम की धारा 10(2) के उपबंध के अनुसार विद्यमान वर्ग मध्यम यात्री और मालयान, भारी मालयान और भारी यात्री मोटर यान के विद्यमान वर्ग को हटाकर धारा 10(2)(ङ) से (ज) के अनुसार लाने के लिए पहली बार 28 मार्च, 2001 से परिवहन यान अंतःस्थापित किया गया । प्ररूप 4 में बिना गियर वाली मोटरसाइकिल मद 'क' जिसे 22 अक्तूबर, 1999 से सा. का. नि. 684 (अ) तारीख 5 अक्तूबर, 1999 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया और पुनः 31 जनवरी, 2000 से सा. का. नि. सं. 76(अ) तारीख 31 जनवरी, 2000 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया की बाबत अन्य परिवर्तन किए गए । धारा 10(2)(क) में 1989 और 2000 में अधिसूचनाओं द्वारा किए गए पूर्वोक्त परिवर्तनों से हमारा यहां कोई संबंध नहीं है । संशोधित प्ररूप 4 को यहां नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"प्ररूप 4

(नियम 14(1) देखिए)

मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन का प्ररूप

सेवा में,

(पासपोर्ट आकार का फोटोग्राफ)

अनुज्ञापन प्राधिकारी

.....

.....

मैं निम्नलिखित विवरण के यान चलाने के लिए स्वयं को समर्थ बनाने हेतु अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन करता हूं :–

(क) बिना गियर वाली मोटरसाइकिल ;

(ख) गियर वाली मोटरसाइकिल ;

(ग) अशक्त यात्री गाड़ी ;

(घ) हल्का मोटर यान ;

(ङ) परिवहन यान ;

(च) मध्यम यात्री मोटर यान ;

[********]

(झ) रोड-रोलर ;

(ञ) किसी विनिर्दिष्ट प्रकार का मोटर यान ।

आवेदक द्वारा विशिष्टियां भरी जाएं

1. पूरा नाम .....

2. पिता/पति का नाम .....

3. स्थायी पता ....

(सबूत संलग्न करें)

4. अस्थायी पता/कार्यालयीय पता (यदि कोई है) .....

5. जन्मतिथि (सबूत संलग्न करें) .....

6. शैक्षिक अर्हता .....

7. पहचान चिह्न (1) .....

(2) .....

8. वैकल्पिक/

रक्त समूह .....

आर. एच. फैक्टर .....

9. क्या आपके पास पहले अनुज्ञापन अनुज्ञप्ति है ? यदि हां तो ब्यौरे बताएं .....

10. ऐसे प्रत्येक दोषसिद्धि का ब्यौरा और तारीख जिसके पृष्ठांकन का आवेदक द्वारा धारित किसी अनुज्ञप्ति पर आदेश दिया गया है .....

11. क्या आपको यान चलाने की अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के लिए निरर्हित किया गया है ? यदि हां, तो किस कारण से .....

12. क्या आपका अपनी समर्थता या योग्यता के बारे में ऐसे यान चलाने जिसकी बाबत यान चलाने की अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन किया गया है, परीक्षण किया गया है ? यदि हां, तो निम्नलिखित ब्यौरे दें ।

परीक्षण की तारीख परीक्षणकर्ता प्राधिकारी परीक्षण का परिणाम

(1)

(2)

13. मैं अपना हाल ही के (पासपोर्ट आकार के फोटोग्राफ) की 3 प्रतियां संलग्न करता हूं (जहां लेमिनेटेड कार्ड का प्रयोग किया जाता है, फोटोग्राफ की आवश्यकता नहीं है) .....

14. मैं अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा जारी शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति संख्या ..... तारीख ..... संलग्न करता हूं ।

15. मैं ..... द्वारा जारी चालन प्रमाणपत्र सं. ..... तारीख ..... संलग्न करता हूं ।

16. मैंने शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति के लिए अपने आवेदन के साथ माता-पिता/संरक्षक की लिखित सहमति प्रस्तुत की है .....

17. मैंने शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति के लिए अपने आवेदन के साथ चिकित्सा योग्यता प्रमाणपत्र संलग्न किया है .....

18. मुझे केंद्रीय मोटर यान नियम, 1989 के नियम 6 के अधीन चिकित्सा परीक्षण से छूट प्राप्त है .....

19. मुझे केंद्रीय मोटर यान नियम, 1989 के नियम 11(2) के अधीन

प्रारंभिक परीक्षण से छूट प्राप्त है .....

20. मैंने रुपए ..... की फीस संदत्त की है ।

मैं घोषित करता हूं कि मेरी सर्वोत्तम जानकारी और विश्वास के अनुसार उपरोक्त दी गई विशिष्टियां सही हैं ।

*जो लागू न हो उसे काट दें ।

तारीख : .....

आवेदक का हस्ताक्षर/अंगूठा निशान

चलाने की सक्षमता का परीक्षण प्रमाणपत्र

आवेदक ने केंद्रीय मोटर यान नियम, 1989 के नियम 15 के अधीन विहित परीक्षण उत्तीर्ण कर लिया है । परीक्षण तारीख ..... को (यहां रजिस्ट्रीकरण चिह्न और यान का विवरण लिखें) किया गया ।

आवेदक परीक्षण में असफल रहा ।

(खामी के ब्यौरों का उल्लेख करें)

तारीख .....

परीक्षणकर्ता प्राधिकारी का हस्ताक्षर
पूरा नाम और पदनाम

आवेदक के हस्ताक्षर के दो नमूने

1. .....

2. .....

जो लागू न हो उसे काट दें ।

12. इस प्रकार 1994 के अधिनियम सं. 54 द्वारा धारा 10 के संशोधन के अनुसार मध्यम मालयान, मध्यम यात्री मोटर यान, भारी मालयान और भारी यात्री मोटर यान के प्रवर्गों को हटाया गया और इसके स्थान पर "परिवहन यान" वर्गीकरण रखा गया है । यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि अधिनियम में हल्के मोटर यान की परिभाषा और वर्गीकरण को हू-ब-हू रखा गया है जैसाकि यह विद्यमान है । 1994 के संशोधन अधिनियम सं. 54 के उद्देश्यों और कारणों के कथन से भी यह स्पष्ट है कि परिवहन प्रचालकों और आम जनता को 1988 के अधिनियम के कुछ

उपबंधों के प्रवर्तन के कारण असुविधा झेलनी पड़ी । इसका आशय प्रक्रिया का सरलीकरण और नीति को उदार बनाना था और यह यानों के नए प्रकार के लागू करने के कारण आवश्यक हो गया और जिससे विदेश में निजी और वाणिज्यिक दोनों प्रकार के यानों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है । अतः, इसका आशय उद्देश्यों और कारणों के कथन के पैरा 4(क) और (ख) के कथन के अनुसार चालन अनुज्ञप्ति की मंजूरी के लिए प्रक्रिया के सरलीकरण के लिए नए प्रकार के यानों की कतिपय परिभाषाओं को उपांतरित और प्रवर्धित करना था । प्रश्न यह है कि क्या आशय हल्के मोटर यान के वर्गीकरण को प्रभावित करने वाला प्रतीत नहीं होता जिसे 1988 के अधिनियम की धारा 2(21) की परिभाषा के आलोक में होना समझा गया था और इसका यह कभी आशय नहीं था कि हल्के मोटर यान प्रवर्ग के परिवहन यानों को विद्यमान हल्के मोटर यान के वर्गीकरण की परिधि से बाहर रखा जाए और धारा 10 में यथा अंतःस्थापित परिवहन यानों को मध्यम मालयान, मध्यम यात्री मोटर यान, भारी मालयान और भारी यात्री मोटर यान के उपबंधों को हटाकर किए गए संशोधन के आलोक में समझा जाए । इस प्रकार, 1988 के अधिनियम की धारा 2(21) की परिभाषा के अनुसार हल्के मोटर यान के वर्ग के परिवहन यान की बाबत कोई परिवर्तन नहीं किया गया था ।

13. मुद्दे पर आगे विचार करते हुए, कतिपय नियमों और प्ररूपों को भी निर्दिष्ट करना अपेक्षित है । नियम 8 परिवहन यान चलाने के लिए न्यूनतम शैक्षिक अर्हता का उपबंध करता है जो आठवीं स्तर तक का है । तथापि, परंतुक यह स्पष्ट करता है कि आठवीं स्तर की अर्हता मोटर यान अधिनियम, 2007 के आरंभ के पूर्व परिवहन यान चलाने की चालन अनुज्ञप्ति के नवीकरण के मामले में और/या पहले से धारित चालन अनुज्ञप्ति को परिवहन यान के दूसरे वर्ग के संयोजन के मामले में लागू नहीं होगी । तारीख 10 अप्रैल, 2007 को अंतःस्थापित 1989 के नियमों के नियम 8 को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "8. परिवहन यान चलाने के लिए न्यूनतम शैक्षिक अर्हता – परिवहन यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त करने हेतु किसी आवेदक के बाबत न्यूनतम शैक्षिक अर्हता आठवीं स्तर तक उत्तीर्ण होगी :
>
> परंतु इस नियम में विनिर्दिष्ट न्यूनतम शैक्षिक अर्हता

निम्नलिखित दशा में लागू नहीं हो –

(i) परिवहन यान चलाने की चालन अनुज्ञप्ति के नवीकरण; या

(ii) मोटर यान (संशोधन) नियम, 2007 के आरंभ के पूर्व पहले ही धारित चालन अनुज्ञप्ति में एक अन्य परिवहन यान वर्ग का संयोजन ।"

14. पूर्व नियम 8 का लोप सा. का. नि. सं. 933(अ) तारीख 28 अक्तूबर, 1989 द्वारा तारीख 28 अक्तूबर, 1989 से किया गया । नियम वर्ष 2007 में अंतःस्थापित किया गया और यह उपबंध किया गया कि आठवीं स्तर अर्हता चालन अनुज्ञप्ति में परिवहन यान के अन्य वर्ग के संयोजन के मामले में लागू नहीं होगी । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि नियम 8 अनुज्ञप्ति में विद्यमान एक से भिन्न अन्य प्रवर्ग के परिवहन यान के संयोजन को अनुध्यात करता है । प्रश्न यह उठता है कि क्या वह हल्के मोटर यान प्रवर्ग के संयोजन को निर्दिष्ट करता है और धारा 2(21) में यान के सकल यान भार या यान का लदानरहित भार जिसका वजन 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है, हल्का मोटर यान बना रहेगा । अधिनियम की धारा 10 में परिवहन यान के यानों के वर्ग और हल्के मोटर यान का पृथक्तः उपबंध है । प्रश्न यह उठता है कि क्या धारा 10(2)(ङ) में अंतःस्थापित परिवहन यान विद्यमान धारा 10(2)(ङ), (च), (छ) और (ज) को हटाकर किए गए प्रत्यास्थापन के प्रवर्ग तक सीमित है जो मध्यम मालयान, मध्यम यात्री मोटर यान, भारी मालयान और भारी यात्री मोटर यान के लिए थे और यदि हल्के मोटर यान के भार के भी "परिवहन यान" को धारा 10(2)(ङ) के अधीन एक प्रवर्ग माना जाए तो उस दशा में भी क्या वर्ष 2007 में पुनः नियम 8 के अंतःस्थापन के पीछे कोई प्रयोजन शेष रह जाएगा ।

15. नियम 16 चालन अनुज्ञप्ति के प्ररूप का उपबंध करता है । यह प्ररूप 6 में अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा जारी या नवीकृत किया जाएगा । नियम 16 और प्ररूप 6 को नीचे उद्धृत किया जाता है –

"16. चालन अनुज्ञप्ति का प्ररूप – (1) अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा जारी या नवीकृत प्रत्येक चालन अनुज्ञप्ति प्ररूप 6 में होगी ।

(2) जहां अनुज्ञापन प्राधिकारी के पास (लेमिनेटेड कार्ड प्रकार

या स्मार्ट कार्ड प्रकार की चालन अनुज्ञप्ति जारी करने के लिए आवश्यक साधित्र है, वहां ऐसा कार्ड प्रकार या चालन अनुज्ञप्ति स्मार्ट कार्ड प्रकार, जैसा संबद्ध राज्य सरकार या संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन द्वारा जारी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए) प्ररूप 7 में होगा ।

(3) इस उप नियम के प्रारंभ की तारीख से अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा जारी या नवीकृत प्रत्येक चालन अनुज्ञप्ति प्ररूप 7 में होगी ।

(4) अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा जारी प्रत्येक अंतरराष्ट्रीय चालन परमिट प्ररूप 6-क में होगा और यथास्थिति जारी करने की तारीख से एक वर्ष से अनधिक या चालन अनुज्ञप्ति की विधिमान्यता तक जो पूर्व हो, की अवधि तक विधिमान्य होगा ।

(5) राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन द्वारा प्राधिकृत ऑटोमोबाइल संगमों को अपने निजी सदस्यों और अन्य लोगों को भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रतिहस्ताक्षर के अधीन रहते हुए अंतरराष्ट्रीय चालन परमिट जारी करने की अनुज्ञा होगी ।"

"प्ररूप 6

[नियम 16(1) देखिए]

(6 सेंटीमीटर से 8 सेंटीमीटर के आकार के पुस्तक प्ररूप में मुद्रित किया जाए)

चालन अनुज्ञप्ति का प्ररूप

अनुज्ञप्ति धारक का नाम .....

पिता/पत्नी/पति का नाम .....

(पासपोर्ट आकार
का फोटोग्राफ)

फोटोग्राफ के आरपार नाम लिखा जाए.....

(अनुज्ञापन प्राधिकारी की मुद्रा और हस्ताक्षर

का भाग फोटोग्राफ पर और चालन अनुज्ञप्ति पर हो)

अनुज्ञप्ति धारक का नमूना हस्ताक्षर/
अंगूठा निशान

अनुज्ञापन प्राधिकारी का हस्ताक्षर और
पदनाम

1. चालन अनुज्ञप्ति सं. .....

2. जारी करने की तारीख .....

3. नाम .....

4. पिता/पति का नाम ....

5. अस्थायी पता/कार्यालयीय पता (यदि कोई हो) .....

6. स्थायी पता .....

7. जन्म तिथि .....

8. शैक्षिक अर्हता .....

9. वैकल्पिक

रक्त समूह .....

आरएच फैक्टर .....

10. इस अनुज्ञप्ति के धारक को निम्नलिखित विवरण के यान संपूर्ण भारत में चलाने की अनुज्ञप्ति दी जाती है

गियर वाली मोटरसाइकिल

बिना गियर की मोटरसाइकिल

अविधिमान्य वाहन

हल्का मोटर यान

(परिवहन यान)

मध्यम यात्री मोटर यान

11. निम्नलिखित विवरण के मोटर यान :

परिवहन यान से भिन्न मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति ..... से ..... तक विधिमान्य है	परिवहन यान चलाने की अनुज्ञप्ति ..... से ..... तक विधिमान्य है
ऐसे प्राधिकारी का नाम और पदनाम जिसने चालन परीक्षण किया	अनुज्ञापन प्राधिकारी का हस्ताक्षर और पदनाम

परिवहन यान सं. ..... चलाने का प्राधिकरण तारीख .....

..... से परिवहन यान चलाने का प्राधिकार दिया गया ।

बैज सं. ..... हस्ताक्षर .....

अनुज्ञापन प्राधिकारी का पदनाम

ऐसे प्राधिकारी का नाम और पदनाम जिसने चालन परीक्षण किया

यान के अन्य वर्गों को जोड़ने का स्थल

सं. ..... तारीख .....

निम्नलिखित मोटर यान के वर्ग या विवरण को चलाने के लिए भी प्राधिकृत किया गया :

ऐसे प्राधिकारी का नाम और पदनाम जिसने चालन परीक्षण किया तारीख	अनुज्ञापन प्राधिकारी का हस्ताक्षर और पदनाम

चालन अनुज्ञप्ति का नवीकरण

परिवहन यान से भिन्न मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति को ..... से ..... तक नवीकृत किया जाता है	परिवहन यान चलाने की अनुज्ञप्ति को ..... से ..... तक नवीकृत किया जाता है
अनुज्ञापन प्राधिकारी का हस्ताक्षर	अनुज्ञापन प्राधिकारी का हस्ताक्षर

न्यायालय द्वारा पृष्ठांकन

तारीख	धारा और नियम	जुर्माना या अन्य दंड	पृष्ठांकन प्राधिकारी का हस्ताक्षर
1	2	3	4

अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा पृष्ठांकन

तारीख	कार्यवाही सं. और तारीख	..... से ..... तक निरर्हता अवधि	अनुज्ञापन प्राधिकारी का हस्ताक्षर
1	2	3	4"

यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि प्ररूप में हल्के मोटर यान और परिवहन यान को अलग से दिया गया है ।

16. नियमों का नियम 17 अतिरिक्त चालन अनुज्ञप्ति के बारे में है । यह प्ररूप 8 में लागू होता है । नियम 17 और प्ररूप 8 इस प्रकार है :–

"17. चालन अनुज्ञप्ति का परिवर्धन – (1) मोटर यान के अन्य प्रकार के वर्ग के चालन अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन अनुज्ञापन प्राधिकारी को प्ररूप 8 में दिया जाएगा और उसके साथ निम्नलिखित संलग्न होगा –

(क) आवेदक द्वारा धारित प्रभावी शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति और चालन अनुज्ञप्ति ;

(ख) परिवहन यान के परिवर्धन के लिए आवेदन की दशा में चालन प्रमाणपत्र प्ररूप 5 में ;

(ग) [***]

(घ) नियम 32 में यथा विनिर्दिष्ट समुचित फीस ।

(2) धारा 9 की उपधारा (1), उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंध यावतसाध्य उपधारा (1) के अधीन आवेदन के संबंध में लागू होंगे जैसा वे चालन अनुज्ञप्ति के मंजूरी के आवेदन के संबंध में लागू होते हैं ।"

नियमों के नियम 17(1) में यथा उपबंधित प्ररूप 8 इस प्रकार है :

"प्ररूप 8

[नियम 17(1) देखिए]

चालन अनुज्ञप्ति में नए वर्ग के यान के परिवर्धन के लिए आवेदन

सेवा में,

अनुज्ञापन प्राधिकारी

.....

मैं श्री/श्रीमती/कुमारी ..... सहबद्ध अनुज्ञप्ति में मोटर यान के निम्नलिखित वर्ग/वर्गों के परिवर्धन के लिए आवेदन करता हूं/करती हूं ।

(क) बिना गियर वाली मोटरसाइकिल

(ख) गियर वाली मोटरसाइकिल

(ग) अविधिमान्य वाहन

(घ) हल्के मोटर यान

(ङ) परिवहन यान

(च) मध्यम यात्री मोटर यान

(छ) ***

(ज) ***

(झ) सड़क रोलर

निम्नलिखित प्रकार के मोटर यान :

मैं,

(क) प्ररूप 1-क में चिकित्सा प्रमाणपत्र

(ख) प्ररूप 3 में शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति

(ग) प्ररूप 6/7 में चालन अनुज्ञप्ति संलग्न करता हूं ।

मैं निम्नलिखित के परिवर्धन के लिए आवेदन करता हूं :

(घ) प्ररूप 5 में चालन प्रमाणपत्र यदि आवेदन परिवहन यान चलाने के लिए है

(ङ) मैंने ..... रुपए की फीस संदत्त कर दी है

तारीख .....

आवेदक का हस्ताक्षर या अंगूठा निशान

चलाने की क्षमता का परीक्षण प्रमाणपत्र

आवेदक ने केंद्रीय मोटर यान नियम, 1989 के नियम 15 में

विनिर्दिष्ट परीक्षण उत्तीर्ण/असफल रहा है । परीक्षण ..... तारीख को (यान का विवरण लिखें) ..... पर किया गया ।

परीक्षण प्राधिकारी का हस्ताक्षर
नाम और पदनाम''

17. प्ररूप 8 भी पृथक्तः हल्के मोटर यान और परिवहन यान का उपबंध करता है । प्रश्न यह उठता है कि क्या प्ररूप 4, 5 और 8 में परिवहन यान को ऐसे यान के प्रवर्गों के लिए समझा जाए जिसके लिए प्रत्यास्थापन धारा 10(2)(ङ), (च), (छ) और (ज) के विद्यमान उपबंधों को हटाकर धारा 10(2) द्वारा किया गया है । तथापि, अधिनियम की धारा 10(2) में यानों के परिवर्तित वर्गीकरण के अंतःस्थापन के होते हुए भी "मध्यम यात्री मोटर यान" की बाबत उपबंध अब भी प्ररूप में बना हुआ है या क्या यह हटाने की मुद्रक का लोप हो सकता है ?

18. नियम 34 को भी विनिर्दिष्ट किया गया है जो व्यापार प्रमाणपत्र के बारे में है । नियम 34(2) यह उपबंध करता है कि इसमें विहित यानों के वर्ग के लिए पृथक् आवेदन किया जाएगा । नियम 34 को उद्धृत किया जाता है :–

"34. व्यापार प्रमाणपत्र – (1) किसी व्यापार प्रमाणपत्र की मंजूरी या नवीकरण का आवेदन प्ररूप 16 में किया जाएगा और नियम 81 में यथा विनिर्दिष्ट समुचित फीस साथ में लगाई जाएगी ।

(2) यानों के निम्नलिखित प्रत्येक वर्गों के लिए पृथक् आवेदन किया जाएगा, अर्थात् :–

(क) मोटरसाइकिल ;

(ख) अविधिमान्य वाहन ;

(ग) हल्का मोटर यान ;

(घ) मध्यम यात्री मोटर यान ;

(ङ) मध्यम मालयान ;

(च) भारी यात्री मोटर यान ;

(छ) भारी मालयान ;

(ज) विनिर्दिष्ट प्रकार का कोई अन्य मोटर यान ।"

नियम 34 हल्के मोटर यान, मध्यम यात्री मोटर यान, मध्यम मालयान, भारी यात्री मोटर यान और भारी मालयान के बीच अंतर भी करता है । नियमों के नियम 126 के अनुसार प्रत्येक मोटर यान के प्रोटो टाइप भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के यान अनुसंधान और विकास स्थापन या भारतीय ऑटोमोटिव अनुसंधान संगम द्वारा परीक्षण के अधीन है । परीक्षण अभिकरण को यह सत्यापित करने के लिए नियम 126-क में यथा उपबंधित परीक्षण करना है कि क्या ये यान अधिनियम की धारा 110 के अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अनुरूप हैं । सभी सुसंगत जानकारी को रजिस्ट्रीकरण विशिष्टियों में अधिनियम की धारा 41 के अनुसार शामिल किया जाए जैसा केंद्रीय सरकार द्वारा विहित है । मोटर यान के रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन को प्ररूप 10 में बनाया जाए । यान का वर्ग, सकल यान भार और लदान रहित भार का भी उल्लेख किया जाए ।

19. नियमों के नियम 31 में विद्यालयों या स्थापनों में मोटर यानों के चलाने के अनुदेश देने का पाठ्यक्रम अंतर्विष्ट हैं । वह पाठ्यक्रम भाग 'क' से 'ट' तक विभाजित है । भाग-क चालन सिद्धांत 1, ख-यातायात शिक्षा, ग-हल्के यान चालन प्रैक्टिस, घ-यान यांत्रिकीय और मरम्मत, ङ-मध्यम और भारी यान चालन, च-यातायात शिक्षा 2, छ-चालकों के लिए सार्वजनिक संबंध, ज-भारी यान चालन प्रैक्टिस, झ-अग्नि परिसंकट, ञ-यान अनुरक्षण, च-प्रथम उपचार के बारे में है ।

20. पाठ्यक्रम से यह प्रकट है कि हल्के मोटर यान के लिए और मध्यम और भारी यान चालन प्रैक्टिस के लिए पृथक् पाठ्यक्रम है । परिवहन यानों के लिए किसी पृथक् पाठ्यक्रम का उपबंध नहीं किया गया है । वे पूर्वोक्त प्रवर्गों में सम्मिलित हैं । इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि यानों के भार के अनुसार पाठ्यक्रम का उपबंध किया गया है और भिन्न-भिन्न प्रशिक्षण यानों के भिन्न-भिन्न भारों के अनुसार विहित हैं । चालन अनुज्ञप्ति प्ररूप 6 में नियम 16 के अनुसार जारी किया जाता है । प्ररूप 6 भी पृथक्तः हल्के मोटर यान, परिवहन यान का उपबंध करता है ।

21. केंद्रीय सरकार को अन्य बातों के साथ-साथ अधिनियम की धारा 27 के अधीन न्यूनतम अर्हता, धारा 10 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्ररूप और अनुज्ञप्तियों के अंतर्वस्तु के बारे में और अनुज्ञप्ति मंजूर करने के प्राधिकारी का उपबंध करने और धारा 27 में यथा उपबंधित अन्य मामलों के लिए नियम विरचित करने की शक्ति है । राज्य सरकार प्ररूप 41 में यथा उपबंधित नियम 75 के अधीन मोटर यानों का रजिस्टर बनाए रखने

के लिए व्यादिष्ट है जिसमें सकल यान भार, लदान रहित भार आदि सम्मिलित है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अधिनियम की स्कीम, नियम और प्ररूप सकल यान भार और लदान रहित भार पर बल देते हैं जिनका उल्लेख राज्य रजिस्ट्रीकरण विशिष्टियों आदि में विनिर्दिष्टतः किया जाना अपेक्षित है जिससे ऐसे यान के वर्ग सुनिश्चित किए जा सकें कि क्या यह हल्का, मध्यम या भारी आदि है ।

22. **स्कैंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड** बनाम **कोकिला बेन चंद्रबदन और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि निर्वचन के दौरान विधान-मंडल के आशय पर विचार करने के लिए, इसे अधिनियमित करने के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए सुसंगत उपबंधों के हेतु और दर्शन पर विचार करना आवश्यक है । यह इस प्रकार मत व्यक्त किया गया :–

> **12. अपवर्जन खंड के आधार पर निर्मित प्रतिरक्षा इन तीन कारणों से सफल नहीं हो सकती है, अर्थात् –**
>
> **(1) सुसंगत खंड का वास्तविक निर्वचन करने पर, जो धारा 96 के वास्तविक उद्देश्य के अनुरूप है, सम्यक् रूप में अननुज्ञप्त व्यक्ति द्वारा गाड़ी चलाने का अपवर्जन करने वाली शर्त आत्यंतिक नहीं है और वचनदाता एक बार यह दर्शित किए जाने पर मुक्ति पा जाता है कि उसने अपने वचन को रखने, सम्मान करने और पूरा करने के लिए अपनी शक्ति के अंतर्गत सब कुछ किया है और वह स्वयं जानबूझकर भंग करने का दोषी नहीं है ।**
>
> **(2) यदि इसे आत्यंतिक वचन के रूप में माना भी जाए, तो भी अनुज्ञप्त चालक को यान को बिना देखभाल के खुला न छोड़े जाने के बारे में, जिससे कि कोई अननुज्ञप्त चालक उसे न चलाए, अभिव्यक्त या विवक्षित आदेश दिए जाने से इसका सारवान् अनुपालन हो जाता है ।**
>
> **(3) अपवर्जन खंड का निर्वचन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि यह उन उपबंधों के पास प्रमुख प्रयोजन के विरोध में न हो जो दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों की संरक्षा के लिए अधिनियमित किए गए हैं ताकि वचनदाता उस दशा में**

---

[1] [1987] 3 उम. नि. प. 544 = (1987) 2 एस. सी. सी. 654.

निरपराध घोषित किया जा सके जब वह वचन रखने के लिए अपनी शक्ति के भीतर सब कुछ करता है ।

13. सुसंगत उपबंधों का निर्वचन करते समय विधान-मंडल के आशय को जानने के लिए सुसंगत उपबंधों के हेतु और दार्शनिक सिद्धांत की जांच करने और उनको अधिनियमित करके उनके द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों को ध्यान में रखने से बेहतर शायद ही कोई अन्य कसौटी हो सकती है । साधारणतया विधान-मंडल के लिए यह चिंता की बात नहीं है कि क्या यान के स्वामी ने अपने यान का बीमा कराया है या नहीं । यदि यान का बीमा नहीं कराया गया है तो किसी पर-व्यक्ति जोखिम के कारण उद्भूत होने वाला प्रत्येक दायित्व यान के स्वामी का होगा । विधान-मंडल ने तब धारा **94** अधिनियमित करके सार्वजनिक स्थान में मोटर यान का प्रयोग करने वाले व्यक्ति पर पर-व्यक्ति जोखिम के विरुद्ध बीमा करने के लिए ही जोर क्यों दिया है । अवश्य ही यह बाध्यता मोटर यान के बीमा के कारबार में लगे बीमाकर्ताओं के कारबार को बढ़ावा देने के लिए अधिरोपित नहीं की गई है । यह उपबंध यानों में यात्रा करने वाले या सड़क का प्रयोग करने वाले समाज के सदस्यों को, सड़कों पर मोटर यानों के प्रयोग करने के परिणामस्वरूप उद्भूत जोखिमों से संरक्षित करने के लिए ही अंतःस्थापित किया गया है । विधि में उन दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों को प्रतिकर दिए जाने का उपबंध है जिन्हें मोटर यान दुर्घटना के कारण क्षतियां पहुंचती हैं या किसी घातक दुर्घटना के होने से दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों के आश्रितों को प्रतिकर देने के लिए उपबंध हो सकता है । तथापि, यह संरक्षा उस समय तक मात्र कागज पर ही रहेगी जब तक कि इस बात के लिए गारंटी नहीं दी जाती कि न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर की रकम दुर्घटना के परिणामों के लिए दायी ठहराए गए व्यक्तियों से वसूल की जाएगी । न्यायालय केवल अधिनिर्णय या डिक्री ही पारित कर सकता है । वह इस बात को सुनिश्चित नहीं कर सकता कि अधिनिर्णय या डिक्री के परिणामस्वरूप ऐसी अधिनिर्णीत रकम वास्तव में उस व्यक्ति से वसूल हो गई है जो दायी अभिनिर्धारित किया गया है और जिसके पास संसाधन नहीं है । ऐसी स्थिति में न्यायालयों द्वारा की गई कार्यवाही बेकार ही रहेगी । उन विधिक कार्यवाहियों के परिणाम, जिनमें समुदाय के अल्प संसाधनों से विनिहित मूल्यवान धन लगता है और मूल्यवान समय खर्च होता है, दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों या दुर्घटनाग्रस्त मृतकों के उन आश्रितों को,

जिन्हें बाध्य होकर मुकदमेबाजी में काफी समय, धन और ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है, हास्यास्पद स्थिति में लाकर खड़ा कर देंगे । इस विकट स्थिति से बचने के लिए विधान-मंडल ने यह आवश्यक बना दिया है कि किसी भी मोटर यान का उस समय तक प्रयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि पर-व्यक्ति बीमा प्रवर्तन में न हो । अपेक्षित पर-व्यक्ति बीमा किए बिना यान का प्रयोग दंडनीय अपराध है । विधान-मंडल के सामने एक और भी समस्या थी । बीमा-पालिसी ऐसी शर्तों के साथ दायित्व के लिए उपबंध कर सकती है जो पालिसी की संविदा में विनिर्दिष्ट हों । संरक्षा को वास्तविक बनाने के लिए विधान-मंडल ने यह भी उपबंधित किया है कि प्राप्त निर्णय धारा 96 द्वारा प्राधिकृत किए गए खंडों के अलावा अपवर्जन खंडों के सम्मिलित किए जाने से विफल नहीं होगा और यह उपबंधित करके कि धारा 96 द्वारा अनुज्ञात सीमा के सिवाय और उसे छोड़कर बीमा कंपनी के लिए यह बाध्यकर होगा कि वह पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के विरुद्ध अभिप्राप्त निर्णय की तुष्टि करे (देखिए धारा 96) । दूसरे शब्दों में, विधान-मंडल ने किसी मोटर यान का प्रयोग करने वाले के लिए पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमा पालिसी कराने के लिए जोर दिया है और उसे आवश्यक बना दिया है और यह बात विधान-मंडल द्वारा अधिनियमित उपबंधों के अनुरूप है । ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए उपबंधित किया गया है कि मोटर यान दुर्घटनाओं के क्षतिग्रस्त व्यक्तियों अथवा घातक दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों के आश्रितों को वास्तव में धनीय रूप में प्रतिकर दिया जाना चाहिए, न कि वचन देकर । विधान-मंडल द्वारा अधिनियमित यह फायदाप्रद उपबंध इस तथ्य को ध्यान में रखकर अधिनियमित किया गया है कि आधुनिक युग में मोटर यानों का प्रयोग सहवर्ती परिसंकटों के होते हुए भी जीवन का अभिन्न तथ्य बन गया है और इसका निर्वचन ऐसे अर्थपूर्ण रूप में किया जाना चाहिए जो विधान-मंडल का प्रयोग पूरा करे, न कि उसे विफल करे । अतः इस उपबंध का निर्वचन पूर्वोक्त परिप्रेक्ष्य के प्रकाश में किया जाना चाहिए ।

14. धारा 96(2)(ख)(ii) बीमा कंपनी को उस स्थिति में उन्मुक्ति प्रदान करती है यदि किसी नामित व्यक्ति या व्यक्तियों या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो पूर्ण रूप से अनुज्ञप्त नहीं है, या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो निरर्हता की अवधि के दौरान चालन अनुज्ञप्ति धारण करने या अभिप्राप्त करने से निरर्हित कर दिया गया है, गाड़ी

चालन को अपवर्जित करने की शर्त भंग की जाती है । "भंग" अभिव्यक्ति का बड़ा महत्व है । "भंग" का शब्दकोशीय अर्थ "किसी वचन या बाध्यता का अतिलंघन या अतिक्रमण है ।" अतः, यह बात पूर्णतया स्पष्ट है कि बीमाकर्ता को यह सिद्ध करना पड़ेगा कि बीमाकृत ऐसे वचन के अतिलंघन या अतिक्रमण का दोषी है कि वह व्यक्ति, जिसके पास सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति है, यान का भारसाधक व्यक्ति होगा । यह तथ्य कि "भंग" अभिव्यक्ति में वचन के अतिलंघन या अतिक्रमण की संकल्पना निहित है, इस बात का अनुमान लगाने के लिए उत्प्रेरित करता है कि वचनदाता की ओर से अतिक्रमण या अतिलंघन अवश्य ही जानबूझकर किया गया अतिलंघन या अतिक्रमण होना चाहिए । यदि बीमाकृत व्यक्ति का बिल्कुल भी दोष नहीं है और उसने ऐसा कुछ नहीं किया है जो उसे नहीं करना चाहिए था या किसी भी प्रकार का कोई दोष नहीं है तो यह मानना कैसे विवेकसम्मत होगा कि उसने भंग किया है ? केवल तभी जब बीमाकृत व्यक्ति स्वयं यान को ऐसे व्यक्ति के भारसाधन के अधीन रखता है जिसके पास कोई चालन अनुज्ञप्ति नहीं है, यह कहा जा सकता है कि वह इस वचन भंग का "दोषी" है कि यान अनुज्ञप्त चालक द्वारा चलाया जाएगा । बीमा कंपनी द्वारा यह सिद्ध किया जाना आवश्यक है कि भंग बीमाकृत व्यक्ति की ओर से किया गया था और यह कि बीमाकृत व्यक्ति ही वचन के अतिक्रमण या संविदा के अतिलंघन का दोषी था । जब तक कि बीमाकृत व्यक्ति का दोष न हो और वह भंग का दोषी न हो, बीमाकर्ता बीमाकृत की क्षतिपूर्ति करने की बाध्यता से बच नहीं सकता है और सफलतापूर्वक यह दलील नहीं दे सकता कि वह इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वचनदाता (बीमाकृत) ने अपने वचन का भंग किया है, दायित्व से विमुक्त है । किंतु ऐसा उस समय नहीं यदि दुर्भाग्यवश कोई दुर्घटना घटित होती है । जब बीमाकृत व्यक्ति ने अपनी शक्ति के अनुसार सब कुछ किया है, यहां तक कि उसने अनुज्ञप्त चालक को लगाया हुआ है और यान को इस अभिव्यक्त या विवक्षित आदेश के साथ कि वह उसे स्वयं चलाएगा, अनुज्ञप्त चालक द्वारा चलाए जाने के लिए उसे सौंपा हुआ है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि बीमाकृत व्यक्ति ने किसी प्रकार का भंग किया है । बीमाकृत की ओर से वचन का भंग या अतिक्रमण किए जाने की स्थिति में ही बीमाकर्ता अपवर्जन

खंड का फायदा उठा सकता है । एक प्रकार से प्रश्न यह है कि क्या बीमाकृत द्वारा किया गया वचन आत्यंतिक वचन है या उसे किसी विधिक सिद्धांत के आधार पर निरपराध घोषित किया जा सकता है। कार्टर कृत "ब्रीच ऑफ कॉन्ट्रेक्ट" (1984 का संस्करण) के पैरा 239 में "भंग का सबूत" के अधीन की गई विवेचना मामले के इस पहलू का आभास कराती है । प्रस्तुत मामले में चाहे वचन को आत्यंतिक वचन क्यों न मान लिया जाए, दोषमुक्ति के आधार अधिनियम की धारा 84 में ढूंढे जा सकते हैं । धारा 84 इस प्रकार है –

> "84. खड़े यान – कोई भी व्यक्ति, जो मोटर यान चला रहा है, या उसका भार साधक है, उस यान को सार्वजनिक स्थान में उस दशा के सिवाय खड़ा न रखेगा और खड़ा रखने की अनुज्ञा न देगा जब ड्राइवर की जगह पर ऐसा व्यक्ति है, जो उस यान को चलाने के लिए सम्यक् रूप से अनुज्ञप्त है अथवा जब उसकी यांत्रिक क्रिया बंद कर दी गई है और ब्रेक लगा दिया गया है या लगा दिए गए हैं या ऐसे अन्य उपाय कर लिए हैं जिनसे यह सुनिश्चित हो गया है कि ड्राइवर की अनुपस्थिति में वह यान घटनावश नहीं चल सकता ।"

इस उपबंध को देखते हुए, अनुज्ञप्त ड्राइवर को इस विवक्षित आदेश के अलावा कि वह किसी अननुज्ञप्त व्यक्ति को यान नहीं सौंपेगा, उक्त व्यक्ति पर यह कानूनी बाध्यता भी है कि वह यान को बिना चालक के नहीं छोड़ेगा न ही इसे किसी अननुज्ञप्त चालक के हाथ में सौंपेगा । विधि द्वारा जो प्रतिषिद्ध किया गया है उसे कर्मचारी को दिया गया आदेश माना जाना चाहिए और शर्तों के अननुपालन को माफ करने के लिए विधि की दृष्टि में पर्याप्त समझा जाना चाहिए । अतः, इसे किसी भी स्थिति में बीमाकृत की ओर से किया गया भंग नहीं माना जा सकता । इस उपबंध का भिन्न रूप में अर्थान्वयन किया जाना, इस प्रभाव का राइडर (उपरिका) अंतःस्थापित करके उक्त उपबंध का पुनर्प्रारूपण करना होगा कि उन परिस्थितियों को ध्यान में रखे बिना, जिनमें ऐसी अत्यावश्यकता महसूस हुई, किसी अननुज्ञप्त व्यक्ति द्वारा मोटर यान चलाए जाने पर, बीमाकृत व्यक्ति बीमा संविदा के अधीन दायी नहीं होगा । इस बात पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है कि यह बीमा की संविदा नहीं है जिसका निर्वचन किया जा रहा है । यह ऐसे कानूनी उपबंध का निर्वचन

किया जा रहा है जिसमें छूट की शर्तें परिभाषित की गई हैं । अतः इनका निर्वचन उसी अर्थ में किया जाना चाहिए जिसके लिए इन्हें अधिनियमित किया गया है और साथ ही इसमें यह सुनिश्चित करने के लिए भी चिंता व्यक्त की जानी चाहिए कि संरक्षा ऐसे पिछड़े निर्वचन के कारण अकृत न हो जाए जो उपबंध के उद्देश्य की पूर्ति न करके उसे विफल बनाता है । इससे भिन्न दृष्टिकोण अपनाने से इसके कल्याणकारी उपबंध अकृत बन जाएंगे । ऐसी अकृतता इसका वाचन अकल्याणकारी दृष्टि और ऐसे मस्तिष्क के साथ करने से होगी जो प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित वास्तविक उद्देश्यों से अवगत हुए बिना विधान के प्रयोजन और दर्शन से अनभिज्ञ है । विधान-मंडल ने जो दिया है, उससे न्यायालय निर्वचन की शक्ति का प्रयोग करके अपवंचित नहीं कर सकते हैं जब वह दृष्टिकोण भी जो उपबंध को प्रभावी बनाता है उतना ही न्यायसंगत है जो उपबंध को अप्रभावी बनाता है । वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्ववर्ती दृष्टिकोण इस तथ्य के अलावा कि वह वांछनीय है, अधिक न्यायसंगत है । जब एक ओर ऐसे दृष्टिकोण, जो दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों या उनके आश्रितों को कष्ट और संताप से मुक्ति दिलाएगा और दूसरी ओर इसी प्रकार के युक्तियुक्त दृष्टिकोण के बीच जो कारबार क्रियाकलाप के रूप में उसके द्वारा उठाए गए उपजीविकाजन्य परिसंकट की बाबत बीमाकर्ता के लाभों को कम करेगा, विकल्प का चयन करना हो, जो शायद ही कोई अन्य विकल्प होगा । न्यायालय पूर्ववर्ती मत के अलावा अन्य मत नहीं अपना सकता । यदि नियमनिष्ठ सैद्धांतिक दृष्टिकोण अपनाना पड़े, तो वही निष्कर्ष निकलेगा, अर्थात् उपबंध के "प्रमुख प्रयोजन" के प्रकाश में अपवर्जन खंड को कम महत्व देने का सिद्धांत ताकि "अपवर्जन खंड" उपरि उल्लिखित "प्रमुख प्रयोजन" का अतिक्रमण करना अनुज्ञात करने के बजाय इन दोनों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए । इस सिद्धांत का, जिसका समर्थन करने की आवश्यकता नहीं है, कार्टर कृत "ब्रीच ऑफ कांट्रैक्ट" के पैरा 251 में समर्थन किया गया है । यह इस प्रकार है –

> "अपवर्जन खंडों की बाबत जो बाध्यताएं परिभाषित करने के लिए प्रवृत्त हैं, सहमत होने की संविदाकारी पक्षकारों की सामान्य योग्यता के होते हुए भी एक ऐसा नियम विद्यमान है, जो प्रायः "प्रमुख प्रयोजन नियम" कहा जाता है और जो किसी वचनदाता की संविदाजात बाध्यताओं को परिभाषित करने वाले

व्यापक अपवर्जन खंडों के प्रवर्तन को परिसीमित कर सकते हैं । उदाहरणार्थ, ग्लियन **बनाम** मार्गेटसन एंड कंपनी **[(1893) ए. सी. 351 से 357]** वाले मामले में लॉर्ड हाल्सबरी, एल. सी. ने **कहा :**

> **मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस दस्तावेज का अर्थान्वयन करते समय, जो पक्षकारों के मध्य वहन की संविदा है, सर्वप्रथम संपूर्ण लिखत पर दृष्टिपात किया जाना चाहिए न कि इसके केवल एक भाग पर । संपूर्ण लिखत पर दृष्टिपात करते समय, और यह ध्यान रखते हुए कि इसका प्रमुख प्रयोजन... क्या माना जाए, ऐसे शब्दों को, वास्तव में संपूर्ण उपबंधों को नामंजूर किया जाना चाहिए यदि वे उससे असंगत हैं जो संविदा का प्रमुख प्रयोजन कल्पित किया जा सकता है ।"**

यद्यपि इस नियम ने मूल भंग के सिद्धांत के विकास में भूमिका अदा की है, तथापि, इस नियम की अनवरत विधिमान्यता उस समय स्वीकार की गई जब इस सिद्धांत को हाउस ऑफ लार्ड्स द्वारा लुइसे अटलांटीक सोसाइटे ड' अर्मेमेंट मेरीटाइम एस. ए. **बनाम** एन. बी. रोटरडम्चे कोलेन सैंट्रेल **[(1967) 1 ए. सी. 361 से 393, 412-413, 427-428, 430]** वाले मामले में **नामंजूर कर दिया । तद्नुसार, व्यापक अपवर्जन खंडों को उस सीमा तक कम महत्व दिया जाएगा जिस तक वे संविदा के प्रमुख प्रयोजन, या उद्देश्य के असंगत है ।"**

(बल देने के लिए मोटे अक्षरों में कहा गया है)

23. **सोहन लाल पासी** बनाम **पी. शेष रेड्डी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **स्कैंडिया** (उपरोक्त) वाले मामले में पूर्वोक्त मत की शुद्धता की परीक्षा की और इस प्रकार अधिकथित किया :–

> **"12. .....हमारे अनुसार धारा 92(2)(ख)(ii) का निर्वचन तकनीकी रीति में नहीं किया जाना चाहिए । धारा 96 की उपधारा (2) बीमा कंपनी को समर्थ बनाती है कि वह प्रतिकर के संदाय के दायित्व की बाबत उपधारा (2) में उल्लिखित आधारों में से किसी**

[1] [1997] 1 उम. नि. प. 178 = (1996) 5 एस. सी. सी. 21.

आधार पर अपनी प्रतिरक्षा कर सकती है, इसके अंतर्गत उस शर्त को भंग करना भी है, जिसके अधीन सम्यक् अनुज्ञप्ति न रखने वाले व्यक्ति को यान चलाने से अपवर्जित किया गया है । यह वर्जन बीमाकृत व्यक्ति पर लागू होता है । यदि कोई व्यक्ति जिसने यान का बीमा कराया है किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा यान चलाए जाने की अनुमति देता है, जिसके पास सम्यक् अनुज्ञप्ति नहीं है तो केवल वही खंड लागू होगा । ऐसे मामले में जिसमें किसी व्यक्ति ने बीमा कंपनी से अपने यान का बीमा कराया है सम्यक् अनुज्ञप्तिधारी चालक नियुक्त करता है और यदि दुर्घटना उस समय होती है जब यान चलाने के लिए सम्यक् रूप से प्राधिकृत अनुज्ञप्तिधारी चालक के प्राधिकार से सम्यक् चालन अनुज्ञप्ति न रखने वाले व्यक्ति द्वारा यान चलाया जा रहा है तो क्या ऐसी स्थिति में बीमा कंपनी अपने दायित्व से मुक्त हो जाती है ? धारा 96(2)(ख) में आने वाले 'भंग' शब्द का अर्थ है किसी वचन या बाध्यता का अतिलंघन या उल्लंघन करना । इस प्रकार बीमा कंपनी को यह सिद्ध करना होगा कि बीमाकृत व्यक्ति किसी वचन के अतिलंघन या उल्लंघन का दोषी है । बीमाकर्ता का अधिकरण या न्यायालय का यह भी समाधान करना होगा कि बीमाकृत व्यक्ति की ओर से ऐसा उल्लंघन या अतिलंघन जानबूझकर किया गया था । यदि बीमाकृत व्यक्ति ने प्रश्नगत यान चलाने के लिए सम्यक् अनुज्ञप्तिधारी चालक को नियुक्त करने की पूर्वावधानी बरती है और यह सिद्ध नहीं किया गया है कि बीमाकृत व्यक्ति ने ही बिना अनुज्ञप्ति वाले व्यक्ति द्वारा यान चलाए जाने की अनुमति दी है वहां बीमा कंपनी धारा 96(1) के अधीन अपने कानूनी दायित्व से पीछे नहीं हट सकती .....।"

24. इस न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न विनिश्चयों का उल्लेख करना सुसंगत है । **अशोक गंगाधर मराठा** बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने हल्के मोटर यान की परिभाषा पर विचार किया और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"10. अधिनियम की धारा 2 के खंड (21) में दी गई 'हल्के मोटर यान' की परिभाषा केवल 'हल्के मालयान' या 'हल्के परिवहन यान' को ही लागू हो सकती है । अन्यथा 'हल्का मोटर यान' अधिनियम की धारा 2 के खंड (28) में दी गई "मोटर यान' या 'यान' की परिभाषा के अंतर्गत आएगा । हल्के मोटर यान का

[1] (1999) 6 एस. सी. सी. 620.

अभिप्राय हमेशा हल्का माल वाहन नहीं हो सकता । हल्का मोटर यान गैर-परिवहन यान भी हो सकता है ।"

25. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **जहारुल नीशा और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस आशय के लिए **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह**[2] वाले मामले के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया कि यदि किसी व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के यान के लिए अनुज्ञप्ति दी गई है तो उसे अन्य प्रकार के यान चलाने के लिए कोई अनुज्ञप्ति नहीं दिया गया, नहीं कहा जा सकता जो उसी प्रवर्ग का है किंतु भिन्न प्रकार का है । उदाहरण के लिए जब किसी व्यक्ति को हल्का मोटर यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति दी जाती है तो वह कार या जीप चला सकता है और यह आवश्यक नहीं है कि उसके पास अलग से कार और जीप दोनों को चलाने की अनुज्ञप्ति हो । इस न्यायालय ने यह अधिकथित किया कि चूंकि चालक के पास भारी मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति थी किंतु दुर्घटना के समय वह स्कूटर चला रहा था जो यान का बिल्कुल भिन्न वर्ग है अतः कार्य को मोटर यान अधिनियम की धारा 10(2) के अतिक्रमण में होना अभिनिर्धारित किया गया है । सुसंगत उपबंध इस प्रकार है :–

"18. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **स्वर्ण सिंह [(2004) 3 एस. सी. सी. 297] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मोटर यान अधिनियम की धारा 3(2), 4(3), 10(2) और 149 सहित विभिन्न उपबंधों के अर्थ, लागू होने और निर्वचन पर विस्तार से विचार किया । निर्णय के पैरा 47 में विद्वान् न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि किसी व्यक्ति को उसमें विनिर्दिष्ट यान के विशिष्ट प्रकार के लिए अनुज्ञप्ति दी गई है तो उसे यान के अन्य प्रकार को चलाने के लिए किसी अनुज्ञप्ति का न दिया जाना नहीं कहा जा सकता जो उसी प्रवर्ग का है किंतु भिन्न प्रकार का है । उदाहरण के लिए जब किसी व्यक्ति को हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति दी गई है तो वह कार या जीप चला सकता है और यह आवश्यक नहीं है कि उसके पास कार और जीप चलाने के लिए पृथक्तः चालन अनुज्ञप्ति हो । पैरा 48 में यह इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया –**

'48. इसके अतिरिक्त, बीमा कंपनी से यह दर्शित करने के लिए अपने दायित्व से बचने के लिए केवल यह अपेक्षित

---

[1] (2008) 12 एस. सी. सी. 385.

[2] (2004) 3 एस. सी. सी. 297.

नहीं है कि धारा 149(2)(क) या (ख) के अधीन अधिकथित शर्तें पूरी हों किंतु आगे यह स्थापित करना अपेक्षित है कि बीमाकृत की ओर से भंग हुआ है । 1988 के अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के कारण, उन व्यक्तियों पर और विस्तारी उपचार प्रदत्त किया गया है जिन्होंने यान के उपयोक्ता के विरुद्ध निर्णय अभिप्राप्त किए हैं और इसके पश्चात् बीमा-प्रमाणपत्र धारा 147(3) के निबंधनानुसार किए गए हैं । धारा 145 के अधीन आने के लिए अपेक्षित दायित्व की बाबत बीमा द्वारा किसी तृतीय पक्षकार ने किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय अभिप्राप्त किया है तो इस बात के होते हुए भी बीमाकर्ता द्वारा इसका समाधान किया जाना चाहिए कि बीमाकर्ता बीमा से बचने या इसे रद्द करने का हकदार हो सकता है या वस्तुतः उसने ऐसा किया है । यही बाध्यता ऐसे किसी दायित्व के बाबत बीमा द्वारा बीमा न कराए गए व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय की बाबत लागू होता है किंतु वही इसके अधीन आएगा यदि मृत्यु या शारीरिक क्षति के लिए दायित्व के सिवाय बीमा सभी व्यक्तियों के दायित्व को समाहित करती है ।'

19. (स्वर्ण सिंह वाले मामले में) निर्णय में आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि मोटर यान अधिनियम के अधीन, विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति का धारण किया जाना बीमा की संविदा की एक शर्त है । विधिमान्य अनुज्ञप्ति के बिना यान चलाना एक अपराध है । तथापि, यहां प्रश्न यह है कि क्या किसी दुर्घटना में अंतर्वलित तीसरा पक्षकार मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अनुदत्त प्रतिकर की रकम का हकदार है यद्यपि सुसंगत समय पर यान के चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति हो सकता है न हो किंतु वह स्वामी या उसके चालक से इसे वसूल करने का हकदार होगा । यह घिसी-पिटी बात है कि जहां बीमाकर्ता बीमाकृत द्वारा विधि के अतिक्रमण के उपबंध का अवलंब लेकर बीमाकृत या तीसरे पक्षकार को अदा करने का अवलंब लेता है वहां उसे बीमाकृत द्वारा विधि के जानबूझकर किए गए अतिक्रमण को साबित करना चाहिए । कुछ मामलों में आपराधिक विधि विशेषकर मोटर यान अधिनियम के उपबंधों का अतिक्रमण का परिणाम बीमाकर्ताओं को छुटकारा प्रदान करना हो सकता है किंतु यह निश्चय ही तीसरे पक्षकार के मामले में बेहतर नहीं हो सकता । किसी भी दशा में अपवाद केवल साशय किए गए कार्यों को लागू होते हैं या 'इस

प्रकार असावधानीपूर्वक जिससे यह द्योतित होता हो कि बीमाकृत ने यह परवाह नहीं की कि उसके कार्य का क्या परिणाम हो सकता है' । मोटर यान अधिनियम की धारा 149 की उपधारा (4) और (5) के उपबंधों पर पहली नजर में डिक्री का समाधान करने के लिए बीमाकर्ता के दायित्व के संबंध में विचार किया जा सकता है । बीमाकर्ता का दायित्व एक कानूनी दायित्व है । तीसरे पक्षकार के पक्ष में पारित डिक्री का समाधान करने के लिए बीमाकर्ता का दायित्व भी कानूनी दायित्व है ।

20. विद्वान् न्यायाधीशों ने मोटर यान अधिनियम के संपूर्ण तात्विक और सुसंगत उपबंधों तथा ऐसे यान के जो बीमा कंपनी के पास बीमाकृत है, तेज और उपेक्षापूर्ण चालन के कारण हुई घटना के पीड़ितों के दावों की प्रतिरक्षा में बीमा कंपनियों को उपलब्ध बचाव के प्रश्न पर विभिन्न उच्च न्यायालयों और इस न्यायालय के प्रतिकूल विनिश्चयों पर विचार करते हुए संक्षेप में निम्नलिखित निष्कर्ष अभिलिखित किया (स्वर्ण सिंह वाला मामला, एस. सी. सी. पृष्ठ 341-342) –

> '110. (i) तृतीय पक्षकार जोखिम के विरुद्ध यान की अनिवार्य बीमा कराने का उपबंध करने वाले मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 11 मोटर यान के उपयोग द्वारा कारित दुर्घटनाओं के पीड़ितों को प्रतिकर द्वारा राहत देने वाला एक सामाजिक कल्याण विधान है । सभी यानों का अनिवार्य बीमा कराने का उपबंध का यह सर्वोपरि उद्देश्य है और अधिनियम के उपबंधों का इस प्रकार निर्वचन किया जाना चाहिए जिससे कि उक्त उद्देश्य को प्रभावी बनाया जा सके ।
>
> (ii) कोई बीमाकर्ता मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163क या धारा 166 और उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(क)(i) के निबंधनों के अधीन फाइल की गई दावा अर्जी में प्रतिरक्षा करने का हकदार है ।
>
> (iii) धारा 149 की उपधारा (2)(क)(ii) के अनुसार बीमा शर्त का भंग अर्थात् चालक की निरर्हता या चालक की अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए बीमाकृत द्वारा किया गया साबित करना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का अभाव, कूट रचना या अविधिमान्यता या सुसंगत समय पर चलाने के लिए चालक की निरर्हता

बीमाकृत द्वारा या द्वितीय पक्षकार के विरुद्ध बीमाकर्ता को स्वयं प्रतिरक्षा उपलब्ध नहीं होता है । बीमाकृत के प्रति अपने दायित्व से बचने के लिए, बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत उपेक्षा का दोषी है और सम्यक् अनुज्ञप्ति चालक या ऐसा व्यक्ति जो सुसंगत समय पर यान चलाने के लिए निरर्हित नहीं था, द्वारा यान के उपयोग के बारे में बीमा की शर्त को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में असफल रहा ।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को उक्त कार्यवाहियों में उठाए गए उपलब्ध बचावों को अपने दायित्व से बचने के लिए न केवल स्थापित करना चाहिए बल्कि यान के स्वामी की ओर से भंग भी स्थापित करना चाहिए ; सबूत का भार जहां कहीं उन पर हो ।

(v) न्यायालय ऐसा कोई मापदंड अधिकथित नहीं कर सकता है कि कैसे उक्त भार का निर्वहन किया जाए क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

(vi) जहां बीमाकर्ता सुसंगत अवधि के दौरान चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति या चलाने की उसकी अर्हता के बारे में बीमा शर्त से संबंधित बीमाकृत की ओर से भंग साबित करने में असमर्थ है वहां बीमाकर्ता को बीमाकृत के प्रति अपने दायित्व से बचने की तब तक अनुज्ञा नहीं दी जाएगी जब तक चालन अनुज्ञप्ति की शर्त पर उक्त भंग या कई भंग इतने आधारभूत हैं कि वे दुर्घटना के कारित होने में योगदान देने वाले पाए जाते हैं । बीमा शर्तों का निर्वचन करने में अधिकरण को अधिनियम की धारा 149(2) के अधीन बीमाकृत को उपलब्ध प्रतिरक्षा को अनुज्ञात करने के लिए 'मुख्य प्रयोजन के नियम' और 'मूलभूत भंग' की अवधारणा को लागू करना होगा ।

(vii) यह प्रश्न कि क्या स्वामी ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि क्या चालक द्वारा पेश की गई चालन अनुज्ञप्ति (जाली या अन्यथा) विधि की अपेक्षाओं को पूरा करती है या नहीं, प्रत्येक मामले में अवधारित करना होगा ।

(viii) यदि दुर्घटना के समय यान शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति रखने वाले व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था तो बीमा कंपनी

डिक्री को पूरा करने की दायी होगी ।

(ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण मोटर यान के उपयोग से उद्‌भूत मृत्यु या तीसरे पक्षकार के शारीरिक क्षति या संपत्ति की नुकसानी वाले दुर्घटनाओं से संबंधित सभी दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सशक्त है । अधिकरण की उक्त शक्ति एक ओर दावाकर्ता या दावाकर्ताओं और दूसरी ओर बीमाकृत, बीमाकर्ता या चालक के बीच परस्पर दावों को विनिश्चित करने के लिए निर्बंधित नहीं है । प्रतिकर के दावों का न्यायनिर्णयन करने और बीमाकर्ता की प्रतिरक्षा या प्रतिरक्षाओं की उपलब्धता को विनिश्चित करने के अनुक्रम में, अधिकरण को बीमाकर्ता और बीमाकृत के बीच परस्पर विवादों को विनिश्चित करने की निश्चित ही शक्ति और अधिकारिता है । दावाकर्ताओं द्वारा प्रतिकर के लिए दावे के न्यायनिर्णयन के अनुक्रम में बीमाकर्ता और बीमाकृत के बीच परस्पर दावे और विवादों पर दिए गए विनिश्चय और उस पर किया गया अधिनिर्णय उसी रीति से प्रवर्तन योग्य और निष्पादन योग्य है जैसा दावाकर्ताओं के पक्ष में अधिनिर्णय के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए अधिनियम की धारा 174 में उपबंधित है ।

(x) जहां अधिनियम के अधीन दावे के न्यायनिर्णयन पर अधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि बीमाकर्ता ने उपरोक्त इस न्यायालय द्वारा यथा निर्वचित उपधारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के उपबंधों के अनुसार अपनी प्रतिरक्षा समाधानप्रद रूप से साबित की है वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि बीमाकर्ता ऐसे प्रतिकर और अन्य रकमों के लिए बीमाकृत द्वारा प्रतिपूर्ति किए जाने का दायी है जिसे अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन तीसरे पक्षकार को अदा करने के लिए मजबूर किया गया । अधिकरण द्वारा दावे का ऐसा अवधारण प्रवर्तनीय होगा और बीमाकृत से बीमाकर्ता को शोध्य पाया गया धन भू-राजस्व के बकाए के रूप में अधिनियम की धारा 174 के अधीन उसी रीति से अधिकरण द्वारा कलक्टर को जारी प्रमाणपत्र पर वसूल किए जाने योग्य होगा । प्रमाणपत्र भू-राजस्व के बकाए के रूप में वसूली के लिए तभी जारी किया जाएगा जब अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (3) द्वारा अपेक्षित हो और बीमाकृत अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय की

घोषणा की तारीख से 30 दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में अधिनिर्णीत रकम जमा करने में असफल रहता है ।

(xi) उपधारा (4) में उसके अधीन परंतु के साथ और उपधारा (5) के उपबंध जिनका आशय बीमाकृत की ओर से बीमा संविदा के अधीन संदत्त रकम को सुनने के लिए बीमाकर्ता को समर्थ बनाने के लिए उसमें वर्णित विनिर्दिष्ट आकस्मिकताओं को समेटना है, का आश्रय अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है और ऐसे मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में परस्पर उनके दावों के न्यायनिर्णयन में पीड़ितों के दावों के न्यायनिर्णयन में विलंब हो सकता है, नियमित न्यायालय के समक्ष उपचार से उनको निर्मुक्त कर बीमाकृत के विरुद्ध बीमाकर्ता के दावों और प्रतिरक्षाओं तक विस्तारित किया जाए ।'

21. विधि के उपरोक्त स्थिर प्रतिपादना के आलोक में अपीलार्थी बीमा कंपनी को ऐसी सड़क दुर्घटना में शुकुरूल्लाह की मृत्यु के कारण के लिए दावाकर्ताओं को प्रतिकर की रकम देने का दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता जो ऐसे रामसूरत द्वारा स्कूटर के उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण चलाने के कारण हुई थी जिसके पास स्वीकार्यतः दुर्घटना के दिन यान चलाने का कोई विधिमान्य और प्रभावी अनुज्ञप्ति नहीं थी । स्कूटर चालक के पास एच.एम.वी. चलाने की चालन अनुज्ञप्ति थी और वह बिल्कुल भिन्न प्रकार का यान चला रहा था जिसका वह कार्य मोटर यान अधिनियम की धारा 10(2) के अतिक्रमण में है ।"

26. **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रभू लाल**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने केवल हल्का मोटर यान चलाने की विधिमान्य अनुज्ञप्ति रखने वाले चालक द्वारा परिवहन यान चलाने के प्रश्न पर विचार किया जिस पर परिवहन यान चलाने के लिए चालक को समर्थ बनाने के लिए अनुज्ञप्ति पर कोई पृष्ठांकन नहीं किया गया था । इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अधिकथित किया कि उक्त यान का स्वामी बीमाकर्ता से ऐसी परिस्थितियों में क्षतिपूर्ति का दावा नहीं कर सकता । यह अभिनिर्धारित किया गया कि माल वाहक परिवहन यान होगा । दुर्घटना 17 अप्रैल, 1998 को हुई और अंतर्वलित यान टाटा 709 था । जिला फोरम ने इसे माल वाहक अभिनिर्धारित किया और परिवहन यान में

[1] (2008) 1 एस. सी. सी. 696.

सम्मिलित किया जबकि राज्य आयोग ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह यान के कुल भार पर अवलंब लेते हुए हल्का मोटर यान था । इस न्यायालय ने अधिकथित किया कि उक्त आयोग द्वारा जिला फोरम के निर्णय को उलटना गलत था । इस न्यायालय ने प्रश्न पर इस प्रकार विचार किया :–

"38. हम बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल के निवेदन में पर्याप्त बल पाते हैं । हम यह भी पाते हैं कि जिला फोरम में उचित परिप्रेक्ष्य में प्रश्न पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि रामनरायण द्वारा चलाया जा रहा यान अधिनियम की धारा 2 के खंड 47 के अधीन परिवहन यान के अंदर आता है । अतः धारा 3 चालक से ऐसे पृष्ठांकन की अपेक्षा रखती है जो उसे ऐसा यान चलाने का हकदार बनाएगा । परिवादी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि ऐसा पृष्ठांकन किया गया था और रामनरायण परिवहन यान चलाने के लिए अनुज्ञात था । इसके प्रतिकूल परिवादी का यह पक्षकथन था कि वह मुहम्मद जुल्फिकार था, जो यान चला रहा था । अतः हमारे दृष्टिकोण से जिला फोरम द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाना उचित था कि रामनरायण प्रश्नगत यान नहीं चला सकता था ।

39. तथापि, परिवादी के विद्वान् काउंसेल ने अशोक गंगाधर **[(1999) 6 एस. सी. सी. 620] वाले मामले का दृढ़तापूर्वक अवलंब लिया । उस मामले में अपीलार्थी ट्रक, हल्के मोटर यान, का स्वामी था जिसका बीमा प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी द्वारा किया गया था । यान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और परिवादी द्वारा उपभोक्ता आयोग के समक्ष दावा किया गया । बीमा कंपनी द्वारा यह दलील दी गई कि ट्रक माल वाहन या परिवहन यान था और चूंकि ट्रक का चालक केवल हल्के मोटर यान चलाने के लिए प्ररूप 6 में जारी चालन अनुज्ञप्ति धारित करता था इसलिए वह परिवहन यान चलाने के लिए प्राधिकृत नहीं था क्योंकि ऐसा परिवहन यान चलाने के लिए उसे प्राधिकृत करते हुए उसके चालन अनुज्ञप्ति में कोई पृष्ठांकन नहीं था । व्यथित परिवादी ने इस न्यायालय में निवेदन किया । अपील मंजूर करते हुए और आयोग द्वारा पारित आदेश को अपास्त करते हुए इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यान का चालक हल्का मोटर यान चलाने के लिए विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति धारित किए हुए था और अभिलेख पर यह साबित करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि वह दुर्घटना के समय प्रभावी विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारित करने से निरर्हित था । उन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने यह**

अभिनिर्धारित किया कि पालिसी विनिर्दिष्टि पृष्ठांकन अभिप्राप्त कर परिवहन यान चलाने के लिए चालक से अनुज्ञप्ति रखने पर बल नहीं देती । अधिनियम की धारा 2 के खंड (21) के अनुसार 'हल्के मोटर यान' की परिभाषा पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा हल्का मोटर यान (एलएमवी) का अभिप्राय हमेशा हल्का माल वाहन नहीं हो सकता । हल्का मोटर यान (एलएमवी) गैर परिवहन यान भी हो सकता है । न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया कि क्योंकि न तो यह अभिवचन है न ही अभिलेख पर कोई परमिट पेश किया गया है इसलिए यान हल्का मोटर यान बना रहा और यद्यपि यह कहा जा सकता है कि यह परिवहन यान या माल वाहन के रूप में उपयोग किए जाने के लिए बनाया गया है फिर भी यह परिवहन यान होने के लिए अधिनियम की धारा 66 में कानूनी प्रतिषेध के कारण ऐसा अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि आयोग का दावाकर्ता का दावा खारिज करना सही नहीं था । तदनुसार, यह न्यायालय आयोग द्वारा पारित आदेश को अपास्त करता है और बीमा कंपनी को परिवादी को प्रतिकर देने का निदेश देता है ।

40. निःसंदेह यह सही है कि इस तथ्य के बावजूद कि चालक के पास हल्का मोटर यान (एलएमवी) चलाने का विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति था, अशोक गंगाधर (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने दावा को कायम रखा और बीमा कंपनी को प्रतिकर देने का आदेश दिया । किंतु हमारी विचारित राय में, बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल का यह निवेदन करना सही है कि यह इस तथ्य के कारण था कि वहां परिवहन प्राधिकारी द्वारा जारी परमिट के बारे में न तो कोई सबूत था और न ही ऐसा कोई अभिवचन था । अभिवचन और सबूत के अभाव में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह नहीं कहा जा सकता कि चालक के पास ऐसा यान चलाने की विधिमान्य अनुज्ञप्ति नहीं थी जिसकी दुर्घटना हुई और उसे प्रतिकर से वंचित नहीं किया जा सकता । यह स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति निर्णय के पैरा 11 को पढ़े जो इस प्रकार है –

> '11. दोहराते हुए, *चूंकि किसी यान का उपयोग तब तक सार्वजनिक सड़क पर परिवहन यान के रूप में नहीं किया जा सकता जब तक उस प्रयोजन के लिए क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकारी द्वारा जारी परमिट न हो और चूंकि इस मामले में किसी पक्षकार द्वारा इस आशय का कोई अभिवचन नहीं है न*

ही अभिलेख पर कोई परमिट है अतः प्रश्नगत यान हल्का मोटर यान बना रहता है । **प्रत्यर्थी का भी यह कथन नहीं है कि अपीलार्थी को अधिनियम की धारा 66 के अधीन परिवहन यान के रूप में यान चलाने की परमिट दी गई थी । तथापि, दुर्घटना की तारीख को यान में कोई भी माल नहीं ले जाया जा रहा था और यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि इसे परिवहन यान या माल वाहक के रूप में उपयोग किए जाने के लिए परिकल्पित किया गया है अतः यह अधिनियम की धारा 66 के कानूनी प्रतिषेध के कारण ऐसा नहीं ठहराया जा सकता ।'**

(बल देने के लिए शब्दों को तिरछा किया गया है)

41. हमारे विवेकानुसार, अशोक गंगाधर **(उपरोक्त) वाले मामले में यह अधिकथित नहीं किया गया था कि हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति रखने वाले चालक को परिवहन यान चलाने का पृष्ठांकन रखने की आवश्यकता नहीं है और फिर भी वह ऐसा यान चला सकता है । यह मामले के विशिष्ट तथ्यों पर था क्योंकि परिवहन प्राधिकारी द्वारा जारी परमिट को अभिलेख पर रखकर बीमा कंपनी ने न तो यह अभिवचन किया था न ही साबित किया कि यान परिवहन यान था और यह कि बीमा कंपनी को दायी ठहराया गया ।**

42. इस मामले में, सभी तथ्य जिला फोरम के समक्ष थे । उसने सुसंगत दस्तावेजी साक्ष्य के आलोक में परिवादी के प्राख्यान और बीमा कंपनी के बचाव पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि यह स्थापित किया गया था कि ऐसा यान जो दुर्घटनाग्रस्त हुआ, 'परिवहन यान' था । राम नारायण के पास केवल हल्का मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति थी और नियमों के नियम 16 और प्ररूप 6 के साथ पठित अधिनियम की धारा 3 द्वारा यथापेक्षित कोई पृष्ठांकन नहीं था । अभिलेख पर आवश्यक दस्तावेजों को ध्यान में रखते हुए, बीमा कंपनी का यह निवेदन करना उचित था कि अशोक गंगाधर **(उपरोक्त) वाला मामला वर्तमान मामले को लागू नहीं होता और बीमा कंपनी दायी नहीं थी ।"**

27. **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **रोशनबेन रहेमानसा फकीर और एक अन्य**[1] वाले मामले में चालक तिपहिया चलाने की अनुज्ञप्ति का धारक था । इस न्यायालय ने यह ध्यान दिया कि अनुज्ञप्ति

[1] (2008) 8 एस. सी. सी. 253.

का आशय परिवहन यान चलाने का उपयोग करने के लिए नहीं था । अंतर्वलित यान आटोरिक्शा परिदान गाड़ी थी और एक माल वाहन था । यह दलील दी गई कि यान का चालक वैध और विधिमान्य अनुज्ञप्ति का धारक नहीं था । प्रश्न यह उठा कि क्या चालक के पास परिवहन यान चलाने की अनुज्ञप्ति थी । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि :–

"10. अधिनियम की धारा 10 में चालन अनुज्ञप्ति के वर्गों का उपबंध है । यान के विभिन्न वर्गों को मोटर यान अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों में परिभाषित किया गया है । 'परिवहन यान' को अधिनियम की धारा 2(47) में परिभाषित किया गया है जिसका अभिप्राय सार्वजनिक सेवा यान, माल वाहन, शैक्षिक संस्था बस या प्राइवेट सेवा यान है । इसके पहले हमने धारा 41 की उपधारा (4) के उपबंधों का उल्लेख किया है । हमने इस बाबत केंद्रीय सरकार द्वारा जारी अधिसूचना का भी उल्लेख किया है । उक्त अधिसूचना स्पष्टतः यह अभिधारित करती है कि यात्री या माल के परिवहन के लिए तिपहिया यान उससे उपाबद्ध सारणी के वर्ग 5 के परिधि के भीतर आता है । उक्त सलीम अहमद भाई के पक्ष में मंजूर अनुज्ञप्ति यह दर्शित करती है कि यह परिवहन यान से भिन्न यान के लिए मंजूर की गई थी । यह 13 मई, 2004 से 12 मई, 2024 तक विधिमान्य थी । धारा 14(2)(क) में यह उपबंध है कि अधिनियम के अधीन जारी या नवीकृत चालन अनुज्ञप्ति परिवहन यान चलाने की अनुज्ञप्ति की दशा में तीन वर्ष की अवधि के लिए प्रभावी होगी जबकि किसी अन्य यान की दशा में यह जारी किए जाने या नवीकृत करने की तारीख से 20 वर्ष की अवधि के लिए जारी या नवीकृत की जा सकती है । इस प्रकार, यह तथ्य कि अनुज्ञप्ति 20 वर्ष की अवधि के लिए मंजूर की गई थी, स्पष्टतः यह दर्शित करता है कि सलीम अहमद भाई, यान के चालक को परिवहन यान चलाने के लिए एक विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति मंजूर की गई थी ।

* * * *

13. उपरोक्त की गई चर्चा से यह स्पष्ट है कि यान के चालक के पास कोई प्रभावी अनुज्ञप्ति नहीं थी । प्रभावी अनुज्ञप्ति रखना मोटर यान अधिनियम की धारा 10 के निबंधनानुसार आवश्यक है ।"

28. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया** उर्फ **नेसर्गी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की न्यायपीठ ने ऐसी दुर्घटना की बाबत प्रश्न पर विचार किया जो 9 दिसंबर, 1999 को घटित हुई जिसमें मेटाडोर वैन, एक "माल वाहन" यान अंतर्वलित था । चालक के पास हल्का मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति थी । इस न्यायालय के समक्ष यह निवेदन किया गया कि "हल्का मोटर यान" परिवहन यान नहीं हो सकता । प्ररूप 4 और 6 को भी 1989 नियम के नियम 14 और 16 के साथ निर्दिष्ट किया गया था । प्ररूप 4 जैसा यह 28 मार्च, 2001 से संशोधित किया गया है, को निर्दिष्ट करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि परिवहन यान के स्थान पर "मध्यम माल यान" और "भारी माल यान" रखा गया है और सुसंगत समय पर "हल्का यात्री वाहन यान" और "हल्का माल वाहन यान" दोनों को समाविष्ट किया गया । ऐसा चालक जिसके पास हल्का मोटर यान चलाने की विधिमान्य अनुज्ञप्ति थी, हल्का माल यान भी चलाने के लिए प्राधिकृत था । इस न्यायालय ने इस प्रकार अधिकथित किया :–

> **"20. इसमें इसके पूर्व जो उल्लेख किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि 'परिवहन यान' के स्थान पर अब 'मध्यम माल यान' और 'भारी माल यान' रखा गया है । 'हल्का यात्री वाहन यान' और 'हल्का माल वाहन यान' दोनों को समाविष्ट करने के लिए सुसंगत समय पर 'हल्का मोटर यान' शब्द प्रयोग किए जाते थे । इसलिए, ऐसा चालक जिसके पास हल्का मोटर यान चलाने की विद्यमान अनुज्ञप्ति थी, हल्का माल यान चलाने के लिए भी प्राधिकृत था ।**
>
> **21. भविष्यलक्षी प्रवर्तन वाले नियमों में किए गए संशोधनों के कारण प्रश्नगत यान के चालक द्वारा धारित अनुज्ञप्ति को विधि की दृष्टि से अविधिमान्य नहीं कहा जा सकता ।"**

29. इस प्रकार, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि वर्ष 2001 में प्ररूप में किए गए संशोधन के पूर्व "हल्का मोटर यान" चलाने की अनुज्ञप्ति रखने वाला व्यक्ति "हल्का यात्री वाहन यान" और "हल्का माल वाहन यान" भी चला सकता है ।

30. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अंगद कोल और**

---

[1] (2008) 3 एस. सी. सी. 464.

अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अनप्पा इरप्पा नेसारिया** (उपरोक्त) और **प्रभूलाल** (उपरोक्त) वाले मामलों के विनिश्चय पर विचार किया । उक्त मामले में दुर्घटना 31 अक्तूबर, 2004 को घटी थी । मिनी डोर आटो बीमाकृत वाहन से टकरा गई थी । प्रश्न यह उद्भूत हुआ कि क्या चालक के पास "माल वाहन यान" चलाने की प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । चालक के पास मोटरसाइकिल और हल्का मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति थी । अनुज्ञप्ति 20 वर्ष की अवधि के लिए दी गई थी । अतः इस न्यायालय ने यह उपधारित किया कि यह परिवहन यान से भिन्न यान चलाने के प्रयोजन के लिए थी । इस न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> **"21. अनुज्ञप्ति 20 वर्ष की अवधि के लिए दी गई थी अतः यह उपधारणा उद्भूत होती है कि यह परिवहन यान से भिन्न यान के प्रयोजन के लिए थी । यदि चालन अनुज्ञप्ति परिवहन यान के लिए मंजूर की गई होती तो उसकी अवधि तीन वर्ष से अधिक नहीं होती ।"**

31. इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि परिवहन यान चलाने की अनुज्ञप्ति की मंजूरी 28 मार्च, 2001 अर्थात् उस तारीख जिसको प्ररूप का संशोधन किया गया से प्रभावी होती है और यह अभिनिर्धारित किया कि यान एक "माल यान" था इस प्रकार चालक के पास "माल यान" चलाने के लिए विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी ।

32. **एस. अय्यिपन** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने **अशोक गंगाधर** (उपरोक्त), **अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया** (उपरोक्त), **प्रभूलाल** (उपरोक्त) वाले मामलों के विनिश्चयों और अन्य विनिश्चयों पर विचार किया और इस प्रकार अधिकथित किया :–

> **"18. इस मामले में, स्वीकार्यतः चालक के पास हल्का मोटर यान चलाने की विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी । यह विवादित नहीं है कि प्रश्नगत मोटर यान जिसके द्वारा दुर्घटना घटी, महिन्द्रा मैक्सी कैब था । मात्र इस कारण कि चालक ने महिन्द्रा मैक्सी कैब, जो हल्का मोटर यान है को चलाने के लिए चालन अनुज्ञप्ति में कोई पृष्ठांकन प्राप्त नहीं किया, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में विधि की घोर त्रुटि की कि बीमाकर्ता प्रतिकर देने का दायी नहीं**

---

[1] (2009) 11 एस. सी. सी. 356.

[2] (2013) 7 एस. सी. सी. 62.

है क्योंकि चालक के पास वाणिज्यिक यान चलाने की अनुज्ञप्ति नहीं थी । अतः, आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है ।"

33. इस न्यायालय ने **कुलवंत सिंह और अन्य** बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[1] वाले मामले में, **एस. अय्यिपन** (उपरोक्त) और **अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों को निर्दिष्ट करते हुए अधिकथित किया कि जब कोई चालक हल्का मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति धारित करता है तो वह उस प्रवर्ग का वाणिज्यिक यान चला सकता है । इस न्यायालय ने प्रश्न पर इस प्रकार विचार किया :–

"8. हम यह पाते हैं कि अवलंबित निर्णय अपीलार्थियों के पक्ष में मुद्दे का समर्थन करते हैं । अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया **[(2008) 3 एस. सी. सी. 464] वाले मामले में इस न्यायालय ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 2(21) और (23) के उपबंधों को निर्दिष्ट किया जो क्रमशः 'हल्का मोटर यान' और 'मध्यम माल यान' की परिभाषाएं हैं और नियम अनुज्ञप्ति के प्ररूप हैं जो नियम 14 और प्ररूप 4 है । यह निष्कर्ष निकाला गया है –**

> **'20. इसमें इसके पूर्व जो उल्लेख किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि 'परिवहन यान' के स्थान पर अब 'मध्यम माल यान' और 'भारी मालयान' रखा गया है । 'हल्का यात्री वाहन यान' और 'हल्का माल वाहन यान' दोनों को समाविष्ट करने के लिए सुसंगत समय पर हल्का मोटर यान शब्द प्रयोग किए जाते थे । इसलिए, ऐसा चालक जिसके पास हल्का मोटर यान चलाने की विद्यमान अनुज्ञप्ति थी, हल्का माल यान चलाने के लिए भी प्राधिकृत था ।'**

9. एस. अय्यिपन **[(2013) 7 एस. सी. सी. 62] वाले मामले में प्रश्न यह था कि क्या ऐसा चालक जिसके पास 'हल्का मोटर यान' चलाने की अनुज्ञप्ति हो, वाणिज्यिक यान के रूप में प्रयुक्त 'हल्का मोटर यान' वाणिज्यिक यान चलाने का पृष्ठांकन अभिप्राप्त किए बिना चला सकता है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसे मामले में बीमा कंपनी अपने दायित्व से इनकार नहीं कर सकती । यह मत व्यक्त किया गया :–**

> **'18. इस मामले में, स्वीकार्यतः चालक के पास हल्का मोटर यान चलाने की विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी । यह**

---

[1] (2015) 2 एस. सी. सी. 186.

विवादित नहीं है कि प्रश्नगत मोटर यान जिसके द्वारा दुर्घटना घटी, महिन्द्रा मैक्सी कैब था । मात्र इस कारण कि चालक ने महिन्द्रा मैक्सी कैब, जो हल्का मोटर यान है को चलाने के लिए चालन अनुज्ञप्ति में कोई पृष्ठांकन प्राप्त नहीं किया, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में विधि की घोर त्रुटि की कि बीमाकर्ता प्रतिकर देने का दायी नहीं है क्योंकि चालक के पास वाणिज्यिक यान चलाने की अनुज्ञप्ति नहीं थी । अतः, आक्षेपित निर्णय [2002 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1016, आदेश तारीख 31 अक्तूबर, 2008 (मद्रास)] अपास्त किए जाने योग्य है ।'

10. हमारे ध्यान में कोई प्रतिकूल मत नहीं लाया गया ।

11. तदनुसार हमारा यह मत है कि इस मामले में बीमा कंपनी को वसूली करने के लिए हकदार बनाने वाले अधिकारों के संदर्भ में बीमा पालिसी की किसी शर्त का भंग नहीं हुआ था ।"

34. **नागासेट्टी** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ट्रैक्टर का उपयोग माल ढोने के लिए किया जाएगा । माल इससे जुड़े ट्रेलर में ले जाया जाएगा । इस प्रकार, यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति रखने वाला धारक ट्रैक्टर चला सकता है यदि माल ढोने के लिए उपयोग किया जा रहा हो । वह ट्रैक्टर चलाने के लिए निरर्हित नहीं हो जाएगा यदि उसके साथ ट्रेलर जुड़ा हो । यह दलील कि यह परिवहन यान था क्योंकि इसके साथ ट्रेलर जुड़ा था, परिणामतः चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति नहीं थी, खारिज कर दी गई । इस न्यायालय ने निवेदन पर विचार किया और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"9. इन परिभाषाओं का अवलंब लेते हुए, श्री एस. सी. शारदा ने यह निवेदन किया कि स्वीकार्यतः ट्रेलर पत्थरों से भरा था । उन्होंने यह निवेदन किया कि ट्रैक्टर के साथ ट्रेलर के जुड़ जाने पर ट्रैक्टर परिवहन यान हो जाता है क्योंकि इसका उपयोग माल के वहन के लिए किया गया । उन्होंने यह निवेदन किया कि मोटर यान अधिनियम की धारा 10(2) विशिष्ट प्रकार के यानों को चलाने की अनुज्ञप्ति की मंजूरी के बारे में है । उन्होंने निवेदन किया कि चालक

[1] (2001) 8 एस. सी. सी. 56.

के पास केवल ट्रैक्टर चलाने की अनुज्ञप्ति थी । उन्होंने यह निवेदन किया कि चालक के पास परिवहन यान चलाने की अनुज्ञप्ति नहीं थी । उन्होंने निवेदन किया कि इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि चालक के पास माल वाहन या परिवहन यान चलाने की प्रभावी और विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी । उन्होंने निवेदन किया कि इस प्रकार चालक के पास ऐसे प्रकार के यान के चलाने की विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी जो वह चला रहा था । उन्होंने निवेदन किया कि क्योंकि चालक के पास परिवहन यान चलाने की विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी इसलिए बीमा कंपनी को दायी नहीं बनाया जा सकता । उन्होंने निवेदन किया कि उच्च न्यायालय का ऐसा करना उचित था ।

10. हम श्री एस. सी. शारदा के निवेदनों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं । यह स्वीकृत तथ्य है कि चालक के पास ट्रैक्टर चलाने की विधिमान्य और प्रभावी अनुज्ञप्ति थी । निःसंदेह धारा **10** के अधीन, अनुज्ञप्ति मोटर यान के विनिर्दिष्ट प्रवर्गों को चलाने के लिए दी जाती है । प्रश्न यह है कि क्या मात्र इस कारण कि ट्रैक्टर के साथ ट्रेलर जुड़ा था और ट्रैक्टर का उपयोग माल ले जाने के लिए किया जा रहा था, ट्रैक्टर चलाने की अनुज्ञप्ति अप्रभावी हो जाती है । यदि श्री एस. सी. शारदा के तर्क को स्वीकार किया जाए तो प्रत्येक समय प्राइवेट कार का स्वामी जिसके पास हल्का मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति है, अपने कार पर छत वाहक लगाता है या अपने कार के साथ ट्रेलर लगाता है और उस पर माल ले जाता है, हल्का मोटर यान परिवहन यान हो जाएगा और स्वामी को उस यान को चलाने की कोई अनुज्ञप्ति न रखने वाला समझा जाएगा । इसका बेतुका परिणाम होगा । मात्र इस कारण स्वयं ट्रैक्टर में या मोटर यान में ट्रेलर के जोड़े जाने से उस ट्रैक्टर या मोटर यान को परिवहन यान नहीं बनाता । ट्रैक्टर या मोटर यान, ट्रैक्टर या मोटर यान ही रहता है । यदि किसी व्यक्ति के पास ट्रैक्टर या मोटर यान चलाने की विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति है तो वह उस ट्रैक्टर या मोटर यान को चलाने की विधिमान्य अनुज्ञप्ति रखने वाला बना रहता है चाहे उसके साथ ट्रेलर जुड़ा हो और उस पर कुछ माल ले जाया जा रहा हो । दूसरे शब्दों में किसी विशिष्ट प्रवर्ग के यान को चलाने की विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति रखने वाला व्यक्ति मात्र इस कारण कि उस यान के साथ ट्रेलर जुड़ा है, उस यान को चलाने के लिए असमर्थ नहीं

हो जाता ।

11. इस मामले में हम यह पाते हैं कि बीमा कंपनी ने जब बीमा पालिसी जारी की थी तो भी ऐसा ही सोचा था । बीमा पालिसी ट्रैक्टर के लिए जारी की गई है । इस बीमा पालिसी में 12/- रुपए की अतिरिक्त प्रीमियम ट्रेलर के लिए ली गई है । अतः, बीमा पालिसी न केवल ट्रैक्टर बल्कि ट्रैक्टर के साथ जुड़े ट्रेलर को भी समाविष्ट करती है । बीमा पालिसी 'चलाने के लिए हकदार व्यक्तियों या व्यक्तियों का वर्ग' के लिए इस प्रकार उपबंध करती है –

> 'चलाने के लिए हकदार व्यक्तियों या व्यक्तियों का वर्ग – बीमाकृत सहित कोई व्यक्ति बशर्ते चलाने वाले व्यक्ति के पास दुर्घटना के समय प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति है और ऐसा अनुज्ञप्ति धारण करने या अभिप्राप्त करने से निरर्हित नहीं है :
>
> परंतु यह भी कि प्रभावी शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति धारित करने वाला व्यक्ति भी यान चला सकेगा जब दुर्घटना के समय माल के परिवहन के लिए उपयोग न किया गया हो और ऐसा व्यक्ति उपयोग करने की सीमाओं के भीतर केंद्रीय मोटर यान नियम 1989 के नियम 3 की अपेक्षाओं को पूरा करता है ।'

12. पालिसी ट्रैक्टर के लिए है । अतः, 'प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति' ट्रैक्टर के लिए है । ट्रैक्टर का जब माल के परिवहन के लिए उपयोग किया जाता है, शिक्षार्थी चालन पर निर्बंधन यह दर्शित करता है कि स्वयं पालिसी में यह अनुध्यात है कि ट्रैक्टर का उपयोग माल के वाहन के लिए किया जा सकता है । स्वयं ट्रैक्टर माल नहीं ढो सकता । माल का वहन इससे संलग्न ट्रेलर में किया जाता है । इसलिए ही ट्रेलर के लिए अतिरिक्त प्रीमियम है । शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति धारित करने वाले व्यक्ति पर अर्थात् तब न चलाएं जब माल ढोया जा रहा हो का निर्बंधन स्थायी अनुज्ञप्तिधारक के लिए नहीं है । इस प्रकार ट्रैक्टर चलाने के लिए प्रभावी/विधिमान्य अनुज्ञप्ति रखने वाला स्थायी अनुज्ञप्तिधारक उस समय भी ट्रैक्टर चला सकता है जब ट्रैक्टर का उपयोग माल ढोने के लिए किया जा रहा है । जब स्वयं पालिसी में इस प्रकार की अनुज्ञा है तो उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष निकालना गलत है कि ट्रैक्टर चलाने के लिए विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति रखने वाला व्यक्ति उस समय ट्रैक्टर चलाने के लिए निरर्हित हो जाएगा यदि ट्रैक्टर के साथ ट्रेलर जुड़ा है ।"

35. धारा 2(47) में यथा परिभाषित "परिवहन यान" का अभिप्राय सार्वजनिक सेवा यान, माल वाहन, शैक्षिक संस्था बस या प्राइवेट सेवा यान से है । सार्वजनिक यान को धारा 2(35) में परिभाषित किया गया है जिसका अभिप्राय भाड़े या प्रतिफल के लिए यात्रियों के वाहन हेतु प्रयुक्त या प्रयुक्त किए जाने के लिए अनुकूलित किसी मोटर यान से है और इसके अंतर्गत मैक्सी कैब, मोटर कैब, संविदा वाहन और बहुमंजिली यान है । "माल वाहन" जो एक परिवहन यान भी है को धारा 2(14) में परिभाषित किया गया है जिसका अभिप्राय केवल माल के वाहन के उपयोग के लिए संनिर्मित या अनुकूलित कोई मोटर यान या माल के वाहन के उपयोग के लिए इस प्रकार संनिर्मित या अनुकूलित न होते हुए किसी मोटर यान से है । यह निवेदन किया गया कि हल्का मोटर यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति धारक व्यक्ति जो प्राइवेट उपयोग के लिए रजिस्ट्रीकृत यान चला रहा है, उसी प्रकार का यान चला रहा है जो भाड़े या प्रतिफल के लिए यात्री ले जाने के प्रयोजन के लिए रजिस्ट्रीकृत या बीमाकृत है, में "परिवहन यान" चलाने के लिए पृष्ठांकन की अपेक्षा होगी, यह अधिनियम के उपबंधों द्वारा अनुध्यात नहीं है । ऐसे अनेक यान हैं जिनका उपयोग भाड़े या प्रतिफल पर यात्रियों को लाने या ले जाने के लिए और प्राइवेट उपयोग के लिए किया जा सकता है । यह भी निवेदन किया गया कि ऐसा चालक जो प्राइवेट उपयोग के लिए यान चलाने के लिए सक्षम है, वैसा ही यान चलाने का हकदार होगा यदि उसका उपयोग भाड़े या प्रतिफल पर या उक्त यान में माल लाने या ले जाने के लिए किया जाता है । यह भी निवेदन किया गया कि संशोधन अधिनियम सं. 54/1994 द्वारा प्रक्रिया को सरल बनाने न कि इसे जटिल बनाने और हल्के मोटर यान की अनुज्ञप्ति को अविधिमान्य बनाने के लिए किया गया और इसके धारक अधिनियम की धारा 2(21) में विनिर्दिष्ट भार के परिवहन यान चला सकते हैं ।

36. आगे यह निवेदन किया गया कि "यानों के वर्ग" और "यानों के प्रकार" में अंतर है और हल्के मोटर यान प्रवर्ग के परिवहन यान चलाने के लिए पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक नहीं है जब व्यक्ति यान के उसी वर्ग अर्थात् हल्के मोटर यान को चलाने के लिए 1994 के संशोधन अधिनियम सं. 54 और 2001 में यथा संशोधित प्ररूप 4 और 6 के अनुसार सक्षम हैं ।

37. यह भी निवेदन किया गया कि इस न्यायालय ने **अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि 2001 में प्ररूपों के अंतःस्थापन के पूर्व "हल्के मोटर यान" की अनुज्ञप्ति का धारक

परिवहन यान भी चलाने के लिए सक्षम था । आगे यह भी निवेदन किया गया कि धारा 10(2)(घ) में अंतर्विष्ट उपबंधों में प्ररूपों के अंतःस्थापन द्वारा कोई परिवर्तन नहीं किया गया ।

38. यह भी निवेदन किया गया कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 3 आरंभ से ही परिवहन यान का उपबंध करती है । तथापि, धारा 10(2) में विनिर्दिष्ट यानों का वर्ग हल्का मोटर यान, मध्यम माल और यात्री मोटर यान और भारी माल और यात्री यान थे । वर्ष 1994 में लाए गए परिवर्तन द्वारा मध्यम और भारी माल और यात्री यान के स्थान पर परिवहन यान रखा गया और **अशोक गंगाधर** (उपरोक्त), **अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया** (उपरोक्त) और **कुलवंत सिंह** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, हल्का मोटर यान अनुज्ञप्ति धारक व्यक्ति परिवहन यान चलाने के लिए सक्षम था । धारा 10(2)(घ) में "हल्का मोटर यान" के उपबंध यथावत बने हुए हैं । यह संशोधित नहीं किया गया है । यह भी निवेदन किया गया कि ऐसे प्ररूप जिन्हें संशोधित किया गया है अधिनियम के उपबंध के निर्वचन को लागू नहीं होंगे; जबकि 2007 में अंतःस्थापित नियम 8 का आशय उस प्रकार के यान को जोड़ना था । 2007 के नियम 8 के अंतःस्थापन का जो प्रभाव और प्रयोजन था, पर विचार नहीं किया । प्ररूप का निर्वचन अधिनियम और नियमों के उपबंधों के अनुसार किया जाना चाहिए । अधिनियम के उद्देश्य और संशोधन अधिनियम सं. 54/1994 पर किसी भी विनिश्चय में विचार नहीं किया गया और "हल्के मोटर यान", के लिए विहित भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रम के प्रभाव को भारी और मध्यम यान के लिए भी विचार नहीं किया गया है ।

39. **अशोक गंगाधर मराठा**, (उपरोक्त), **एस. अय्यिपन** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी** (उपरोक्त), **कुलवंत सिंह और अन्य** बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त) और **नागासेट्टी** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामलों में यह मत व्यक्त किया गया है कि जब चालक हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति रखता है तो वह उस प्रवर्ग के परिवहन यान चलाने के लिए सक्षम है ; जबकि **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रभूलाल** (उपरोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि वर्ष 2001 के पूर्व भी हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति रखने वाले चालक के लिए उस प्रवर्ग के परिवहन यान चलाने के लिए पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक था ; जबकि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अन्नप्पा इरप्पा नेसारिया** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह

अधिकथित किया कि 28 मार्च, 2001 के पूर्व हल्के मोटर यान चलाने की अनुज्ञप्ति धारक को परिवहन यान चलाने का पृष्ठांकन लेना आवश्यक नहीं था ; जबकि **न्यू इंडिया एश्योरेंस कपनी लिमिटेड** बनाम **रोशन बेन रहेमानसा फकीर और अन्य** (उपरोक्त) और **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **अंगद कोल और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामलों में यह मत व्यक्त किया गया कि धारा 2(41) में यथा उपबंधित हल्के मोटर यान भार के परिवहन यान चलाने के लिए हल्के मोटर यान अनुज्ञप्ति के धारक को अनुज्ञप्ति पर विनिर्दिष्ट पृष्ठांकन अभिप्राप्त करना आवश्यक है ।

इस प्रकार पूर्व संशोधित स्थिति और वर्ष 2001 में प्ररूपों में संशोधन किए जाने के पश्चात् भी इन न्यायालयों के विनिश्चयों में विरोधाभास प्रकट होता है । पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित प्रश्नों को वृहत्तर न्यायपीठ को विनिर्दिष्ट किया जाना अपेक्षित है :–

1. मोटर यान अधिनियम की धारा 2(21) में यथा परिभाषित 'हल्का मोटर यान' की परिभाषा का क्या अर्थ लाया जाए ?

क्या परिवहन यान को इससे अपवर्जित किया जाए ?

2. क्या 'परिवहन यान' और 'ओमनी बस' जिसका 'सकल यान भार' 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है, 'हल्का मोटर यान होगा' और मोटरकार या ट्रैक्टर या रोड रोलर जिसका 'लदानरहित भार' 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है और धारा 10(2)(घ) में यथा उपबंधित 'हल्के मोटर यान' के वर्ग को चलाने की अनुज्ञप्ति धारक परिवहन यान या ओमनी बस, जिसका 'सकल यान भार' 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है या मोटरकार या ट्रैक्टर या रोड रोलर जिसका 'लदानरहित भार' 7500 किलोग्राम से अधिक नहीं है, चलाने के लिए सक्षम होगा ?

3. धारा 10(2) के खंड (ङ) से (ज) जिसमें 'मध्यम माल यान', 'मध्यम यात्री मोटर यान', 'भारी माल यान' और 'भारी यात्री मोटर यान' के स्थान पर 'परिवहन यान' प्रतिस्थापित करने से तारीख 14 नवंबर, 1994 से 1994 के अधिनियम सं. 54 के आधार पर किए गए संशोधन का क्या प्रभाव है ? क्या धारा 10(2)(ङ) के अधीन 'परिवहन यान' पद का अंतःस्थापन केवल उक्त प्रतिस्थापित वर्गों से ही संबंधित है या यह अधिनियम की धारा 10(2)(घ) और 2(41) की परिधि से हल्के मोटर यान वर्ग के परिवहन यान को अपवर्जित करने के लिए भी है ?

4. वर्ष 1994 में यथा संशोधित धारा 10 के उपबंधों के प्रवर्तन के संबंध में प्ररूप 4 की संशोधन का क्या प्रभाव है और क्या 'हल्के मोटर यान' के वर्ग के परिवहन यान के लिए चालन अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त करने की प्रक्रिया में परिवर्तन किया गया है ?

40. इस न्यायालय की भिन्न-भिन्न न्यायपीठों द्वारा व्यक्त मतों में विरोध को दूर करने के लिए मामलों को भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष वृहत्तर न्यायपीठ गठित करने के लिए रखा जाए ।

मामला निर्दिष्ट किया गया ।

पा.

[2016] 3 उम. नि. प. 139

अनन्त प्रकाश सिन्हा उर्फ **अनन्त सिन्हा**

बनाम

हरियाणा राज्य

4 मार्च, 2016

न्यायमूर्ति दीपक मिश्र और न्यायमूर्ति शिवकीर्ति सिंह

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 216 – आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करने की न्यायालय की शक्ति – पहले से प्रस्तुत साक्ष्य और पश्चात्वर्ती साक्ष्य – विरचित आरोप में त्रुटि या खामी दिखाई देने पर विचारण न्यायालय शिकायत, संबंधित दस्तावेजों के आधार पर किसी भी समय निर्णय दिए जाने के पूर्व विरचित आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है और ऐसा करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि विचारण के दौरान कोई पश्चात्वर्ती साक्ष्य ही प्रस्तुत किया जाए ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 216 – विरचित आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन और अभियुक्त पर उससे पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव – विचारण न्यायालय ने यह सुनिश्चित किया है कि विरचित आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन से अभियुक्त पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है और उसे निष्पक्ष विचारण के लिए अनुज्ञात किया गया है, ऐसी स्थिति में विचारण न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

इस मामले में अपीलार्थी (पति) और उसकी माता के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 498क और 323 के अधीन प्रत्यर्थी 2 (पत्नी) द्वारा क्रूरता का मामला दर्ज कराया गया था अन्वेषण अधिकरण ने केवल पति के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया वह भी केवल धारा 498क के अधीन । विचारण न्यायालय (मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी) ने केवल अपीलार्थी पति के विरुद्ध क्रूरता के अपराध के लिए आरोप विरचित किया । इस कार्यवाही से व्यथित होकर, पत्नी ने मजिस्ट्रेट के ही समक्ष आवेदन फाइल किया जिसमें अपीलार्थी पति और उसकी माता के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 406 और 120ख के अधीन आरोप विरचित किए जाने की प्रार्थना की । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस आवेदन को भागतः मंजूर करते हुए आरोप में परिवर्तन किया और अपीलार्थी तथा उसकी माता को धारा 406 के अधीन भी आरोपित किया किंतु धारा 120ख के अधीन कोई भी आरोप किसी भी अभियुक्त के विरुद्ध विरचित नहीं किया । इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने अपर सेशन न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । अपर सेशन न्यायालय ने इस आवेदन को भागतः मंजूर करते हुए आरोप में परिवर्तन किया और अपीलार्थी की माता को सभी आरोपों से निर्मुक्त किया किंतु अपीलार्थी पर दंड संहिता की धारा 406 के अधीन विरचित आरोप को ठीक बताया । अपर सेशन न्यायाधीश के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को उचित ठहराते हुए विरचित आरोप में कोई भी हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय आरोप में परिवर्तन कर सकता है यदि उसमें कोई त्रुटि या खामी दिखाई देती है । इसकी कसौटी यह है कि आरोप में किया गया परिवर्तन अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर होना चाहिए । यह परिवर्तन शिकायत या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या संबंधित दस्तावेजों या अभिलेख पर विचारण के दौरान प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर किया जा सकता है । आरोप में परिवर्तन निर्णय दिए जाने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है । यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक परिस्थिति का अवलंब लिया जाए । इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यदि न्यायालय ने अभिलेख पर सामग्री उपलब्ध होने के बावजूद आरोप विरचित नहीं किया है तब ऐसी स्थिति में आरोप में परिवर्धन करने की न्यायालय

को अधिकारिता होगी । इसी प्रकार, न्यायालय को आरोप में परिवर्तन करने का भी प्राधिकार प्राप्त है । यह सिद्धांत ध्यान में रखना चाहिए कि मजिस्ट्रेट द्वारा विरचित किया गया आरोप उसके समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री या अभिलेख पर तत्पश्चात् प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के अनुसरण में होना चाहिए । यह नहीं समझना चाहिए कि जब तक कि पश्चात्वर्ती साक्ष्य प्रस्तुत न कर दिया जाए, तब तक पहले से विरचित किए गए आरोप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन यह तात्पर्यित नहीं है । (पैरा 16)

न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि अभियुक्त पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ रहा है और अभियुक्त को निष्पक्ष विचारण के लिए अनुज्ञात किया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन सुरक्षापायों का उल्लेख किया गया है । विचारण न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह इस बात पर ध्यान दे कि अभियुक्त पर ऐसा कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है जिससे निष्पक्ष विचारण प्रभावित होता हो । वर्तमान मामला ऐसे विचारण या ऐसी कार्यवाही से संबंधित नहीं है जिसके द्वारा कोई प्राइवेट अधिवक्ता कार्यवाहियों का नियंत्रण अपने हाथ में ले सके । जैसाकि स्पष्ट है, इत्तिलाकर्ता द्वारा, दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अपराध के लिए आरोप का परिवर्धन करने के लिए आवेदन फाइल किया गया था क्योंकि पति के विरुद्ध स्त्रीधन को लेकर न्यासभंग के संबंध में अभिकथन किए गए थे । विद्वान् मजिस्ट्रेट की जानकारी में, किसी भी प्रकार से आरोप विरचित किए जाने में आई कमी को लाया गया था । न्यायालय स्वयमेव ऐसा कर सकता था । ऐसी स्थिति में, हमें ऐसे आवेदन पर विचार करने के लिए विद्वान् मजिस्ट्रेट की कोई गलती दिखाई नहीं देती है । यह कहा जा सकता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने सामग्रियों पर विचार किया है और प्रथमदृष्ट्या अपना समाधान अभिलिखित किया है । उक्त प्रथमदृष्ट्या मत में कोई भी त्रुटि दिखाई नहीं देती है । न्यायालय को पुनरीक्षण आवेदन में किए गए उस आदेश में कोई भी त्रुटि दिखाई नहीं देती है जिसके द्वारा न्यायालय ने सास के विरुद्ध विरचित आरोप को अपास्त किया था । (पैरा 17 और 20)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 9 एस. सी. सी. 650 : **भीमन्ना** बनाम **कर्नाटक राज्य** ।	17

निर्दिष्ट निर्णय

2015 का सी. आर. आर. 657
(पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय) :
पूनम और एक अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 6

[2014] 2014 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. एम.-1044
में तारीख 7 मार्च 2014 का आदेश :
अनंत सिन्हा बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य** ; 6

[2014] (2014) 11 एस. सी. सी. 538 :
केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम **करीमुल्लाह ओसान खान** ; 4, 13

[2013] (2013) 7 एस. सी. सी. 256 :
जसविंदर सैनी और अन्य बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** ; 4, 6

[2013] (2013) 10 एस. सी. सी. 591 :
उमेश कुमार बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य** ; 6

[2010] (2010) 15 एस. सी. सी. 116 :
राजबीर उर्फ **राजू और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** ; 11

[2004] (2004) 5 एस. सी. सी. 347 = (2004) 2
आर. सी. आर. (क्रि.) 463 :
हसनभाई वलीभाई कुरैशी बनाम **गुजरात राज्य और अन्य** ; 4, 6, 12

[1999] (1999) 7 एस. सी. सी. 467 :
शिव कुमार बनाम **हुकम चंद और एक अन्य** ; 19

[1969] (1969) 3 एस. सी. सी. 166 :
कांतीलाल चंदूलाल मेहता बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 10

[1954] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 266 :
हरिहर चक्रवर्ती बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ; 6, 14

[1943] (1942-43) 70 आई. ए. 196 = (1943) 56 एल. डब्ल्यू. 706 = (1943) ए. आई. आर., पी. सी. 192 :
ठाकुर शाह बनाम **एम्परर** । 13

अपीली दांडिक अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 131.

2015 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं 24510 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 29 सितम्बर, 2015 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अमरेन्द्र शरण (ज्येष्ठ अधिवक्ता), अमित आनंद तिवारी और अभिनंदन बनर्जी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री संजय कुमार विसेन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्र ने दिया ।

न्या. मिश्र – विवाह के अनुष्ठान की तारीख से एक दशक पूरा होने और इस विवाह बंधन से दो बच्चों का जन्म होने से हुए परिवार विस्तार तथा इतना समय बीत जाने और बच्चों की देखरेख की चिन्ता के बावजूद पति-अपीलार्थी और पत्नी (प्रत्यर्थी-2) के बीच प्रेमभाव कायम नहीं रह सका जिसके परिणामस्वरूप पत्नी ने तारीख 23 नवंबर, 2013 को दांडिक विधि का आश्रय लेते हुए पति और सास के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 498क/323/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 376 दर्ज कराई जिसमें यह अभिकथन किया गया था कि पति पारस्परिक विवाह-विच्छेद कराने के लिए आतुर था और इस पर पत्नी के प्रतिरोध के कारण पति ने पत्नी पर हमला किया और उसे दैनिक आवश्यकताओं से वंचित कर दिया । ये सभी अभिकथन दहेज की मांग किए जाने और पत्नी के परिवार के सदस्यों द्वारा, वह मांग पूरी न किए जाने के संबंध में किए गए थे । सम्यक् रूप से अन्वेषण किए जाने के पश्चात्, अभियोजन अधिकरण ने विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, गुड़गांव के समक्ष दंड संहिता की धारा 498क और 323 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए केवल पति के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया और विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट ने तारीख 4 अप्रैल, 2009 को पारित अपने आदेश द्वारा पति के विरुद्ध उक्त अपराध कारित किए जाने के लिए आरोप विरचित किए ।

2. जब मामला विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित था, तब तारीख 31

जुलाई, 2014 को एक आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 216 के अधीन इत्तिलाकर्ता-पत्नी द्वारा फाइल किया गया जिसमें पति और सास रेणुका सिन्हा के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अतिरिक्त आरोप विरचित किए जाने के लिए प्रार्थना की गई । उक्त आवेदन में यह कथन किया गया कि सम्पूर्ण स्त्रीधन और अन्य सामान का दुर्विनियोग किए जाने के संबंध में सुव्यक्त शिकायत की गई थी कि अभियुक्तों ने न्यास भंग कारित किया है किंतु उक्त अपराध के संबंध में कोई भी आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया । यह दलील दी गई कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित उसके कथन में उसने स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया था कि उसके पति के परिवार वालों द्वारा स्त्रीधन का दुर्विनियोग किया गया था । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इन सामग्रियों अर्थात् स्त्रीधन, पुलिस उपायुक्त (पूर्व), गुड़गांव को दी गई शिकायत, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित किए गए कथन तथा महिला सैल से संबंधित पुलिस उपायुक्त (पूर्व), गुड़गांव से तारीख 16 नवंबर, 2013 को जारी किए गए पत्र, पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि पति और उसके परिवार वालों द्वारा सम्पूर्ण स्त्रीधन का दुर्विनियोग किए जाने से संबंधित विशिष्ट अभिकथनों और अन्वेषण के दौरान अभिलिखित किए गए अन्य कथनों को दृष्टिगत करते हुए, आपराधिक न्यास भंग का मामला प्रथमदृष्ट्या बनता है और तद्नुसार पति और सास के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन आवेदन मंजूर कर दिया । यह भी उल्लेखनीय है कि विरचित आरोप में दंड संहिता की धारा 120ख के अधीन अपराध जोड़ने के लिए भी प्रार्थना की गई थी किंतु विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा स्वीकार नहीं की गई ।

3. विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए आदेश को विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, गुड़गांव के समक्ष 2015 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 5 में चुनौती दी गई और यह दलील दी गई कि पुलिस द्वारा सास को आरोपपत्रित नहीं किया गया है किंतु विचारण न्यायालय ने सास के विरुद्ध आरोप विरचित किए जाने का निदेश दिया, अतः सम्पूर्ण प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण हो जाती है । यह भी दलील दी गई है कि पति के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 406 के अधीन प्रथमदृष्ट्या मामला बनाने के लिए कोई भी सामग्री नहीं है । पुनरीक्षणकर्ता द्वारा जो पक्षकथन रखा गया, उसका समर्थन अभियोजन पक्ष तथा इत्तिलाकर्ता द्वारा इस आधार पर किया गया कि विचारण न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन किसी भी आरोप को जोड़ने या उसमें परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त है, अतः विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया आदेश किसी भी अपवाद के अंतर्गत नहीं आता है ।

पुनरीक्षण न्यायालय ने आरोप में परिवर्तन किए जाने और उसमें कोई धारा जोड़ने से संबंधित विधि का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि सास के विरुद्ध आरोप विरचित नहीं किया जा सकता किंतु पति अर्थात् इस मामले में के अपीलार्थी, के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अतिरिक्त आरोप विरचित किया जाना त्रुटिपूर्ण नहीं है । इस मत के आधार पर, पुनरीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदन भागतः मंजूर करते हुए सास के विरुद्ध आरोप विरचित किए जाने का आदेश अपास्त कर दिया ।

4. उपर्युक्त आदेश की प्रतिवाद्यता पर पति द्वारा प्रश्न उठाया गया है जिसके संबंध में उसने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन 2015 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 24510 प्रस्तुत की है । इस आदेश की तर्कपूर्णता को **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** बनाम **करीमुल्लाह ओसान खान**[1] और **हसनभाई वलीभाई कुरैशी** बनाम **गुजरात राज्य और अन्य**[2] वाले मामलों में अनुध्यात सिद्धांतों का अवलंब लेते हुए चुनौती दी गई है । जैसाकि आक्षेपित आदेश से प्रदर्शित होता है, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उपर्युक्त विनिश्चयाधार का मूल्यांकन करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन, उसके समक्ष उपलब्ध सामग्री के आधार पर, आरोप में परिवर्धन या उपांतरण करने की शक्ति है । उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि विचारण न्यायालय ने ऐसे कारणों का उल्लेख किया है जो आरोप में परिवर्धन करने के लिए आवश्यक हैं और इस प्रकार आक्षेपित निर्णय में कोई भी हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता नहीं है । उच्च न्यायालय ने अपने मत के समर्थन में **जसविंदर सैनी और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)**[3] वाले मामले में किए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है ।

5. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री अमरेन्द्र शरण और प्रत्यर्थी राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री संजय कुमार विसेन को सुना है ।

6. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री शरण ने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग निचले न्यायालयों द्वारा पारित किए गए

---

[1] (2014) 11 एस. सी. सी. 538.

[2] (2004) 5 एस. सी. सी. 347 = (2004) 2 आर. सी. आर. (क्रि.) 463.

[3] (2013) 7 एस. सी. सी. 256.

आदेशों को अपनी अधिकारिता के अधीन अपास्त करने से संबंधित न्यायोचित था क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन मजिस्ट्रेट को इत्तिलाकर्ता द्वारा फाइल किए गए आवेदन के आधार पर आरोप में परिवर्तन करने या उसमें उपांतरित करने की कोई शक्ति नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि विचारण न्यायालय आरोप में परिवर्तन कर सकता था यदि अभिलेख पर कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता किंतु अभिलेख पर पहले से उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर वह ऐसा नहीं कर सकता था । इसके अतिरिक्त, श्री शरण द्वारा यह दलील दी गई है कि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 406 के अधीन अपराध के किसी भी संघटक को दूर-दूर तक लागू नहीं होता है, अतः उक्त अपराध के संबंध में आरोप मे परिवर्धन करना पूर्णतया तर्करहित और दोषपूर्ण है । श्री शरण द्वारा यह भी दलील दी गई है कि इत्तिलाकर्ता द्वारा फाइल किए गए आवेदन के आधार पर आरोप में परिवर्धन किया ही नहीं जा सकता था क्योंकि ऐसा आवेदन, जैसाकि विधि द्वारा अपेक्षित है, केवल लोक अभियोजक द्वारा ही फाइल किया जाना चाहिए । उपर्युक्त दलीलों के समर्थन में विद्वान् काउंसेल ने **हरिहर चक्रवर्ती** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1], **हसनभाई वलीभाई कुरैशी** (उपरोक्त), **जसविंदर सैनी और अन्य** (उपरोक्त), **उमेश कुमार** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य**[2] और **करीमुल्लाह ओसान खान** (उपरोक्त) वाले मामलों में किए गए उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों और **पूनम और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[3] तथा **अनंत सिन्हा** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[4] वाले मामलों में किए गए पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया है ।

7. प्रत्यर्थी राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री विसेन ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश का समर्थन किया है और यह दलील दी है कि साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के पूर्व, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन आरोप में परिवर्तन करने या परिवर्धन करने के लिए कोई प्रतिषेध नहीं है यदि न्यायालय उक्त प्रयोजन के लिए कार्यवाही करता है और उसका यह समाधान हो जाता है कि

---

[1] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 266.

[2] (2013) 10 एस. सी. सी. 591.

[3] 2015 का सी. आर. आर. 657 (पंजाब हरियाणा उच्च न्यायालय).

[4] 2014 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. एम.-1044 में तारीख 7 मार्च 2014 का आदेश ।

उसके द्वारा विरचित किया गया आरोप परिवर्तित या परिवर्धित किया जाना आवश्यक है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश पूर्णतया उचित और अभेद्य है और उसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप किए जाने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि क्योंकि मजिस्ट्रेट को आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन करके सुधार करने की अधिकारिता है, इसलिए वह पक्षकारों के काउंसेल को सुन सकता है और स्वप्रेरणा से कार्यवाही कर सकता है और लोक अभियोजक या इत्तिलाकर्ता द्वारा फाइल किए गए आवेदन का उद्देश्य केवल मजिस्ट्रेट की जानकारी में उक्त तथ्यों को लाना होता है और किसी भी स्थिति में ऐसा करने से उसका आदेश अविधिमान्य नहीं होगा ।

8. यह संविवाद दो पहलुओं पर आधारित है । विचार के लिए प्रथम पहलू यह है कि क्या साक्ष्य प्रस्तुत किए बिना एक अन्य आरोप का परिवर्धन किया जा सकता है । इस संदर्भ में, हम दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 को निर्दिष्ट कर सकते हैं जो निम्नप्रकार है :–

> "216. **न्यायालय आरोप परिवर्तित कर सकता है** –
>
> (1) कोई भी न्यायालय निर्णय सुनाए जाने के पूर्व किसी समय किसी भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है ।
>
> (2) ऐसा प्रत्येक परिवर्तन या परिवर्धन अभियुक्त को पढ़कर सुनाया और समझाया जाएगा ।
>
> (3) यदि आरोप में किया गया परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय की राय में विचारण को आगे चलाने से अभियुक्त पर अपनी प्रतिरक्षा करने में या अभियोजक पर मामले के संचालन में कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय ऐसे परिवर्तन या परिवर्धन के पश्चात् स्वविवेकानुसार विचारण को ऐसे आगे चला सकता है मानों परिवर्तित या परिवर्धित आरोप ही मूल आरोप है ।
>
> (4) यदि परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय की राय में विचारण को तुरंत आगे चलाने से इस बात की संभावना है कि अभियुक्त या अभियोजक पर पूर्वोक्त रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तो न्यायालय या तो नए विचारण का निदेश दे सकता है या विचारण को इतनी अवधि के लिए, जितनी आवश्यक हो, स्थगित कर सकता है ।

(5) यदि परिवर्तित या परिवर्धित आरोप में कथित अपराध ऐसा है, जिसके अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी की आवश्यकता है, तो उस मामले में ऐसी मंजूरी अभिप्राप्त किए बिना कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी जब तक कि उन्हीं तथ्यों के आधार पर जिन पर परिवर्तित या परिवर्धित आरोप आधारित है, अभियोजन के लिए मंजूरी पहले ही अभिप्राप्त नहीं कर ली गई है ।"

9. **हसनभाई वलीभाई कुरैशी** (उपरोक्त) वाले मामले में ऊपर कथित उपबंध का निर्वचन किया गया है जिसमें न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया है :–

"दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 228 जो कि अध्याय XVII और धारा 240, जो अध्याय XIX में उल्लिखित है, सेशन न्यायालय और मजिस्ट्रेट द्वारा विचारण किए जाने वाले वारंट मामलों में आरोप विरचित किए जाने से संबंधित हैं । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के आधार पर विचारण के दौरान आरोप में परिवर्तन किए जाने की गुंजाइश होती है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216, जिसका उल्लेख अध्याय XVII में किया गया है, स्पष्ट रूप से यह अनुध्यात किया गया है कि कोई भी न्यायालय निर्णय सुनाए जाने के पूर्व किसी भी समय किसी भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है । जब कभी ऐसा कोई परिवर्तन या परिवर्धन किया जाता है तब वह अभियुक्त को पढ़कर सुनाया या समझाया जाएगा ।"

10. उक्त मामले में, **कांतीलाल चंदूलाल मेहता** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट किया गया है जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि संहिता के अंतर्गत न्यायालयों को आरोप में परिवर्तन या संशोधन करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है परंतु यह तब जब कि अभियुक्त पर कोई नए अपराध का आरोप विरचित नहीं किया जाना चाहिए और न ही उसे आरोप के संबंध में अंधकार में रखना चाहिए और न ही ऐसा किया जाना चाहिए कि उसे आरोप का खंडन करने का पूर्ण अवसर न दिया जाए और उसे अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप का खंडन करने के लिए प्रतिरक्षा में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए । उक्त निर्णय का अवलंब लेते हुए, यह मत व्यक्त किया गया है कि विचारण के दौरान यदि विचारण न्यायालय का प्रस्तुत किए गए साक्ष्य और दस्तावेजों के आधार पर मामले की मूल संभाव्यताओं पर विचार करने पर यह समाधान हो जाता है

[1] (1969) 3 एस. सी. सी. 166.

कि आरोप में कोई परिवर्तन या परिवर्धन आवश्यक है, तब न्यायालय ऐसा करने के लिए स्वतंत्र होगा और मामले की आपातकालीन परिस्थितियों को देखते हुए, समुचित रूप से कार्यवाही करने के लिए कोई भी विधिक वर्जन नहीं हो सकता ।

11. **जसविन्दर सिंह और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकारिता मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप पत्र फाइल किया जिसमें इस मामले में के अपीलार्थी 1 से 4 के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क, 304ख और 406 के अधीन अपराध कारित किए जाने का अभिकथन किया गया । पूरक आरोप पत्र भी फाइल किया गया जिसमें अपीलार्थी 5 से 8 को आलिप्त किया गया और उस मामले में अन्वेषण अधिकारी द्वारा धारा 302 जोड़ी गई । मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य या सामग्री नहीं है जिसके आधार पर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप न्यायोचित रूप से विरचित किया जा सके, जिसके परिणामस्वरूप आरोप केवल दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क और 304ख के अधीन ही विरचित किया गया । जब विचारण न्यायालय ने इस मामले में कार्यवाही की, इस न्यायालय ने **राजबीर** उर्फ **राजू और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में निर्णय पारित किया और यह निदेश दिया कि भारत के सभी विचारण न्यायालय आमतौर पर दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन विरचित आरोप के साथ धारा 302 जोड़ दिया करें ताकि महिलाओं के विरुद्ध जघन्य और बर्बरतापूर्ण किए गए अपराध में मृत्यु दंड अधिरोपित किया जा सके । विचारण न्यायालय ने **राजबीर** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निदेश पर ध्यान दिया और इस निदेश से कर्तव्यबद्ध होते हुए इस मामले में के अपीलार्थी के विरुद्ध पहले से विरचित आरोप में दंड संहिता की धारा 302 भी जोड़ दी गई और ऐसा किए जाने पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 का अवलंब लिया गया । उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अतिरिक्त आरोप विरचित करने या पहले से विरचित किए गए आरोप में परिवर्तन करने के लिए विचारण के दौरान साक्ष्य का मौजूद होना आवश्यक नहीं है, यद्यपि इस आधार पर भी आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने शव परीक्षा करने वाले शल्य चिकित्सक को निर्दिष्ट किया है और उच्च न्यायालय के अनुसार शव-

[1] (2010) 15 एस. सी. सी. 116.

परीक्षण रिपोर्ट में प्रथमदृष्ट्या ऐसा साक्ष्य मौजूद था जिसके आधार पर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित किया जा सके । इस विचार के आधार पर, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया । इस न्यायालय ने तथ्यों का परिशीलन करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "यह सामान्य आधार है कि दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन विरचित आरोप से दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए विरचित किए गए आरोप को प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता जैसाकि दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन हत्या के प्रत्येक मामले में मृत्यु कारित की जाती है । प्रश्न यह सामने आता है कि क्या यह अपराध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या है या दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दंडनीय दहेज मृत्यु है जो कि मामले के तथ्य, स्थिति और साक्ष्य पर निर्भर होती है । यदि प्रथमदृष्ट्या दंड संहिता की धारा 302 के अधीन विरचित आरोप के समर्थन में प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य मौजूद हो, तब विचारण न्यायालय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या के अपराध के लिए आरोप विरचित कर सकता है और वास्तव में उसे ऐसा ही करना चाहिए जो मुख्य आरोप कहलाएगा न कि आनुकल्पिक आरोप जैसाकि कुछ मामलों में गलत उपधारित किया गया है । यदि हत्या का मुख्य आरोप विचारण के दौरान अभियुक्त के विरुद्ध साबित नहीं होता है, तब न्यायालय साक्ष्य पर विचार कर सकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि क्या दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दंडनीय दहेज मृत्यु के अपराध का आनुकल्पिक आरोप सिद्ध हुआ है या नहीं । इन दोनों अपराधों को गठित करने वाले संघटक भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए इन संघटकों के साथ सुसंगत दृष्टिकोण अपनाते हुए साक्ष्य का मूल्यांकन करना होगा । विचारण न्यायालय ने मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए बिना सोचे-समझे कार्यवाही की है क्योंकि विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 302 के अधीन, मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार किए बिना और केवल **राजबीर** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निदेश के आधार पर, अतिरिक्त आरोप विरचित किया है । उच्च न्यायालय ने **राजबीर** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निदेश से परे आरोप विरचित किए जाने को न्यायोचित ठहराने का अनचाहे मन से प्रयास किया, किंतु उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत का समर्थन करने के बजाय

इस मामले को नए सिरे से आदेश किए जाने के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेजना बेहतर होता ।"

12. यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश के बातिलकरण होने से विचारण न्यायालय पर यह रोक नहीं लगती है कि वह इस मामले में के अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित किए जाने के प्रश्न पर पुनः विचार करे और यदि उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर प्रथमदृष्ट्या मामला बनता हो तो वह समुचित आदेश पारित करे, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि ऐसा करने के लिए कोई न कोई गुंजाइश है । इस संदर्भ में, **हसनभाई वलीभाई कुरैशी** (उपरोक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट किया गया ।

13. **करीमुल्लाह ओसान खान** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने ग्रेटर मुम्बई में हुए बम विस्फोट के मामले के लिए आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के अधीन नामनिदेशित न्यायालय द्वारा पारित उस आदेश की विधिमान्यता पर विचार किया जिसके द्वारा दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध और दंड संहिता की अन्य धाराओं के अधीन विरचित आरोप और दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के अधीन कारित अपराध तथा आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के अधीन अपराध के लिए अतिरिक्त आरोप विरचित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया था । नामनिदेशित न्यायालय ने कतिपय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए और जब केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने दंड संहिता की धारा 302 और अन्य अपराधों के अधीन अतिरिक्त आरोप विरचित किए जाने के लिए आवेदन फाइल किया, तब नामनिदेशित न्यायालय ने आवेदन खारिज कर दिया जैसाकि पूर्व में उपदर्शित किया गया है । उक्त संदर्भ में न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 की व्यापकता को स्पष्ट किया है । **जसविन्दर सैनी** (उपरोक्त) और **ठाकुर शाह** बनाम **एम्परर**[1] वाले मामलों में के विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया गया है । आगे कार्यवाही करते हुए निम्न अभिनिर्धारिति किया गया है :–

---

[1] (1942-43) 70 आई. ए. 196 = (1943) 56 एल. डब्ल्यू. 706 = ए. आई. आर. 1943 पी. सी. 192.

"17. विचारण न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन व्यापक शक्ति दी गई है, अर्थात् साक्ष्य का चरण पूरा होने, बहस सुने जाने और निर्णय आरक्षित किए जाने के पश्चात् भी न्यायालय इस धारा में उल्लिखित शर्तों के अध्यधीन किसी भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है । 'किसी भी समय' और 'निर्णय सुनाए जाने के पूर्व' अभिव्यक्तियों से यह उपदर्शित होता है कि न्यायालय को प्राप्त शक्ति अत्यंत व्यापक है और इसका प्रयोग न्याय के हित के लिए समुचित मामलों में किया जा सकता है किंतु साथ ही न्यायालयों को इस पर भी विचार करना चाहिए कि उनके आदेशों से अभियुक्तों पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

18. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अंतर्गत नामनिदेशित न्यायालयों सहित सभी न्यायालयों को अधिकारिता प्रदत्त की गई है कि वे पूर्व में विरचित किसी भी आरोप में निर्णय सुनाए जाने के पूर्व किसी भी समय परिवर्तन या परिवर्धन कर सकते हैं और उपधारा (2) से (5) के अंतर्गत वह प्रक्रिया विहित की गई है जिसका अनुसरण आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन करने के लिए किया जाना चाहिए । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि न्यायालयों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त है किंतु यह केवल तब हो सकता है जब न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई सामग्री विद्यमान हो जिसका संबंध उन आरोपों से हो जिनमें संशोधन, परिवर्धन या परिवर्तन किए जाने की ईप्सा की गई है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन केवल उस अपराध के संबंध में किया जाना चाहिए जिसका उल्लेख विचारण न्यायालय में विचारण के समय साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के दौरान किया गया हो । (हरिहर चक्रवर्ती **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य (उपरोक्त) वाला मामला देखिए) मात्र इस कारण से कि विचारण पूरा होने के पश्चात् आरोपों में परिवर्तन किया गया है, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि इससे अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 और इससे संबंधित अन्य उपबंधों के अधीन अभियुक्त को पर्याप्त सुरक्षोपाय दिए गए हैं ।"

14. इस प्रक्रम पर हमें **हरिहर चक्रवर्ती** (उपरोक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांतों का समुचित रूप से वर्णन करना होगा । उक्त मामले में, एक शिकायत अपीलार्थी और एक अन्य व्यक्ति पर दंड संहिता की धारा

409, 406, 477 और 114 के अधीन दंडनीय अपराधों का आरोप लगाते हुए फाइल की गई । शिकायतकर्ता और उसके साक्षियों की परीक्षा की गई और उक्त साक्ष्य के आधार पर विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 409 के अधीन आरोप विरचित किया । अपीलार्थी ने अपनी प्रतिरक्षा की और विचारण के पश्चात् मजिस्ट्रेट ने अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 409 के अधीन अपराध से दोषमुक्त कर दिया । शिकायतकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जिसके परिणामस्वरूप दोषमुक्ति का आदेश अपास्त कर दिया गया और मामले को मजिस्ट्रेट के समक्ष समुचित साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् आरोप में संशोधन करके विनिश्चय किए जाने के लिए भेज दिया गया । उक्त आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई । इस न्यायालय ने, मामले के गुणागुणों को ध्यान में रखते हुए यह मत व्यक्त किया :–

> "8. यह एक प्राइवेट अभियोजन था जिसमें शिकायतकर्ता ने यह पक्षकथन प्रस्तुत किया कि उसने अपीलार्थी को शेयर खरीदने के लिए कभी नहीं कहा और इसीलिए वे शेयर शिकायतकर्ता के नहीं थे, और शिकायतकर्ता को उन शेयरों में कोई रुचि नहीं थी । वास्तव में शिकायतकर्ता का यह पक्षकथन था कि उसके निर्देशानुसार अपीलार्थी द्वारा कभी भी शेयर नहीं खरीदे गए थे । जो कुछ पाया गया वह सब मिथ्या था और यह पता चला कि शिकायतकर्ता ने शेयर खरीदने के लिए निर्देश दिया और ये शेयर उसी के थे । विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए आदेश से यह अर्थ निकला कि शिकायतकर्ता को अपनी मूल कहानी भूल जानी चाहिए थी ताकि शेयरों पर अधिकार बना रहे और अपीलार्थी का अभियोजन एक अन्य अपराध के लिए किया जा सके जो कि केवल अत्यंत भिन्न तथ्यों के आधार पर ही शेयरों की खरीदारी के पश्चात् हो सकता था । अपीलार्थी इस अन्य अपराध का दोषी हो सकता है और नहीं भी किंतु वह उस अपराध के लिए निश्चित रूप से निर्दोष है जिसके लिए उसे आरोपित किया गया है और उसका पूर्ण रूप से विचारण किया गया है और इसीलिए वह दोषमुक्त किए जाने के लिए हकदार है और विद्वान् न्यायाधीश को उस आदेश को अपास्त करने की कोई शक्ति नहीं है जैसाकि उन्होंने पहले ही यह सहमति व्यक्त की है कि अपीलार्थी उस अपराध का दोषी नहीं है जिसके लिए उसे आरोपित किया गया है । जब एक बार आरोप विरचित कर दिया जाता है और अभियुक्त को उस अपराध का

दोषी नहीं पाया जाता है तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 258(1) के अधीन दोषमुक्ति अभिलिखित की जानी चाहिए । इस मामले में कोई भी विकल्प नहीं है और हमारी यह राय है कि दोषमुक्ति को अपास्त करने वाला आदेश किसी भी प्रकार से गलत नहीं है ।

9. अगली बात आरोप में परिवर्तन किए जाने के निदेश का संबंध है, ताकि वह अपराध जोड़ा जा सके जिसके लिए अपीलार्थी को मूल रूप से आरोपित नहीं किया गया था, ऐसा केवल तब ही किया जा सकता है जब निर्णय दिए जाने के पूर्व, विचारण न्यायालय स्वयं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन कार्यवाही करे । ऐसा केवल तब किया जा सकता था यदि न्यायालय के समक्ष, ऐसी कार्यवाही को न्यायोचित ठहराने के लिए, शिकायत में या साक्ष्य में सामग्री उपलब्ध हो ।

10. शिकायत में इस बात के लिए ऐसी कोई सामग्री नहीं है क्योंकि मामला इस अभिकथन पर आधारित है कि शेयर अपीलार्थी के नहीं हैं और यह कि वास्तव में ये शेयर अपीलार्थी द्वारा कभी नहीं खरीदे गए । विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया है कि यह दलील दी गई थी कि शेयर अपीलार्थी के हैं और उन्हें नाथ बैंक में अपीलार्थी द्वारा बेइमानी से गिरवी रखा गया था । हमें शिकायत में और शिकायतकर्ता की न्यायालय में की गई परीक्षा के दौरान दिए गए कथन में इस संबंध में एक भी शब्द दिखाई नहीं देता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

15. ऐसा कथन किए जाने पर, न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर विचारण न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन आरोप में संशोधन करता और विद्वान् न्यायाधीश को ऐसा संशोधन किए जाने और विचारण जारी रखे जाने का निदेश देने की कोई शक्ति नहीं है जैसाकि विद्वान् न्यायाधीश ने किया है । उक्त नजीर पर बल देने का मुख्य प्रयोजन यह है कि विचारण न्यायालय केवल तब आरोप में परिवर्तन का निदेश दे सकता है जब उसके समक्ष प्रस्तुत की गई शिकायत या साक्ष्य में ऐसा किए जाने के लिए सामग्री उपलब्ध हो । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के पूर्वोक्त विनिश्चय के आधार पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि यदि शिकायत या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या उससे संबंधित किसी सामग्री में अभिकथन किए गए हैं तब न्यायालय आरोप में परिवर्तन कर सकता है । **ठाकुर शाह** बनाम **एम्परर**

(उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आरोप में जो परिवर्तन या परिवर्धन किया जाता है वह ऐसे अपराध के संबंध में होना चाहिए जो न्यायालय के समक्ष विचारण के दौरान अभिलिखित साक्ष्य में प्रस्तुत किया जाए । इसका अर्थ केवल यह नहीं होगा कि आरोप में परिवर्तन केवल ऐसे ही मामले में किया जा सकता है जिसमें साक्ष्य प्रस्तुत किया जाए । हम यह स्पष्ट करते हैं कि **हरिहर चक्रवर्ती** (उपरोक्त) वाले मामले में किया गया विनिश्चय निर्दिष्ट किया गया है किंतु उक्त निर्देश का अर्थ इसी संदर्भ में लगाया जाना चाहिए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216, जैसाकि स्पष्ट होता है, के अधीन यह अधिकथित नहीं किया गया है कि न्यायालय मात्र इस आधार पर आरोप में परिवर्तन नहीं कर सकता कि उसी ने ही आरोप विरचित किया है । **हसनभाई वलीभाई कुरैशी** (उपरोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि विचारण के दौरान आरोप में परिवर्तन किए जाने की गुंजाइश अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर रहती है । **जसविन्दर सैनी और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसी परिस्थितियां जिनमें आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन किया जा सकता है, उनका उल्लेख दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 की उपधारा (2) से (5) के अधीन किया गया है जो आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन किए जाने के संबंध में न्यायालय द्वारा अपनाए जाने वाली कार्यवाही के बारे में है । इस धारा में यह अधिकथित किया गया है कि आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन किए जाने का प्रश्न आमतौर पर तब उठता है जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि पहले से विरचित किया गया आरोप किसी भी कारण से त्रुटिपूर्ण है या विचारण के दौरान न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है जिसके लिए आरोप में ऐसा परिवर्धन किया जाना आवश्यक हो । यदि उक्त विनिश्चय को ठीक प्रकार समझा जाए तब इससे **हरिहर चक्रवर्ती** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किया गया सिद्धांत स्पष्ट हो जाता है ।

16. उपर्युक्त बातों से यह सामने आता है कि न्यायालय आरोप में परिवर्तन कर सकता है यदि उसमें कोई त्रुटि या खामी दिखाई देती है । इसकी कसौटी यह है कि आरोप में किया गया परिवर्तन अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर होना चाहिए । यह परिवर्तन शिकायत या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या संबंधित दस्तावेजों या अभिलेख पर विचारण के दौरान प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर किया जा सकता है । आरोप में परिवर्तन निर्णय दिए जाने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है ।

यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक परिस्थिति का अवलंब लिया जाए । इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यदि न्यायालय ने अभिलेख पर सामग्री उपलब्ध होने के बावजूद आरोप विरचित नहीं किया है तब ऐसी स्थिति में आरोप में परिवर्धन करने की न्यायालय को अधिकारिता होगी । इसी प्रकार, न्यायालय को आरोप में परिवर्तन करने का भी प्राधिकार प्राप्त है । यह सिद्धांत ध्यान में रखना चाहिए कि मजिस्ट्रेट द्वारा विरचित किया गया आरोप उसके समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री या अभिलेख पर तत्पश्चात् प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के अनुसरण में होना चाहिए । यह नहीं समझना चाहिए कि जब तक कि पश्चात्वर्ती साक्ष्य प्रस्तुत न कर दिया जाए, तब तक पहले से विरचित किए गए आरोप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन यह तात्पर्यित नहीं है ।

17. जो कुछ हमने इसमें इसके ऊपर व्यक्त किया है, उसके अतिरिक्त एक अन्य पहलू की ओर भी हमारा ध्यान जाता है । न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि अभियुक्त पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ रहा है और अभियुक्त को निष्पक्ष विचारण के लिए अनुज्ञात किया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन सुरक्षोपायों का उल्लेख किया गया है । विचारण न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह इस बात पर ध्यान दे कि अभियुक्त पर ऐसा कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है जिससे निष्पक्ष विचारण प्रभावित होता हो । **अमर सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्त को उसके विरुद्ध मामले से सदैव अवगत कराया जाना चाहिए ताकि वह अपनी प्रतिरक्षा को समझ सके । अभियुक्त को उस अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है जो आरोपित अपराध से छोटा है परंतु ऐसा तभी हो सकता है जब अभियुक्त न्यायालय का यह समाधान न कर सके कि उस पर किसी विशेष दांडिक उपबंध के अधीन आरोप विरचित न किए जाने से उसके साथ अन्याय हुआ है और उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । ऐसा मत व्यक्त करते हुए हम **भीमन्ना** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2] वाले मामले में के निम्न दो पैराओं को उद्धृत कर रहे हैं :–

> "25. इसके अतिरिक्त कमी इतनी गंभीर होनी चाहिए कि वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 464/465 के अंतर्गत न आ सके जिसके अधीन यह उपबंध किया गया है कि कोई दंडादेश या

---

[1] (1974) 3 एस. सी. सी. 81.

[2] (2012) 9 एस. सी. सी. 650.

दोषसिद्धि केवल इस आधार पर कि कोई आरोप विरचित नहीं किया गया या इस आधार पर कि आरोप में कोई गलती, लोप या अनियमितता थी या आरोपों का कुसंयोजन था, उस दशा में ही अविधिमान्य समझी जाएगी जब न्यायालय की राय में उसके कारण वस्तुतः न्याय नहीं हो पाया हो । यह सुनिश्चित करने में कि क्या कोई गलती, लोप या अनियमितता आरोप विरचित करने में की गई है और उससे कोई अन्याय हुआ है, ऐसी स्थिति में न्यायालय को इस पर ध्यान देना चाहिए कि क्या कार्यवाहियों के दौरान पूर्ववर्ती प्रक्रम पर आक्षेप किया जा सकता था या नहीं । अभियुक्त के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने या उसे दोषी ठहराए जाने को विनिश्चित करते समय न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक अभियुक्त को निष्पक्ष विचारण किए जाने का अधिकार है जिसमें उसे इस बात से अवगत होना चाहिए कि किस अपराध के लिए उसका विचारण किया जा रहा है और जिन तथ्यों को उसके विरुद्ध सिद्ध किया जाना है उन्हें उसके समक्ष निष्पक्ष और स्पष्ट रूप से रखा जाना चाहिए और इसके अतिरिक्त, उसे ऐसे आरोपों से अपनी प्रतिरक्षा करने का पूर्ण और निष्पक्ष अवसर दिया जाना चाहिए ।

26. इस न्यायालय ने, इस न्यायालय द्वारा किए गए अनेक विनिश्चयों विशेषकर तोपनदास **बनाम** बम्बई राज्य [ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 33], विली (विलियम) स्लेनी **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य [ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 116], फखरूद्दीन **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य [ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1326], आन्ध्र प्रदेश राज्य **बनाम** तकीदीरम रेड्डी [(1998) 6 एस. सी. सी. 554] , रामजी सिंह **बनाम** बिहार राज्य [(2001) 9 एस. सी. सी. 528] और गुरप्रीत सिंह **बनाम** पंजाब राज्य [(2005) 12 एस. सी सी. 615] वाले मामलों में ऐसे ही मुद्दे पर विचार करते हुए **सनीचर साहनी** बनाम **बिहार राज्य** [(2009) 7 एस. सी. सी. 198] वाले मामले में के पृष्ठ 204 पर पैरा 27 में निम्न मत व्यक्त किया है –

> 27. अतः ..... जब तक कि दोषसिद्ध व्यक्ति यह सिद्ध न कर दे कि आरोप में की गई गलती से उसके मामले पर वास्तव में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और यह कि उसे इस संबंध में सूचित ही नहीं किया गया कि उसके विरुद्ध वास्तव में मामला क्या है और यह कि वह समुचित रूप से अपनी प्रतिरक्षा नहीं कर सका, तब तक मात्र तकनीकियों के

> आधार पर कोई भी हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है । वास्तव में दोषसिद्धि के आदेश को प्रतिकूल प्रभाव की कसौटी पर परखना चाहिए ।"

ऐसा ही मत **अब्दुल सईद** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में भी दोहराया गया है ।

18. हमने उपर्युक्त पैराओं को कड़ी सावधानी से दोहराया है ताकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन करते समय विचारण न्यायालय ऊपर कथित सिद्धांतों को ध्यान में रख सकें । प्रतिकूल प्रभाव का परीक्षण, जैसाकि ऊपर कथित निर्णय में दिया गया है, कड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए ।

19. अब दूसरे पहलू पर विचार करते हैं । श्री शरण की यह दलील है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इत्तिलाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन पर इस कारण से विचार नहीं किया कि आवेदन इस आधार पर अक्षम है कि यह लोक अभियोजक द्वारा फाइल किया जाना चाहिए था । इस संबंध में, विद्वान् काउंसेल ने **शिव कुमार** बनाम **हुकम चंद और एक अन्य**[2] वाले मामले में किए गए विनिश्चय पर बल दिया है । उक्त मामले में, अपीलार्थी को यह शिकायत थी कि संबद्ध लोक अभियोजक से सहमति प्राप्त करने के बावजूद उसे अभियोजन किए जाने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा अनुज्ञात नहीं किया गया । विचारण न्यायालय ने इस आशय का आदेश पारित किया कि इत्तिलाकर्ता द्वारा जो अधिवक्ता नियुक्त किया गया है वह उसके मामले में लोक अभियोजक के पर्यवेक्षण, मार्गदर्शन तथा नियंत्रण के अधीन बहस करेगा । उसने यह भी निदेश दिया कि लोक अभियोजक कार्यवाहियों पर स्वयं नियंत्रण रखेगा । उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर करते हुए यह निदेश दिया कि शिकायतकर्ता या किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा नियुक्त किए गए अधिवक्ता लोक अभियोजक के निदेशाधीन कार्य करेगा और वह न्यायालय की अनुमति से साक्ष्य की कार्यवाही पूर्ण होने के पश्चात् लिखित दलीलें प्रस्तुत कर सकता है और लोक अभियोजक मामले के भारसाधक के रूप में अभियोजन का संचालन करेगा । इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 301, 302(2) और 225 के साथ अन्य उपबंधों को निर्दिष्ट करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया :–

---

[1] (2010) 10 एस. सी. सी. 259.

[2] (1999) 7 एस. सी. सी. 467.

"13. संहिता की योजना से विधान-मंडल का आशय स्पष्ट है कि सेशन न्यायालय में लोक अभियोजक के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति द्वारा अभियोजन नहीं किया जा सकता । विधान-मंडल राज्य को यह याद दिलाता है कि जो पालिसी बनाई जाती है वह अभियुक्त का सेशन न्यायालय में निष्पक्ष विचारण किए जाने के अनुकूल हो । लोक अभियोजक से यह प्रत्याशा नहीं की जाती है कि वह मामले को किसी भी प्रकार से, मामले के वास्तविक तथ्यों को ध्यान में न लेते हुए भी, अभियुक्त की दोषसिद्धि किए जाने पर बल दे । अभियोजन की कार्यवाही के दौरान लोक अभियोजक का प्रत्याशित आचरण न केवल न्यायालय के प्रति अपितु अन्वेषण अभिकरण के संबंध में भी निष्पक्ष होना चाहिए । यदि कोई अभियुक्त विचारण के दौरान कोई विधिसम्मत फायदा पाने का हकदार है, तब लोक अभियोजक को उसे छिपाना नहीं चाहिए । इसके प्रतिकूल, लोक अभियोजक का यह कर्तव्य है कि वह इस फायदे को अभियुक्त को उपलब्ध कराए । यदि प्रतिरक्षा काउंसेल से इस फायदे को लेकर चूक हो जाती है, तब लोक अभियोजक की यह अतिरिक्त बाध्यता है कि वह इस तथ्य की जानकारी प्राप्त होने पर उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करे । यदि प्राइवेट काउंसेल को मामले का अभियोजन करने के लिए अनुज्ञात किया जाए, तब ऐसी स्थिति में उसे चाहिए कि वह उस मामले को दोषसिद्धि की ओर लाने का प्रयास करे भले ही वह मामला दोषसिद्धि के लिए उचित मामला न हो । यही कारण है कि संसद् ने उस काउंसेल पर नकेल क्यों कसी है और उसे वही कुछ करने के लिए आबद्ध किया गया है जिसका लोक अभियोजक निर्देश करे ।

14. यह मात्र कुल मिलाकर किया गया पर्यवेक्षण नहीं है जिसको पूरा किए जाने की प्रत्याशा लोक अभियोजक से ऐसे मामलों में की जाए जिनमें प्राइवेट रूप से नियुक्त किए गए काउंसेल को उसकी ओर से कार्य करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है । ऐसी स्थिति में प्राइवेट काउंसेल की जो भूमिका होनी चाहिए वह संभवतः एक ऐसे कनिष्ठ अधिवक्ता की होती है जो अपने ज्येष्ठ अधिवक्ता के लिए न्यायालय में अदा करता है । प्राइवेट काउंसेल को लोक अभियोजक की ओर से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कार्य करना होता है कि उसे प्राइवेट पक्षकार द्वारा मामले में नियुक्त किया गया है । यदि लोक अभियोजक की भूमिका केवल पर्यवेक्षक तक सीमित

है तब विचारण प्राइवेट पक्षकार और अभियुक्त के बीच एक मुकाबला हो जाएगा और अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 225 के अधीन विधान-मंडल के आदेश का अतिक्रमण करेगा ।"

20. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को कायम रखा । हमारी राय में उक्त विनिश्चय तथ्यों के आधार पर एक भिन्न विनिश्चय है । वर्तमान मामला ऐसे विचारण या ऐसी कार्यवाही से संबंधित नहीं है जिसके द्वारा कोई प्राइवेट अधिवक्ता कार्यवाहियों का नियंत्रण अपने हाथ में ले सके । जैसाकि स्पष्ट है, इत्तिलाकर्ता द्वारा, दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अपराध के लिए आरोप का परिवर्धन करने के लिए आवेदन फाइल किया गया था क्योंकि पति के विरुद्ध स्त्रीधन को लेकर न्यासभंग के संबंध में अभिकथन किए गए थे । विद्वान् मजिस्ट्रेट की जानकारी में, किसी भी प्रकार से आरोप विरचित किए जाने में आई कमी को लाया गया था । न्यायालय स्वयमेव ऐसा कर सकता था । ऐसी स्थिति में, हमें ऐसे आवेदन पर विचार करने के लिए विद्वान् मजिस्ट्रेट की कोई गलती दिखाई नहीं देती है । यह कहा जा सकता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने सामग्रियों पर विचार किया है और प्रथमदृष्ट्या अपना समाधान अभिलिखित किया है । उक्त प्रथमदृष्ट्या मत में कोई भी त्रुटि दिखाई नहीं देती है । हमें पुनरीक्षण आवेदन में किए गए उस आदेश में कोई भी त्रुटि दिखाई नहीं देती है जिसके द्वारा न्यायालय ने सास के विरुद्ध विरचित आरोप को अपास्त किया था । तदनुसार, हम उच्च न्यायालय के उस आदेश की पुष्टि करते हैं जिसमें पुनरीक्षण में पारित किए गए आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार किया है । हम यह स्पष्ट करते हैं कि सम्पूर्ण संवीक्षा आरोप विरचित किए जाने के प्रयोजन के लिए ही है और अन्यथा नहीं । विद्वान् मजिस्ट्रेट विचारण की कार्यवाही करेंगे और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के अनुसार मामला विनिश्चित करेंगे और किसी भी मताभिव्यक्ति से प्रभावित नहीं होंगे क्योंकि मताभिव्यक्तियों का अनुपालन आक्षेपित आदेश की विधिक प्रतिरक्षणीयता की परख के प्रयोजन के लिए ही सीमित है ।

21. परिणामतः, अपील में सार न होने के कारण खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

[2016] 3 उम. नि. प. 161

ज्ञानेश्वर श्यामल

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य

29 मार्च, 2016

न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर और न्यायमूर्ति सी. नागप्पन

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 148, 364, 302 और 307 – सामान्य उद्देश्य – हत्या और हत्या का प्रयास – अपहरण – अभियुक्तों ने घातक आयुधों से लैस होकर विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य में भाग लिया, उन लोगों ने पीड़ित के घर में प्रवेश किया और हत्या करने के आशय से उसका अपहरण किया, अतः, घटनास्थल पर उनकी मौजूदगी, सामान्य उद्देश्य में उनकी भागीदारी, पीड़ित की हत्या करने के लिए उसके अपहरण जैसी अपेक्षाओं के पूरा होने के कारण अभियुक्तों का दोषसिद्ध किया जाना उचित और न्यायसंगत है ।

संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है – जीतोबाहन, श्रीमती खिरोडा का पति है । मृतक सत्यवान उनका अविवाहित बड़ा पुत्र है और मनोरंजन मंडल उनका छोटा पुत्र है । सभी ग्राम कर्थनाला में साथ-साथ रहते थे । मुरलीधर कुइला मृतक सत्यवान का मित्र है । तारीख 9 अक्तूबर, 1983 को 9.00 और 10.00 बजे पूर्वाह्न के बीच अभियुक्त हरिराम मंडल के मवेशियों ने जीतोबाहन के मकान के पीछे की ओर लगे हुए कुंदरी पौधों को नष्ट कर दिया । सत्यवान ने मवेशियों को वहां से खदेड़ दिया और इस बात से हरिराम मंडल का पुत्र माणिक मंडल क्रोधित हो गया जिसने अपने हाथ में लिए हुए तीर-कमान से उस पर वार किया । सत्यवान मकान के अंदर आ गया । यह भी अभिकथन किया गया है कि उन दोनों के बीच राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता चल रही थी । दोपहर के समय उसी दिन अपीलार्थियों सहित सभी अभियुक्त जो लाठियों, तंगियों, और तीर-कमानों से लैस थे, गोलक मंडल के मकान में एकत्र हो गए जो सत्यवान के मकान से 30 कदम की दूरी पर है । लगभग 1.30 बजे अपराह्न में मुरलीधर कुइला सत्यवान के मकान पर आया और अंदर आकर उससे बात करने लगा । इसी दौरान सभी अभियुक्त, जो हथियारों से लैस थे, वहां आए और उन्होंने सत्यवान और मुरलीधर को घेर लिया । माणिक मंडल ने

सत्यवान पर तंगी (काटने के लिए प्रयोग किए जाने वाला धारदार आयुध) से वार किया और उसने मुरलीधर के दाएं नेत्र पर भी तंगी से वार किया । मुरलीधर वहां से भाग गया । अभियुक्तों ने सत्यवान पर हमला किया और वे उसे गोलक मंडल के मकान पर ले गए । इसके पश्चात् सत्यवान कभी भी मृत या जीवित नहीं पाया गया । सत्यवान के माता-पिता और भाई मनोरंजन ने यह घटना देखी थी । मनोरंजन अपनी जान बचाकर ग्राम सतमा स्थित अपने जीजा के घर की ओर भागा और उसने अर्धेन्दु सतपति को घटना के बारे में बताया और अभि. सा. 1 तुरंत अपनी मोटरसाइकिल से पुलिस थाने के लिए रवाना हुआ जो वहां से लगभग 44 किलोमीटर की दूरी पर है । अर्धेन्दु सतपति ने लिखित शिकायत दर्ज कराई जो पुलिस उप-निरीक्षक मृगांका शेखर मिश्रा ने प्राप्त की और उसी दिन 6.15 बजे अपराह्न में उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया । पुलिस को एक वाहन की आवश्यकता हुई और परिणामस्वरूप पुलिस अगले दिन प्रातःकाल लगभग 5.00 बजे घटनास्थल पर पहुंची । उप-निरीक्षक ने अभियुक्तों को तलाश किया किंतु उनका पता नहीं चल सका । अभि. सा. 10 ने अभियुक्त गोलक मंडल के मकान की तलाशी ली और उसने रक्त-रंजित कई वस्तुएं बरामद कीं और इस संबंध में ज्ञापन और महाजर तैयार किए । अभि. सा. 10 ने मुरलीधर को गोपीबल्लभपुर प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र भेजा, यद्यपि डा. पुष्पाराजन घोष द्वारा अभि. सा. 4 को प्राथमिक चिकित्सा सहायता दे दी गई थी । डा. बेपरी ने प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र पर मुरलीधर की चिकित्सा परीक्षा की और उसके दाएं नेत्र के ऊपर 1.5 इंच × 0.25 इंच माप का कटाव और दाएं नेत्र के नीचे की ओर 0.5 इंच × 0.25 इंच माप का कटाव देखा । उस चिकित्सक द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट है । उप-निरीक्षक ने अन्वेषण पूरा होने पर 35 अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया । सेशन न्यायालय ने आरोप विरचित करने के पश्चात् मामले का विचारण किया जिसमें अभियोजन पक्ष ने 10 साक्षियों की परीक्षा कराई और दस्तावेज चिह्नांकित किए । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से कोई भी साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया । विचारण न्यायालय ने केवल 7 अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया और उन्हें उपरोक्त रूप में दंडादिष्ट किया । अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय ने इस दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर वर्तमान अपीलें फाइल की गई हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभियुक्तों ने घातक आयुधों से लैस होकर बलवा किया और सत्यवान का उसके निवास से अपहरण किया और उसकी हत्या की । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह तथ्य साबित नहीं किया गया है कि सत्यवान की हत्या अभियुक्त गोलक मंडल के मकान में की गई थी क्योंकि अत्यंत सतर्कता के साथ तलाश किए जाने के बावजूद उसका शव नहीं मिल सका और यह 'अपराध सार' न मिल पाने का मामला है, इसलिए हत्या का आरोप साबित नहीं हुआ है । राज्य ने अभियुक्तों की उक्त अपराध से दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील प्रस्तुत नहीं की है और अब दोषमुक्ति का परिणाम अंतिम हो चुका है । साथ ही विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थियों ने मुरलीधर कुइला को क्षति पहुंचाने के लिए बलवे में भाग लिया और उन्होंने सत्यवान पर उसकी हत्या करने के आशय से हमला करते हुए उसका अपहरण किया और विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों को ऊपर कथित आरोपों का दोषी पाया । जीतोबाहन और उसकी पत्नी श्रीमती खिरोडा अपने पुत्र सत्यवान और मनोरंजन के साथ ग्राम कर्थनाला में रहते थे । अभि. सा. 2, 3 और 8 के अनुसार घटना के दिन प्रातःकाल में अभियुक्त हरिराम के मवेशियों ने उनके मकान के पीछे की ओर उगे हुए कुंदरी पौधों को नुकसान पहुंचाया था और सत्यवान ने मवेशियों को वहां से भगा दिया था और इस बात से खिन्न होकर माणिक मंडल ने तीर-कमान से हमला किया और इसके पश्चात् सत्यवान मकान के अंदर आ गया । साक्षियों ने अपने परिसाक्ष्य में यह भी कहा है कि दोपहर के समय तक उस दिन अपीलार्थियों सहित सभी अभियुक्त गोलक मंडल के मकान में एकत्र हुए जो उनके मकान के निकट ही स्थित है और उस समय अपीलार्थी लाठियों, तंगियों और तीर-कमान से लैस थे । अभि. सा. 2, 3 और 8 ने यह भी साक्ष्य दिया है कि मुरलीधर कुइला उनके मकान पर सत्यवान से मिलने लगभग 1.30 बजे अपराह्न में आया था और वे दोनों उनके मकान में बात कर रहे थे और उसी समय सभी अभियुक्त हथियारों से लैस होकर वहां आए और उन्होंने सत्यवान और मुरलीधर कुइला को घेर लिया । माणिक मंडल ने सत्यवान पर तंगी से वार किया और उसने मुरलीधर कुइला के दाएं नेत्र के ऊपर भी तंगी से हमला किया और सभी अभियुक्तों ने सत्यवान पर हमला किया और वे उसे अभियुक्त गोलक मंडल के मकान पर ले गए और इसके पश्चात् सत्यवान कभी भी जीवित या मृत नहीं मिल सका । मुरलीधर कुइला ने यह भी साक्ष्य दिया है कि जब वह उनके मकान में सत्यवान से

बात कर रहा था तब उन्हें सभी अभियुक्तों ने घेर लिया था और उस पर माणिक मंडल द्वारा तंगी से हमला किया गया जिसके परिणामस्वरूप उसके दाएं नेत्र पर क्षति पहुंची और वह अपनी जान बचाकर वहां से भाग गया किंतु उन्होंने सत्यवान का अपहरण कर लिया । डा. बेपरी ने मुरलीधर कुइला की चिकित्सा परीक्षा की और उन्होंने उसके दाएं नेत्र के नीचे धारदार आयुध से कारित दो घाव देखे । चिकित्सक द्वारा क्षति रिपोर्ट जारी की गई । मनोरंजन ग्राम सतमा स्थित अपने जीजा के मकान की ओर भाग गया था और वहां पहुंच कर उसने अर्धेन्दु सतपति जिसने पुलिस थाने में शिकायत दर्ज कराई थी, को इस घटना के बारे में बताया । यह घटना तारीख 9 अक्तूबर, 1983 को लगभग 2.00 बजे अपराह्न में घटित हुई थी और शिकायत उसी दिन लगभग 6.15 बजे अपराह्न में दर्ज कराई गई थी जिसके आधार पर मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया । जैसाकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है, पुलिस थाना घटनास्थल से 54 किलोमीटर की दूरी पर है । ऐसी परिस्थितियों में शिकायत दर्ज कराने में कोई विलंब नहीं हुआ है और यह एक महत्वपूर्ण बात है । शिकायत में 7 अभियुक्तों का उनके नाम और पते के साथ उल्लेख किया गया है और इन अभियुक्तों में इस मामले के अपीलार्थी भी सम्मिलित हैं । शिकायतकर्ता अर्धेन्दु सतपति ने घटना नहीं देखी है और मनोरंजन द्वारा दिए गए निर्देशों के आधार पर अभि. सा. 1 ने शिकायत दर्ज कराई । मुरलीधर कुइला ने अपने परिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि उसने सत्यवान और उसके भाई मनोरंजन को मकान के सामने देखा था और वह सत्यवान से बात करने लगा और उसी समय अभियुक्तों ने उन्हें घेर लिया । अभि. सा. 2, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 8 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि मुरलीधर कुइला घटना वाले दिन लगभग 1.30 बजे अपराह्न में सत्यवान से मिलने उनके घर पर आए थे और वे दोनों घर के अंदर बातें कर रहे थे तथा उसी दौरान अभियुक्तों ने प्रवेश किया । अन्वेषण अधिकारी ने कच्चा नक्शा तैयार किया जिसमें उसने सत्यवान के मकान के भीतर की जगह को घटनास्थल दर्शाया है । इसी प्रकार न्यायालय दूसरी इस दलील का मूल्यांकन करने में असमर्थ है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों में केवल परिवार के सदस्य ही हैं और यह कि उनके परिसाक्ष्य हितबद्ध साक्षियों के साक्ष्य जैसे हैं । चूंकि घटना मकान के अंदर घटित हुई है, इसलिए केवल परिवार के सदस्य ही इस घटना को देख सकते थे । मुरलीधर कुइला एक स्वतंत्र साक्षी है और वह भी घटना के दौरान आहत हुआ है । इस साक्षी के परिसाक्ष्य से अन्य

प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य की सम्पुष्टि होती है । यह सत्य है कि अपीलार्थियों में से दो अपीलार्थी अलग-अलग ग्रामों के निवासी हैं । कथन किया गया है कि शिकायत में उनके नामों का उल्लेख उनके निवास स्थान के साथ किया गया है जो अतिशीघ्र दर्ज कराई गई थी । अभि. सा. 2, अभि. सा. 4 और अभि. सा. 8 ने घटना में उपरोक्त दोनों अभियुक्तों द्वारा भाग लिए जाने के संबंध में साक्ष्य दिया है और उनकी शनाख्त भी की है । अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा में ऐसा कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है जिसका संबंध विधिविरुद्ध जमाव में अभियुक्तों की उपस्थिति या अनुपस्थिति से इनकार किए जाने से हो । यहां तक कि (प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से) साक्षियों को इस संबंध में कोई सुझाव भी नहीं दिया गया है । यह उल्लेख करना भी सुसंगत होगा कि इन अभियुक्तों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपने उत्तर में घटनास्थल पर अपनी मौजूदगी से इनकार नहीं किया है । दूसरी ओर घटना में अभियुक्तों की मौजूदगी अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य द्वारा सिद्ध की गई है । उद्धृत विनिश्चय के तथ्यों के आधार पर 29 अभियुक्तों का विचारण किया गया है और दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य को विश्वसनीय पाया गया है और इन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने अपने परिसाक्ष्य में कुछ अभियुक्तों के नामों का उल्लेख नहीं किया है और उन अभियुक्तों के विरुद्ध किसी भी ठोस साक्ष्य के अभाव में उन्हें इस न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया है । (पैरा 7, 8, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 7 एस. सी. सी. 415 : **अकबर शेख और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ।	5

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 2147 और 2295.

1991 की दांडिक अपील सं. 7 में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 9 फरवरी, 2009 को पारित निर्णय के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से श्री पी. के. घोष (ज्येष्ठ काउंसेल)

प्रत्यर्थी की ओर से श्री जॉयदीप मजूमदार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सी. नागप्पन ने दिया ।

न्या. नागप्पन – ये दोनों अपीलें 1991 की दांडिक अपील सं. 7 में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 9 फरवरी, 2009 को पारित निर्णय के विरुद्ध की गई हैं ।

2. 1991 की दांडिक अपील सं. 7 में के अपीलार्थी मार्च, 1987 के सेशन विचारण मामला सं. XIV में, जो पांचवें अपर सेशन न्यायाधीश, मिदनापुर के समक्ष लंबित था, अभियुक्त 1 से 5, 10 और 25 हैं । इन अपीलार्थियों का विचारण अन्य 28 अभियुक्तों के साथ भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 148, 364/149, 302/149 और 307/149 के अधीन अभिकथित अपराधों के लिए किया गया था । सेशन न्यायालय ने अभियुक्त 1 से 5, 10 और 25 को दंड संहिता की धारा 148, 324/149 और 364/149 के अधीन आरोपों का दोषी पाया किंतु दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन आरोप का दोषी नहीं पाया । अभियुक्त 1 से 5, 10 और 25 को दंड संहिता की धारा 364/149 के अधीन दोषसिद्ध किए जाने पर 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और प्रत्येक को एक-एक हजार रुपए जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त छह मास का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया; दंड संहिता की धारा 148 के अधीन दोषसिद्ध किए जाने पर प्रत्येक अभियुक्त को एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया तथा दंड संहिता की धारा 324/149 के अधीन दोषसिद्ध किए जाने पर एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया । साथ ही सेशन न्यायालय ने शेष 28 अभियुक्तों को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया ।

3. इस दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित होकर अभियुक्त 1 से 5, 10 और 25 ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष 1991 की दांडिक अपील सं. 7 प्रस्तुत की । उच्च न्यायालय ने तारीख 9 फरवरी, 2009 को पारित अपने निर्णय द्वारा उक्त अपील खारिज कर दी । इस अपील के लंबित रहने के दौरान अभियुक्त 2, 3 और 4 की मृत्यु हो गई । आक्षेपित निर्णय को चुनौती देते हुए ज्ञानेश्वर श्यामल (अभियुक्त 25) ने 2009 की दांडिक अपील सं. 2147 और माणिक मंडल (अभियुक्त 1), अमर मंडल (अभियुक्त 5) और मिहिर पात्रा (अभियुक्त 10) ने इस न्यायालय के समक्ष 2009 की अपील सं. 2295 प्रस्तुत की । इन दोनों अपीलों की सुनवाई एक साथ की गई है ।

4. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है – जीतोबाहन, श्रीमती खिरोडा (अभि. सा. 3) का पति है । मृतक सत्यवान उनका अविवाहित बड़ा पुत्र है और मनोरंजन मंडल (अभि. सा. 8) उनका छोटा पुत्र है । सभी ग्राम कर्थनाला में साथ-साथ रहते थे । मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) मृतक सत्यवान का मित्र है । तारीख 9 अक्तूबर, 1983 को 9.00 और 10.00 बजे पूर्वाह्न के बीच अभियुक्त हरिराम मंडल के मवेशियों ने जीतोबाहन (अभि. सा. 2) के मकान के पीछे की ओर लगे हुए कुंदरी पौधों को नष्ट कर दिया । सत्यवान ने मवेशियों को वहां से खदेड़ दिया और इस बात से हरिराम मंडल का पुत्र माणिक मंडल क्रोधित हो गया जिसने अपने हाथ में लिए हुए तीर-कमान से उस पर वार किया । सत्यवान मकान के अंदर आ गया । यह भी अभिकथन किया गया है कि उन दोनों के बीच राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता चल रही थी । दोपहर के समय उसी दिन अपीलार्थियों सहित सभी अभियुक्त जो लाठियों, तंगियों, और तीर-कमानों से लैस थे, गोलक मंडल के मकान में एकत्र हो गए जो सत्यवान के मकान से 30 कदम की दूरी पर है । लगभग 1.30 बजे अपराह्न में मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) सत्यवान के मकान पर आया और अंदर आकर उससे बात करने लगा । इसी दौरान सभी अभियुक्त, जो हथियारों से लैस थे, वहां आए और उन्होंने सत्यवान और मुरलीधर को घेर लिया । माणिक मंडल (अभियुक्त 1) ने सत्यवान पर तंगी (काटने के लिए प्रयोग किए जाने वाला धारदार आयुध) से वार किया और उसने मुरलीधर (अभि. सा. 4) के दाएं नेत्र पर भी तंगी से वार किया । मुरलीधर (अभि. सा. 4) वहां से भाग गया । अभियुक्तों ने सत्यवान पर हमला किया और वे उसे गोलक मंडल के मकान पर ले गए । इसके पश्चात् सत्यवान कभी भी मृत या जीवित नहीं पाया गया । सत्यवान के माता-पिता (अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3) और भाई मनोरंजन (अभि. सा. 8) ने यह घटना देखी थी । मनोरंजन (अभि. सा. 8) अपनी जान बचाकर ग्राम सतमा स्थित अपने जीजा के घर की ओर भागा और उसने अर्धेन्दु सतपति (अभि. सा. 1) को घटना के बारे में बताया और अभि. सा. 1 तुरंत अपनी मोटरसाइकिल से पुलिस थाने के लिए रवाना हुआ जो वहां से लगभग 44 किलोमीटर की दूरी पर है । अर्धेन्दु सतपति (अभि. सा. 1) ने लिखित शिकायत (प्रदर्श-1) दर्ज कराई जो पुलिस उप-निरीक्षक मृगांका शेखर मिश्रा ने प्राप्त की और उसी दिन 6.15 बजे अपराह्न में उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श-1क) के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया । पुलिस को एक वाहन की आवश्यकता हुई और

परिणामस्वरूप पुलिस अगले दिन प्रातःकाल लगभग 5.00 बजे घटनास्थल पर पहुंची । उप-निरीक्षक (अभि. सा. 10) ने अभियुक्तों को तलाश किया किंतु उनका पता नहीं चल सका । अभि. सा. 10 ने अभियुक्त गोलक मंडल के मकान की तलाशी ली और उसने रक्त-रंजित कई वस्तुएं बरामद कीं और इस संबंध में ज्ञापन प्रदर्श-6 और महाजर-6क तैयार किए । अभि. सा. 10 ने मुरलीधर (अभि. सा. 4) को गोपीबल्लभपुर प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र भेजा, यद्यपि डा. पुष्पाराजन घोष द्वारा अभि. सा. 4 को प्राथमिक चिकित्सा सहायता दे दी गई थी । डा. बेपरी (अभि. सा. 9) ने प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र पर मुरलीधर (अभि. सा. 4) की चिकित्सा परीक्षा की और उसके दाएं नेत्र के ऊपर 1.5 इंच × 0.25 इंच माप का कटाव और दाएं नेत्र के नीचे की ओर 0.5 इंच × 0.25 इंच माप का कटाव देखा । उस चिकित्सक द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट प्रदर्श-3 है । उप-निरीक्षक (अभि. सा. 10) ने अन्वेषण पूरा होने पर 35 अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया । सेशन न्यायालय ने आरोप विरचित करने के पश्चात् मामले का विचारण किया जिसमें अभियोजन पक्ष ने 10 साक्षियों की परीक्षा कराई और दस्तावेज चिह्नांकित किए । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से कोई भी साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया । विचारण न्यायालय ने केवल 7 अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया और उन्हें उपरोक्त रूप में दंडादिष्ट किया । अपील किए जाने पर उच्च न्यायालय ने इस दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर वर्तमान अपीलें फाइल की गई हैं ।

5. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री पी. के. घोष ने इस प्रकार दलील दी है :–

(क) अभियोजन पक्षकथन साबित नहीं किया गया है क्योंकि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी शिकायतकर्ता के परिवार के सदस्य हैं ;

(ख) यह तथ्य साबित नहीं हो सका है कि यह घटना मकान के अंदर घटित हुई या बाहर ;

(ग) अपीलार्थियों में से दो अपीलार्थी भिन्न-भिन्न ग्राम के निवासी हैं और घटनास्थल पर उनकी मौजूदगी संदिग्ध है और उन्हें राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता के आधार पर मामले में मिथ्या आलिप्त किया गया है और निचले न्यायालयों ने ऐसे निर्णय पारित करने में त्रुटि की है ;

(घ) किसी भी स्थिति में अपीलार्थियों ने अपराध में सक्रिय रूप से

भाग नहीं लिया है, इसलिए उन्हें संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए ।

विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में **अकबर शेख और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया है ।

6. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री जॉयदीप मजूमदार ने आक्षेपित निर्णय का यह दलील देते हुए समर्थन किया है कि अपीलार्थियों ने घातक आयुधों से लैस होकर मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) पर हमला किया था और सत्यवान की हत्या करने के लिए उसका अपहरण किया तथा उसके पश्चात् सत्यवान कभी भी जीवित या मृत नहीं पाया गया और प्रत्येक अपीलार्थी का आवश्यक रूप से सामान्य उद्देश्य यही था और उनकी दोषसिद्धि और उन पर अधिरोपित दंडादेश कायम रखे जाने योग्य हैं ।

7. अभियोजन पक्षकथन यह है कि अभियुक्तों ने घातक आयुधों से लैस होकर बलवा किया और सत्यवान का उसके निवास से अपहरण किया और उसकी हत्या की । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह तथ्य साबित नहीं किया गया है कि सत्यवान की हत्या अभियुक्त गोलक मंडल के मकान में की गई थी क्योंकि अत्यंत सतर्कता के साथ तलाश किए जाने के बावजूद उसका शव नहीं मिल सका और यह 'अपराध सार' न मिल पाने का मामला है, इसलिए हत्या का आरोप साबित नहीं हुआ है । राज्य ने अभियुक्तों की उक्त अपराध से दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील प्रस्तुत नहीं की है और अब दोषमुक्ति का परिणाम अंतिम हो चुका है । साथ ही विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थियों ने मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) को क्षति पहुंचाने के लिए बलवे में भाग लिया और उन्होंने सत्यवान पर उसकी हत्या करने के आशय से हमला करते हुए उसका अपहरण किया और विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों को ऊपर कथित आरोपों का दोषी पाया । जीतोबाहन (अभि. सा. 2) और उसकी पत्नी श्रीमती खिरोडा (अभि. सा. 3) अपने पुत्र सत्यवान और मनोरंजन (अभि. सा. 8) के साथ ग्राम कर्थनाला में रहते थे । अभि. सा. 2, 3 और 8 के अनुसार घटना के दिन प्रातःकाल में अभियुक्त हरिराम के मवेशियों ने उनके मकान के पीछे की ओर उगे हुए कुंदरी पौधों को नुकसान पहुंचाया था और सत्यवान ने मवेशियों को वहां से भगा दिया था

---

[1] (2009) 7 एस. सी. सी. 415.

और इस बात से खिन्न होकर माणिक मंडल (अभियुक्त 1) ने तीर-कमान से हमला किया और इसके पश्चात् सत्यवान मकान के अंदर आ गया । साक्षियों ने अपने परिसाक्ष्य में यह भी कहा है कि दोपहर के समय तक उस दिन अपीलार्थियों सहित सभी अभियुक्त गोलक मंडल के मकान में एकत्र हुए जो उनके मकान के निकट ही स्थित है और उस समय अपीलार्थी लाठियों, तंगियों और तीर-कमान से लैस थे । अभि. सा. 2, 3 और 8 ने यह भी साक्ष्य दिया है कि मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) उनके मकान पर सत्यवान से मिलने लगभग 1.30 बजे अपराह्न में आया था और वे दोनों उनके मकान में बात कर रहे थे और उसी समय सभी अभियुक्त हथियारों से लैस होकर वहां आए और उन्होंने सत्यवान और मुरलीधर कुइला को घेर लिया । माणिक मंडल (अभियुक्त 1) ने सत्यवान पर तंगी से वार किया और उसने मुरलीधर कुइला के दाएं नेत्र के ऊपर भी तंगी से हमला किया और सभी अभियुक्तों ने सत्यवान पर हमला किया और वे उसे अभियुक्त गोलक मंडल के मकान पर ले गए और इसके पश्चात् सत्यवान कभी भी जीवित या मृत नहीं मिल सका । मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) ने यह भी साक्ष्य दिया है कि जब वह उनके मकान में सत्यवान से बात कर रहा था तब उन्हें सभी अभियुक्तों ने घेर लिया था और उस पर माणिक मंडल (अभियुक्त 1) द्वारा तंगी से हमला किया गया जिसके परिणामस्वरूप उसके दाएं नेत्र पर क्षति पहुंची और वह अपनी जान बचाकर वहां से भाग गया किंतु उन्होंने सत्यवान का अपहरण कर लिया । डा. बेपरी (अभि. सा. 9) ने मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) की चिकित्सा परीक्षा की और उन्होंने उसके दाएं नेत्र के नीचे धारदार आयुध से कारित दो घाव देखे । चिकित्सक द्वारा जारी की गई क्षति-रिपोर्ट प्रदर्श-3 है । मनोरंजन (अभि. सा. 8) ग्राम सतमा स्थित अपने जीजा के मकान की ओर भाग गया था और वहां पहुंच कर उसने अर्धेन्दु सतपति (अभि. सा. 1) जिसने पुलिस थाने में शिकायत दर्ज कराई थी, को इस घटना के बारे में बताया ।

8. यह घटना तारीख 9 अक्तूबर, 1983 को लगभग 2.00 बजे अपराह्न में घटित हुई थी और शिकायत उसी दिन लगभग 6.15 बजे अपराह्न में दर्ज कराई गई थी जिसके आधार पर मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया । जैसाकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है, पुलिस थाना घटनास्थल से 54 किलोमीटर की दूरी पर है । ऐसी परिस्थितियों में शिकायत दर्ज कराने में कोई विलंब नहीं हुआ है और यह एक महत्वपूर्ण बात है । शिकायत में 7 अभियुक्तों का उनके नाम और पते के साथ

उल्लेख किया गया है और इन अभियुक्तों में इस मामले के अपीलार्थी भी सम्मिलित हैं । शिकायतकर्ता अर्धेन्दु सतपति (अभि. सा. 1) ने घटना नहीं देखी है और मनोरंजन (अभि. सा. 8) द्वारा दिए गए निर्देशों के आधार पर अभि. सा. 1 ने शिकायत दर्ज कराई ।

9. मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) ने अपने परिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि उसने सत्यवान और उसके भाई मनोरंजन को मकान के सामने देखा था और वह सत्यवान से बात करने लगा और उसी समय अभियुक्तों ने उन्हें घेर लिया । अभि. सा. 2, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 8 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) घटना वाले दिन लगभग 1.30 बजे अपराह्न में सत्यवान से मिलने उनके घर पर आए थे और वे दोनों घर के अंदर बातें कर रहे थे तथा उसी दौरान अभियुक्तों ने प्रवेश किया । अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 10) ने कच्चा नक्शा (प्रदर्श-5) तैयार किया जिसमें उसने सत्यवान के मकान के भीतर की जगह को घटनास्थल दर्शाया है । इसी प्रकार हम दूसरी इस दलील का मूल्यांकन करने में असमर्थ हैं कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों में केवल परिवार के सदस्य ही हैं और यह कि उनके परिसाक्ष्य हितबद्ध साक्षियों के साक्ष्य जैसे हैं । चूंकि घटना मकान के अंदर घटित हुई है, इसलिए केवल परिवार के सदस्य ही इस घटना को देख सकते थे । मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) एक स्वतंत्र साक्षी है और वह भी घटना के दौरान आहत हुआ है । इस साक्षी के परिसाक्ष्य से अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य की सम्पुष्टि होती है ।

10. यह सत्य है कि अपीलार्थियों में से दो अपीलार्थी (अभियुक्त 10 और अभियुक्त 25) अलग-अलग ग्रामों के निवासी हैं । जैसाकि पहले ही कथन किया गया है कि शिकायत में उनके नामों का उल्लेख उनके निवास स्थान के साथ किया गया है जो अतिशीघ्र दर्ज कराई गई थी । अभि. सा. 2, अभि. सा. 4 और अभि. सा. 8 ने घटना में उपरोक्त दोनों अभियुक्तों द्वारा भाग लिए जाने के संबंध में साक्ष्य दिया है और उनकी शनाख्त भी की है । अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा में ऐसा कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है जिसका संबंध विधिविरुद्ध जमाव में अभियुक्तों की उपस्थिति या अनुपस्थिति से इनकार किए जाने से हो । यहां तक कि (प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से) साक्षियों को इस संबंध में कोई सुझाव भी नहीं दिया गया है । यह उल्लेख करना भी सुसंगत होगा कि इन अभियुक्तों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपने उत्तर में

घटनास्थल पर अपनी मौजूदगी से इनकार नहीं किया है । दूसरी ओर घटना में अभियुक्तों की मौजूदगी अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य द्वारा सिद्ध की गई है ।

11. ऊपर उद्धृत विनिश्चय के तथ्यों के आधार पर 29 अभियुक्तों का विचारण किया गया है और दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य को विश्वसनीय पाया गया है और इन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने अपने परिसाक्ष्य में कुछ अभियुक्तों के नामों का उल्लेख नहीं किया है और उन अभियुक्तों के विरुद्ध किसी भी ठोस साक्ष्य के अभाव में उन्हें इस न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया है ।

12. इस प्रकृति के मामले में अभियोजन पक्ष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह यह सिद्ध करे – (i) क्या अपीलार्थी घटनास्थल पर मौजूद थे ? और (ii) क्या उन्होंने सामान्य उद्देश्य में भाग लिया था ? अपीलार्थियों ने निर्विवादित रूप से सत्यवान के घर में अचानक प्रवेश किया था और वे घातक आयुधों से लैस थे और उन्होंने सत्यवान तथा मुरलीधर कुइला (अभि. सा. 4) पर हमला किया था और साथ ही सत्यवान की हत्या करने के लिए उसका अपहरण किया था । गोलक मंडल के मकान पर अपीलार्थियों के जमा होने से लेकर सत्यवान का अपहरण किए जाने तक सभी प्रक्रमों पर उन्होंने विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य में भाग लिया था । हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में ऐसी कोई कमी नहीं है जिसके आधार पर हस्तक्षेप किया जा सके ।

13. इन अपीलों में कोई सार नहीं है और ये खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस.

लीलावती अग्रवाल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा

बनाम

झारखंड राज्य

1 अप्रैल, 2016

न्यायमूर्ति दीपक मिश्र, न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा और
न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ

भूमि अर्जन (संशोधन) अधिनियम, 1984 – धारा 30(2) [सपठित भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 23(2) और 28] – उपबंध का लागू होना – कलक्टर या न्यायालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील में उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 30 अप्रैल, 1982 के पश्चात् पारित आदेश को धारा 30(2) लागू होती है, भले ही ऐसा अधिनिर्णय तारीख 30 अप्रैल, 1982 से पूर्व क्यों न किया गया हो – अतः भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की संशोधित धारा 23(2) और 28 के उपबंध 30 अप्रैल, 1982 को उच्च न्यायालय में लंबित अपील को लागू होंगे ।

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का 1) – धारा 30 का परंतुक – प्रतिकर – दावाकर्ताओं को यदि भूमि के कब्जा लेने की तारीख से एक वर्ष के भीतर ऐसा प्रतिकर नहीं दिया गया है तो ऐसे प्रतिकर के रकम को एक वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति की तारीख से 15% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज बढ़ता जाएगा ।

उक्त मामले में मुआवजा से संबंधित अधिनिर्णय मार्च, 1963 को कलक्टर द्वारा पारित किया गया था और अधिनियम की धारा 18 के अधीन निदेश का निपटान 10 जून, 1968 को अपर जिला न्यायाधीश द्वारा किया गया था । निर्देश न्यायालय ने भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (संक्षेप में 'अधिनियम') के अधीन कलक्टर द्वारा मंजूर प्रतिकर को बढ़ाया था । दावाकर्ता ने और प्रतिकर का दावा करते हुए उच्च न्यायालय को अपील की । अपील के लंबित रहने के दौरान, भूमि अर्जन (संशोधन) विधेयक, 1982 संसद् में 30 अप्रैल, 1982 को पुरःस्थापित किया गया और भूमि अर्जन (संशोधन) अधिनियम, 1984 के रूप में विधि बन गया जब उसे 24 सितंबर, 1984 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई । उच्च न्यायालय ने तारीख 6 दिसंबर, 1984 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा अपील का

निपटान किया । प्रतिकर के दर को बढ़ाते हुए उसने प्रतिकर पर संदेय ब्याज की दर को भी बढ़ाया और संशोधन अधिनियम पर ध्यान देते हुए 30 प्रतिशत का मुआवजा अधिनिर्णीत किया । उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश की चुनौती इस न्यायालय के समक्ष दी गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – तारीख 30 अप्रैल, 1982 के पूर्व दिए गए लंबनाधीन निर्देश में भी, यदि सिविल न्यायालय 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच अधिनिर्णय करता है तो धारा 30(2) लागू होगी और तद्द्वारा वर्धित मुआवजा दावाकर्ता को उपलब्ध होगा । चूंकि धारा 30(2) उसी तर्काधार के कारण समतुल्यता द्वारा संशोधन अधिनियम की क्रमशः धारा 15(ख) और धारा 18 द्वारा मूल अधिनियम की धारा 23(2) और धारा 28 दोनों संशोधनों के बारे में है इसलिए यह उन तारीखों के बीच सिविल न्यायालय द्वारा किए गए अधिनियमों को लागू होती है । विनिश्चयों में यह विरोध कि क्या संक्रमणकालीन उपबंधों की धारा 30(2) द्वारा संशोधन अधिनियम की धारा 15(ख) द्वारा यथासंशोधित धारा 23(2) उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में लंबित अपीलों को लागू होगी, का समाधान संविधान न्यायपीठ द्वारा रघुवीर सिंह वाले मामले में यह कहते हुए अभिनिर्धारित किया गया कि तारीख 13 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच कलक्टर या न्यायालय द्वारा किए गए अधिनिर्णय को ही संक्रमणकालीन उपबंध की धारा 30(2) लागू होगी । निर्बंधित निर्वचन का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि धारा 23(2) उस समय लंबित सिविल न्यायालय के अधिनिर्णय को लागू नहीं होगी जब अधिनियम प्रवृत्त हुआ या उसके पश्चात् । इस मामले में, स्वीकार्यतः सिविल न्यायालय का अधिनिर्णय अधिनियम के प्रवृत्त होने अर्थात् 28 अप्रैल, 1985 के पश्चात् किया गया था । रघुवीर सिंह वाले मामले में कथित सिद्धांत और के. एस. परिपूर्णन (II) वाले मामले में जो स्पष्ट किया गया है, के परिशीलन से हम यह नहीं पाते कि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय संविधान न्यायपीठ के नजीर के प्रतिकूल है । यह धारा 30(2) का भिन्न निर्वचन भी नहीं करता जैसा संविधान न्यायपीठ द्वारा कहा गया है । वस्तुतः, के. एस. परिपूर्णन (II) वाला मामला स्पष्टतः ऐसे अधिनिर्णयों के बारे में अभिनिर्धारित करता है जो अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् न्यायालय द्वारा पारित किए गए हैं और जो रघुवीर सिंह वाले मामले में अधिकथित तर्काधार के अनुकूल हैं । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने केवल यह मत व्यक्त किया कि रघुवीर सिंह वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा किया गया निर्बंधित निर्वचन का यह

संकेत नहीं निकाला जाना चाहिए कि धारा 23(2) उस समय जब अधिनियम प्रवृत्त हुआ या उसके पश्चात् लंबित सिविल न्यायालय के अधिनिर्णयों को लागू नहीं होगी । इस प्रकार, ऐसा संविवाद जिस पर तीन न्यायाधीशों का न्यायपीठ विचार कर रहा था, पूर्णतः भिन्न था और उसके द्वारा व्यक्त मत पूर्णतः रघुवीर सिंह वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के अनुकूल है । इसके अतिरिक्त, यह अधिनियम की धारा 23(2) के उपबंधों के भी अनुकूल है । अतः, न्यायालय के. एस. परिपूर्णन (II) में व्यक्त मत से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाता जैसाकि न्यायालय इस राय से सहमत है कि उसने रघुवीर सिंह वाले मामले में निष्पादित नियम का उचित अर्थ लगाया है । ऐसा कहते हुए, साधारणतः न्यायालय को मामला दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष रखे जाने का निदेश देना चाहिए किंतु ऐसा करना आवश्यक नहीं है । अधिवक्ताओं ने न्यायालय को सूचित किया कि इस मामले में अधिनिर्णय 30 सितंबर, 1985 को निर्देश न्यायालय द्वारा पारित किया गया था । अतः, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि के. एस. परिपूर्णन (II) में कथित सिद्धांत हू-ब-हू लागू होगा । (पैरा 9, 10 और 11)

अधिनियम की धारा 34 का परंतुक स्थिति को और स्पष्ट करता है । परंतुक में यह उल्लेख है कि "यदि ऐसा प्रतिकर" भूमि के कब्जा लेने की तारीख से एक वर्ष के भीतर नहीं दिया जाता है तो "प्रतिकर की रकम या उसके भाग पर जो ऐसी तारीख की समाप्ति के पूर्व संदत्त नहीं किया गया या जमा नहीं किया गया" एक वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति की तारीख से 15% प्रतिवर्ष से ब्याज बढ़ता रहेगा । यह कल्पनातीत है कि मुआवजा रकम एक वर्ष की समाप्ति से ब्याज के वर्धित दर को ही लागू होगा और पूर्वगामी अवधि के दौरान मुआवजे पर कोई ब्याज नहीं लगेगा । विधान-मंडल का यह आशय था कि जैसे ही अधिनिर्णय पारित किया जाता है व्यक्ति के हाथों में कुल रकम पहुंच जाए और किसी भी दशा में जब उसे उसकी भूमि के कब्जे से वंचित किया जाता है । उक्त रकम के संदाय करने में कोई विलंब होने पर पक्षकार को जब तक वह संदाय प्राप्त नहीं करता है उक्त रकम पर ब्याज पाने के लिए समर्थ बनाएगा । धारा 34 के अधीन ब्याज के संदाय के प्रयोजन के लिए भिन्न-भिन्न घटकों में प्रतिकर का बिखराव विधायिका का आशय नहीं था जब वह धारा विरचित या अधिनियमित की गई थी । अतः, अधिनिर्णीत प्रतिकर के हकदार व्यक्ति मुआवजे सहित कुल रकम पर ब्याज भी पाने के हकदार हैं । (पैरा 13)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2001] (2001) 7 एस. सी. सी. 211 :
सुंदर बनाम **भारत संघ** ; 13

[1995] (1995) 1 एस. सी. सी. 367 :
के. एस. परिपूर्णन (II) बनाम **केरल राज्य और अन्य** ; 1

[1989] (1989) 2 एस. सी. सी. 754 :
भारत संघ और एक अन्य बनाम **रघुवीर सिंह (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा** ।
1

निर्दिष्ट निर्णय

[2008] (2008) 15 एस. सी. सी. 464 :
लीलावती अग्रवाल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा बनाम **झारखंड राज्य** ; 1

[1994] (1994) 5 एस. सी. सी. 593 :
के. एस. परिपूर्णन (I) बनाम **केरल राज्य** ; 12

[1985] (1985) 1 एस. सी. सी. 582 :
के. कामल जम्मान्नीवारु बनाम **विशेष भूमि अर्जन अधिकारी** ; 5

[1985] (1985) 3 एस. सी. सी. 737 :
भाग सिंह बनाम **चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र** ; 5

[1979] 1979 की सिविल अपील सं. 3267, 1 मई, 1985 को विनिश्चित :
पंजाब राज्य बनाम **मोहिन्दर सिंह** । 6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की सिविल अपील सं. 1363.

1986 की मूल डिक्री सं. 32 और 33 से अपील में झारखंड उच्च न्यायालय की रांची स्थित न्यायपीठ के तारीख 19 फरवरी, 2003 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री हिमांशु मुंशी, डा. गजेन्द्र प्रसाद सिंह, दुर्गा दत्त, मनीष गरानी

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अजीत कुमार सिन्हा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, गोपाल प्रसाद शाशंक सिंह, अनीप सचदे, सुश्री अंजली चौहान, हिमांशु मुंशी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्र ने दिया ।

न्या. मिश्र – लीलावती अग्रवाल (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा बनाम **झारखंड राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **रघुवीर सिंह (मृत) विधिक प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा**[2] वाले मामले के निर्णय के पैरा 31 और 34 को निर्दिष्ट करने के पश्चात् **के. एस. परिपूर्णन (II)** बनाम **केरल राज्य और अन्य**[3] वाले मामले के विनिश्चय की शुद्धता पर संदेह व्यक्त किया और प्रसंगतः इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "**रघुवीर सिंह** वाले मामले में लक्ष्य बिंदु नियत किए गए थे अर्थात् कलक्टर द्वारा अधिनिर्णय या निर्देश न्यायालय का विनिश्चय तारीख 3 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच किया होना चाहिए था । पैरा 34 की अंतिम पंक्ति में यह स्पष्टतः कहा गया है कि प्रत्येक मामला पूर्वोक्त अंतिम बिंदु के बीच विनिश्चित किया गया "होना चाहिए" । **परिपूर्णन (II)** वाले मामले के पैरा 4 में यह मत व्यक्त किया गया कि निर्बंधनात्मक निर्वचन नहीं किया जाना चाहिए । ससम्मान हम इस मत को समझ नहीं पा रहे हैं । वस्तुतः तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उससे भिन्न निर्वचन देने का प्रयास किया था जो विनिर्दिष्टतः संविधान न्यायपीठ द्वारा दिया गया था ।
>
> अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हुए **परिपूर्णन (II)** वाले मामले के पैरा 4 में व्यक्त मत की शुद्धता पर विचार करने के लिए मामला वृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट करना उचित समझते हैं कि जैसा **रघुवीर सिंह** वाले मामले के पैरा 34 में कहा गया है को देखते हुए निर्बंधित निर्वचन नहीं किया जाना चाहिए । अभिलेख आवश्यक ब्यौरों के साथ भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाए ।"

पूर्वोक्त आदेश के आधार पर मामला हमारे समक्ष रखा गया है ।

---

[1] (2008) 15 एस. सी. सी. 464.

[2] (1989) 2 एस. सी. सी. 754.

[3] (1995) 1 एस. सी. सी. 367.

2. जैसा हम समझते हैं, यह राय व्यक्त करना आवश्यक है कि क्या **के. एस. परिपूर्णन (II)** वाले मामले के विनिश्चय की शुद्धता पर विचार संविधान न्यायपीठ द्वारा किए जाने योग्य है क्योंकि उक्त मामले का विनिश्चय हम पर आबद्धकर है ।

3. संविवाद का मूल्यांकन करने के लिए, **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 30, 31 और 34 को दोहराना हम उचित समझते हैं :–

> "30. अब हम निर्देश के गुणागुण पर विचार करेंगे । यह निर्देश भूमि अर्जन (संशोधन) अधिनियम, 1984 की धारा 30(2) के निर्वचन तक ही सीमित है । संशोधन अधिनियम की अधिनियमिति से पूर्व भूमि अर्जन अधिनियम (जिसे संक्षेप में 'मूल अधिनियम' कहा गया है) की धारा 23(2) में उपबंधित तोषण अधिनियम की धारा 23(1) के अनुसार संगणित भूमि के बाजार मूल्य का 15% है, और यह तोषण अर्जन की अनिवार्य प्रतिफल के रूप में उपबंधित है । भूमि अर्जन संशोधन विधेयक, 1982 लोक सभा में 30 अप्रैल, 1982 को पेश किया गया था और अधिनियमिति के पश्चात् भूमि अर्जन संशोधन अधिनियम, 1984 तारीख 24 सितंबर, 1984 से प्रवर्तन में आया । संशोधन अधिनियम की धारा 15 ने मूल अधिनियम की धारा 23(2) में संशोधन किया तथा '15 प्रतिशत' शब्दों के स्थान पर '30 प्रतिशत' शब्द प्रतिस्थापित किए । संसद् का आशय यह था कि वर्धित तोषण का फायदा उस तारीख से पूर्व की गई अर्जन कार्यवाहियों की बाबत, यद्यपि सीमित मात्रा में प्राप्त होना चाहिए । उसने संशोधन अधिनियम की धारा 30(2) अधिनियमित करके उस आशय को कार्यान्वित करने की ईप्सा की । संशोधन अधिनियम की धारा 30(2) अधिनियमित करके उस आशय को कार्यान्वित करने की ईप्सा की । संशोधन अधिनियम की धारा 30(2) में यह उपबंधित है कि –
>
> > "(2) प्रधान अधिनियम की .....धारा 23 की उपधारा (2) के उपबंध, इस अधिनियम की ..... धारा 15 के खंड (ख) द्वारा यथासंशोधित ..... कलक्टर या न्यायालय द्वारा किए गए किसी अधिनिर्णय या 30 अप्रैल, 1982 [लोक सभा में भूमि अर्जन (संशोधन) विधेयक, 1982 पेश किए जाने की तारीख] के पश्चात् और इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व प्रधान अधिनियम के उपबंधों के अधीन किए गए ऐसे किसी अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील में उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा

पारित किसी आदेश को भी, और उसके संबंध में, लागू होंगे और लागू किए हुए समझे जाएंगे ।"

31. धारा 30(2) का अर्थान्वयन करने पर, यह न्यायसंगत और स्पष्ट है कि यहां विनिर्दिष्ट मूल अधिनियम की धारा 11 के अधीन कलक्टर द्वारा दिया गया अधिनिर्णय और न्यायालय द्वारा किया गया अधिनिर्णय मूल अधिनियम की धारा 19 के अधीन न्यायालय के समक्ष कलक्टर द्वारा किए गए निर्देश पर मूल अधिनियम की धारा 23 के अधीन आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय द्वारा किया गया अधिनिर्णय है । इस बाबत कोई संदेह नहीं हो सकता कि धारा 30(2) में 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के मध्य कलक्टर द्वारा किए गए अधिनिर्णय की बाबत बढ़े हुए तोषण का फायदा आशयित है । इसी प्रकार वर्धित तोषण का फायदा धारा 30(2) द्वारा 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के मध्य न्यायालय द्वारा किए गए अधिनिर्णय के मामले में भी विस्तारित की गई है, यद्यपि ऐसा 30 अप्रैल, 1982 से पूर्व किए गए अधिनिर्णय से किए गए निर्देश पर किया जाएगा ।

* * * *

34. हमारा ध्यान उपर्युक्त पंजाब राज्य **बनाम** मोहिन्दर सिंह, (1986) 1 एस. सी. सी. 365 वाले मामले में किए गए आदेश की ओर आकृष्ट किया गया, किंतु उन कारणों के कथन के अभाव में जिनसे विद्वान् न्यायाधीश उस मत से भिन्न मत अपनाने को प्रेरित हुए हमारे लिए इस विनिश्चय का पृष्ठांकन करना कठिन है । इसका उपर्युक्त भाग सिंह **बनाम** चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र, (1985) 3 एस. सी. सी. 737 वाले मामले के निर्णय में जैसा कि हमने पहले कहा, धारा 30(2) के समस्त तात्विक उपबंधों को सम्यक् महत्व नहीं दिया गया है और परिणामस्वरूप हम इससे सहमत नहीं हैं । विद्वान् न्यायाधीशों ने इस सिद्धांत को लागू किया कि अपील धारा 18 के अधीन निर्देश द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रारंभ की गई कार्यवाही का चालू रहना होता है किंतु, हमारी राय में, साधारण सिद्धांत का प्रवर्तन की अपेक्षा स्वयं कानूनी उपबंध के परिसीमित निबंधनों को अधिमान दिया जाना चाहिए । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस साधारण सिद्धांत का पुरजोर अवलंब लिया है कि अपील मूल मामले की पुनर्सुनवाई होती है, किंतु हमारा इस बाबत समाधान नहीं हुआ है कि

वह इस सिद्धांत का आश्रय लेने में सही है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह बताया कि 'या' शब्द धारा 30(2) में कलक्टर या न्यायालय द्वारा किए गए अधिनिर्णय और अपील में उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश के प्रति निर्देश के मध्य वियोजक के रूप में प्रयुक्त किया गया है और उसके अनुसार उचित रूप में उसे समझने पर इससे यह अभिप्रेत है कि 30 अप्रैल, 1982 से 24 सितंबर, 1984 के मध्य की कालावधि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के अपीली आदेश को उसी प्रकार लागू होती है जिस प्रकार यह कलक्टर या न्यायालय द्वारा किए गए अधिनिर्णय को लागू होती है । हम यह समझते हैं कि संसद् का आशय यह कहना है कि धारा 30(2) का फायदा पूर्वोक्त दो तारीखों के मध्य किए गए कलक्टर या न्यायालय के अधिनिर्णय अथवा उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय के उस अपीली आदेश को भी उपलब्ध होगा जो उक्त दो तारीखों के मध्य कलक्टर या न्यायालय के अधिनिर्णय से उद्भूत होगा । 'या' शब्द उस प्रक्रम के प्रति निर्देश में प्रयुक्त हुआ है जब कार्यवाही उस समय की गई जब धारा 30(2) के फायदा को विस्तारित करने की ईप्सा की गई । यदि कार्यवाही का पूर्वोक्त दो तारीखों के मध्य कलक्टर या न्यायालय द्वारा किए गए अधिनिर्णय के साथ ही पर्यवसान हो गया है, तो धारा 30(2) की प्रसुविधा पूर्वोक्त दो तारीखों के मध्य किए गए ऐसे अधिनिर्णय को भी प्राप्त होगी । यदि कार्यवाही उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील के प्रक्रम तक पहुंच गई है, तो उस प्रक्रम पर भी धारा 30(2) की प्रसुविधा होगी । तथापि, प्रत्येक स्थिति में, कलक्टर या न्यायालय का अधिनिर्णय 30 अप्रैल, 1982 और 14 सितंबर, 1984 के मध्य किया जाना चाहिए ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

4. **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में, संविधान न्यायपीठ को निर्दिष्ट विधि प्रश्न यह था :–

"क्या भूमि अर्जन (संशोधन) अधिनियम, 1984 द्वारा यथा-संशोधित भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के अधीन दावाकर्ता उन तारीखों के होते हुए भी जिस पर अर्जन कार्यवाहियां आरंभ की गई थीं या ऐसी तारीख जिन पर अधिनिर्णय पारित किए गए थे, बाजार मूल्य के 30 प्रतिशत पर मुआवजा के हकदार हैं ?"

5. उक्त मामले में मुआवजा से संबंधित अधिनिर्णय मार्च, 1963 को कलक्टर द्वारा पारित किया गया था और अधिनियम की धारा 18 के अधीन निदेश का निपटान 10 जून, 1968 को अपर जिला न्यायाधीश द्वारा किया गया था । निर्देश न्यायालय ने भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (संक्षेप में 'अधिनियम') के अधीन कलक्टर द्वारा मंजूर प्रतिकर को बढ़ाया था । दावाकर्ता ने और प्रतिकर का दावा करते हुए उच्च न्यायालय को अपील की । अपील के लंबित रहने के दौरान, भूमि अर्जन (संशोधन) विधेयक, 1982 संसद् में 30 अप्रैल, 1982 को पुरःस्थापित किया गया और भूमि अर्जन (संशोधन) अधिनियम, 1984 के रूप में विधि बन गया जब उसे 24 सितंबर, 1984 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई । उच्च न्यायालय ने तारीख 6 दिसंबर, 1984 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा अपील का निपटान किया । प्रतिकर के दर को बढ़ाते हुए उसने प्रतिकर पर संदेय ब्याज की दर को भी बढ़ाया और संशोधन अधिनियम पर ध्यान देते हुए 30 प्रतिशत का मुआवजा अधिनिर्णीत किया । उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश की चुनौती इस न्यायालय के समक्ष दी गई और **के. कामल जम्मान्नीवारु** बनाम **विशेष भूमि अर्जन अधिकारी**[1] और **भाग सिंह** बनाम **चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र**[2] वाले मामलों के विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मामला वृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट करना तर्कसंगत समझा जिसका परिणाम अंततः **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के अधिनिर्णय के रूप में हुआ ।

6. **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले की उक्ति को समझने के लिए यह समझना आवश्यक है कि **भाग सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में क्या कहा गया था और **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में क्या उलटा गया है । **भाग सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ को संशोधन अधिनियम की धारा 30(2) के निर्वचन से संबंधित विधि प्रश्न पर विचार करना था । उक्त मामले में अधिनिर्णय 9 अक्तूबर, 1975 को भूमि अर्जन कलक्टर द्वारा पारित किया गया था और निर्देश न्यायालय ने 31 जुलाई, 1979 को अधिनिर्णय पारित किया था । निर्देश न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय की चुनौती उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में की गई । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **पंजाब राज्य** बनाम

---

[1] (1985) 1 एस. सी. सी. 582.
[2] (1985) 3 एस. सी. सी. 737.

मोहिन्दर सिंह[1] और **के. कामल जम्मान्नीवारु** (उपरोक्त) वाले मामले के विनिश्चयों पर विचार किया और **मोहिन्दर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त मत से सहमति व्यक्त की और **के. कामल जम्मान्नीवारु** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए मत से असहमति व्यक्त की । तथापि, तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **भाग सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में पूर्व तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय से सहमत होते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> प्रथमतः हम इस बात पर विचार करेंगे कि उस समय स्थिति क्या होगी, यदि धारा 30 की उपधारा (1) अधिनियमित नहीं की गई होती और धारा 28 केवल उस तारीख से प्रभावी होती जिस पर वह बनाई गई थी अर्थात् तारीख 24 सितंबर, 1984 को जब संशोधन अधिनियम को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई थी और प्रवृत्त किया गया था । यदि संशोधन अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को प्रतिकर के अवधारण के लिए कोई कार्यवाहियां अधिनियम की धारा 11 के अधीन कलक्टर के समक्ष अथवा अधिनियम की धारा 18 के अधीन निर्देश पर न्यायालय के समक्ष लंबित थी, तो संशोधित धारा 23 की उपधारा (2) और धारा 28 स्वीकार्यतः ऐसी कार्यवाहियों को लागू होंगी । वास्तव में यह बात प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने स्वीकार की थी और उसे **के. कामल जम्मान्नीवारु** के मामले में भी सही स्थिति के रूप में स्वीकार किया था । **के. कामल जम्मान्नीवारु** के मामले में न्यायालय की ओर से न्यायमूर्ति चिन्नप्पा रेड्डी ने यह मत व्यक्त किया था : "यद्यपि नई धारा 23(2) अनिवार्य रूप से संशोधन अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् कलक्टर या न्यायालय द्वारा किए गए अधिनिर्णय को लागू होती है ।....."

7. दोनों पहलुओं पर ध्यान देते हुए इस मुद्दे को समझना अनिवार्य है जो संविधान न्यायपीठ को विनिर्दिष्ट किया गया था । जैसाकि यह ध्यातव्य है, वृहत्तर न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि निर्देश संशोधन अधिनियम की धारा 30(2) के निर्वचन तक सीमित था । संविधान न्यायपीठ ने संशोधन अधिनियम की धारा 30(2) के प्रतिनिर्दिष्ट संसद् के आशय का उल्लेख किया और उस संदर्भ में यह राय व्यक्त की कि :–

> "32. प्रश्न यह है ; "ऐसे किसी अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील में

---

[1] 1979 की सिविल अपील सं. 3267, 1 मई, 1985 को विनिश्चित ।

उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित किसी आदेश को'' शब्द का क्या अर्थ है ? अपीलार्थियों द्वारा दी गई दलील के अनुसार क्या वे 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच दिए गए कलक्टर या न्यायालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपीलों तक सीमित हैं या वे प्रत्यर्थियों द्वारा दी गई दलीलों के अनुसार 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच निपटाई गई अपीलों को भी सम्मिलित करते हैं, यद्यपि वे 30 अप्रैल, 1982 के पूर्व दिए गए कलक्टर या न्यायालय के अधिनिर्णयों से उद्भूत हैं । हमारी यह राय है कि अपीलार्थियों द्वारा प्रस्तुत निर्वचन को प्रत्यर्थियों द्वारा दिए गए सुझाव पर अधिमान दिया जाना चाहिए । संसद् ने ''किसी ऐसे अधिनिर्णय'' के विरुद्ध अपील के रूप में इसे वर्णित कर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील और उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील के रूप में पहचान की है । प्रत्यर्थियों का यह निवेदन है कि ''किसी ऐसे अधिनिर्णय'' शब्द का अर्थ कलक्टर या न्यायालय द्वारा दिए गए अधिनिर्णय से है और अधिक सीमित अभिप्राय नहीं रखता ; और इस संदर्भ में धारा 30(2) की भाषा का अभिप्राय, अपील में आदेश 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच दिया गया अपील आदेश है जिसमें कलक्टर या न्यायालय के अधिनिर्णय से संबंधित मामले 30 अप्रैल, 1982 से पहले किए गए थे । हमारे विवेकानुसार ''किसी ऐसे अधिनिर्णय'' शब्दों का व्यापक अर्थ नहीं लिया जा सकता जैसा प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा सुझाया गया है । उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के अपीली आदेश की पहचान करते हुए विवरण के ऐसा कोई शब्द लेना आवश्यक नहीं है । सुस्पष्टतः, पैतृक अधिनियम में अनुध्यात विद्यमान श्रेणीबद्ध मंचीय ढांचे को ध्यान में रखते हुए वे अपील आदेश केवल कलक्टर या न्यायालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील से उद्भूत आदेश हो सकते हैं । ''किसी ऐसे अधिनिर्णय'' शब्द का आशय का काफी महत्व है और उस संदर्भ जिसमें धारा 30(2) में शब्द आया है, यह स्पष्ट है कि उनका आशय 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच कलक्टर या न्यायालय द्वारा किए गए अधिनिर्णयों के प्रतिनिर्देश करना । दूसरे शब्दों में संशोधन अधिनियम की धारा 30(2) ऐसे मामलों में वर्धित मुआवजा का फायदा विस्तारित करता है जहां कलक्टर या न्यायालय द्वारा अधिनिर्णय 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच किया गया है या ऐसे अधिनिर्णयों के विरुद्ध अपीलों का विनिश्चय

उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय द्वारा किया गया है चाहे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय 24 सितंबर, 1984 के पहले या उस तारीख के बाद किए गए हों । कुल मिलाकर यह महत्वपूर्ण है कि कलक्टर या न्यायालय द्वारा अधिनिर्णय 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच किए गए होने चाहिए । हम के. कामल जम्मान्नीवारु **बनाम** विशेष भूमि अर्जन अधिकारी वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमत पाते हैं और भाग सिंह **बनाम** चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र वाले मामले में व्यक्त मत से असहमत पाते हैं । हमारी राय में, बाद वाले मामले में धारा 30(2) के विस्तारित अर्थ उस उपधारा की भाषा से युक्तियुक्ततः प्रवाहित नहीं होता । हमें यह प्रतीत होता है कि उस मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने धारा 30(2) में "किसी ऐसे अधिनिर्णय" के विन्यास के समय "ऐसे" शब्द के महत्व का लोप कर दिया । उस शब्द का सम्यक् महत्व दिया जाना चाहिए और हमारे विवेक से निश्चय ही इसका आशय है कि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय को अपील जिसमें वर्धित मुआवजे का फायदा दिया जाना है, तारीख 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच दिए गए कलक्टर या न्यायालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील तक ही सीमित होना चाहिए ।"

8. जैसाकि हम यह पाते हैं कि पूर्वोक्त वृहत्तर न्यायपीठ का विनिश्चय का संबंध केवल दो तारीखों अर्थात् 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच पारित अधिनिर्णय की बाबत मुआवजे की मंजूरी के संबंध में था । संविधान न्यायपीठ के समक्ष मुद्दा संशोधित तारीख के पश्चात् इस प्रकार पारित किसी अधिनिर्णय के संबंध में नहीं था ।

9. **के. एस. परिपूर्णन (II)** (उपरोक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि का मूल्यांकन किया और भूमि अर्जन (संशोधन) अधिनियम, 1984 (1984 का 68) की धारा 30(2) को निर्दिष्ट किया जो एक संक्रमणकालीन उपबंध था तथा संविधान न्यायपीठ के निर्णय के पैरा 31 को दोहराया और आगे इस प्रकार कहा :–

"इस न्यायालय ने स्पष्टतः यह अभिनिर्धारित किया कि 30 अप्रैल, 1982 के पूर्व दिए गए लंबनाधीन निर्देश में भी, यदि सिविल न्यायालय 30 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच

अधिनिर्णय करता है तो धारा 30(2) लागू होगी और तद्द्वारा वर्धित मुआवजा दावाकर्ता को उपलब्ध होगा । चूंकि धारा 30(2) उसी तर्काधार के कारण समतुल्यता द्वारा संशोधन अधिनियम की क्रमशः धारा 15(ख) और धारा 18 द्वारा मूल अधिनियम की धारा 23(2) और धारा 28 दोनों संशोधनों के बारे में है इसलिए यह उन तारीखों के बीच सिविल न्यायालय द्वारा किए गए अधिनियमों को लागू होती है । विनिश्चयों में यह विरोध कि क्या संक्रमणकालीन उपबंधों की धारा 30(2) द्वारा संशोधन अधिनियम की धारा 15(ख) द्वारा यथासंशोधित धारा 23(2) उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में लंबित अपीलों को लागू होगी, का समाधान संविधान न्यायपीठ द्वारा **रघुवीर सिंह** वाले मामले में यह कहते हुए अभिनिर्धारित किया गया कि तारीख 13 अप्रैल, 1982 और 24 सितंबर, 1984 के बीच कलक्टर या न्यायालय द्वारा किए गए अधिनिर्णय को ही संक्रमणकालीन उपबंध की धारा 30(2) लागू होगी । निर्बंधित निर्वचन का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि धारा 23(2) उस समय लंबित सिविल न्यायालय के अधिनिर्णय को लागू नहीं होगी जब अधिनियम प्रवृत्त हुआ या उसके पश्चात् । इस मामले में, स्वीकार्यतः सिविल न्यायालय का अधिनिर्णय अधिनियम के प्रवृत्त होने अर्थात् 28 अप्रैल, 1985 के पश्चात् किया गया था ।'

10. **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांत और **के. एस. परिपूर्णन (II)** (उपरोक्त) वाले मामले में जो स्पष्ट किया गया है, के परिशीलन से हम यह नहीं पाते कि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय संविधान न्यायपीठ के नजीर के प्रतिकूल है । यह धारा 30(2) का भिन्न निर्वचन भी नहीं करता जैसा संविधान न्यायपीठ द्वारा कहा गया है । वस्तुतः, **के. एस. परिपूर्णन (II)** (उपरोक्त) वाला मामला स्पष्टतः ऐसे अधिनिर्णयों के बारे में उपधारित करता है जो अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् न्यायालय द्वारा पारित किए गए हैं और जो **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित तर्काधार के अनुकूल हैं । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने केवल यह मत व्यक्त किया कि **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा किया गया निर्बंधित निर्वचन का यह संकेत नहीं निकाला जाना चाहिए कि धारा 23(2) उस समय जब अधिनियम प्रवृत्त हुआ या उसके पश्चात् लंबित सिविल न्यायालय के अधिनिर्णयों को लागू नहीं होगी । इस प्रकार, ऐसा संविवाद जिस पर तीन न्यायाधीशों का न्यायपीठ विचार कर रहा था, पूर्णतः भिन्न था और उसके

द्वारा व्यक्त मत पूर्णतः **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के अनुकूल है । इसके अतिरिक्त, यह अधिनियम की धारा 23(2) के उपबंधों के भी अनुकूल है । अतः, हम **के. एस. परिपूर्णन (II)** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त मत से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाते जैसाकि हम इस राय से सहमत हैं कि उसने **रघुवीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में निष्पादित नियम का उचित अर्थ लगाया है ।

11. ऐसा कहते हुए, साधारणतः हमें मामला दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष रखे जाने का निदेश देना चाहिए किंतु ऐसा करना आवश्यक नहीं है । अधिवक्ताओं ने हमें सूचित किया कि इस मामले में अधिनिर्णय 30 सितंबर, 1985 को निर्देश न्यायालय द्वारा पारित किया गया था । अतः, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि **के. एस. परिपूर्णन (II)** (उपरोक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांत हू-ब-हू लागू होगा ।

12. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा यह राय व्यक्त की है कि **के. एस. परिपूर्णन (II)** (उपरोक्त) वाले मामले में कथित सिद्धांत लागू नहीं होगा । उक्त मत बोधगम्यतः गलत है । हमारी यह सुविचारित राय है कि अपीलार्थी **के. एस. परिपूर्णन (II)** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि के अनुसार फायदा पाने का हकदार होगा । अधिवक्ता ने यह विवादित नहीं किया है कि अपीलार्थी **के. एस. परिपूर्णन (I)** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले के विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए धारा 23(1क) के अधीन फायदे पाने के हकदार नहीं हैं ।

13. हम अपने कर्तव्य में असफल हो जाएंगे यदि हम दूसरे पहलू पर ध्यान नहीं देते हैं । **सुंदर** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने राय दी है कि :–

> "24. अधिनियम की धारा 34 का परंतुक स्थिति को और स्पष्ट करता है । परंतुक में यह उल्लेख है कि "यदि ऐसा प्रतिकर" भूमि के कब्जा लेने की तारीख से एक वर्ष के भीतर नहीं दिया जाता है तो "प्रतिकर की रकम या उसके भाग पर जो ऐसी तारीख की समाप्ति के पूर्व संदत्त नहीं किया गया या जमा नहीं किया गया" एक वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति की तारीख से 15% प्रतिवर्ष से ब्याज बढ़ता रहेगा । यह कल्पनातीत है कि मुआवजा रकम एक वर्ष की समाप्ति

---

[1] (1994) 5 एस. सी. सी. 593.

[2] (2001) 7 एस. सी. सी. 211.

से ब्याज के वर्धित दर को ही लागू होगा और पूर्वगामी अवधि के दौरान मुआवजे पर कोई ब्याज नहीं लगेगा । विधान-मंडल का यह आशय था कि जैसे ही अधिनिर्णय पारित किया जाता है व्यक्ति के हाथों में कुल रकम पहुंच जाए और किसी भी दशा में जब उसे उसकी भूमि के कब्जे से वंचित किया जाता है । उक्त रकम के संदाय करने में कोई विलंब होने पर पक्षकार को जब तक वह संदाय प्राप्त नहीं करता है उक्त रकम पर ब्याज पाने के लिए समर्थ बनाएगा । धारा 34 के अधीन ब्याज के संदाय के प्रयोजन के लिए भिन्न-भिन्न घटकों में प्रतिकर का बिखराव विधायिका का आशय नहीं था जब वह धारा विरचित या अधिनियमित की गई थी ।

* * * * *

27. हमारे मतानुसार विधि का पूर्वोक्त कथन निर्वचन के ठोस सिद्धांत के अनुसार है । अतः, अधिनिर्णीत प्रतिकर के हकदार व्यक्ति मुआवजे सहित कुल रकम पर ब्याज भी पाने के हकदार हैं । निर्देश का तद्नुसार उत्तर दिया गया ।'

14. हमने पर्याप्त सतर्कता के साथ पूर्वोक्त नज़ीर का निर्देश दिया है जिससे कि रकम की संगणना करते समय प्रत्यर्थी इस पर विचार करेंगे । यह कहने की आवश्यकता नहीं है यदि प्रत्यर्थी निर्णय का पालन नहीं करते तो निर्वाह उद्गृहीत किया जा सकता है और उस दशा में इस पहलू पर भी ध्यान दिया जा सकता है मानो यह डिक्री का भाग गठित करता है ।

15. परिणामतः, अपील मंजूर की जाती है और यह निदेश दिया जाता है कि अपीलार्थी यहां उपरोक्त कथित फायदे के हकदार होंगे । उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उपांतरित किया गया है । प्रत्यर्थियों को छः सप्ताह के भीतर निष्पादन न्यायालय के समक्ष रकम जमा करने का निदेश दिया जाता है । यदि कोई रकम पहले जमा की गई है तो रकम की संगणना करते समय उसको हिसाब में लिया जाएगा । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, खर्च के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता ।

अपील मंजूर की गई ।

पा.

ऋषभ चंद जैन और एक अन्य

बनाम

जिनेश चंद्र जैन

13 अप्रैल, 2016

न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ और न्यायमूर्ति रोहिंटन फाली नरीमन

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 2(2), 96, 115 और आदेश 41, नियम 1 – डिक्री – वादी-प्रत्यर्थी द्वारा हक वाद फाइल किया जाना – वाद के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी-अपीलार्थियों द्वारा अंतर्वर्ती आवेदन फाइल करके प्राङ न्याय के सिद्धांत के आधार पर वाद की संधार्यता को प्रश्नगत किया जाना – अंतर्वर्ती आवेदन मंजूर किया जाना – वादी द्वारा उच्च न्यायालय में अपील न करके पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जाना – प्रतिवादियों द्वारा इसका विरोध किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश को डिक्री न मानते हुए पुनरीक्षण को सही ठहराया जाना – यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राङ न्याय के आधार पर वाद को खारिज करने का आक्षेपित आदेश विवाद्यक की विरचना न करने की प्रक्रियात्मक अनियमितता के कारण डिक्री नहीं है, भले ही ऐसा आदेश पारित करने की प्रक्रिया में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता हो, यदि पारित किया गया आदेश विधि के अधीन डिक्री है, तो संहिता की धारा 115 के अधीन इसकी उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट वर्जना को देखते हुए कोई पुनरीक्षण संस्थित नहीं किया जा सकता है और ऐसा आदेश संहिता के आदेश 41 के साथ पठित धारा 96 के अधीन केवल अपील योग्य है ।

अपीलार्थी बिहार राज्य में अरराह के प्रथम उप-न्यायाधीश के समक्ष एक हक वाद में प्रतिवादी थे । वाद इस घोषणा के लिए फाइल किया गया था कि अनुसूची में वर्णित भूमि के संबंध में प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में प्रविष्ट नगरपालिका सर्वेक्षण खातियां पूर्णतः गलत और असत्य है तथा वादी पर आबद्धकर नहीं है । प्रतिवादियों ने एक आवेदन फाइल करके यह प्रारंभिक विवाद्यक विरचित करने की प्रार्थना की कि 'क्या वाद प्राङ न्याय और आन्वयिक प्राङ न्याय' द्वारा वर्जित होने के कारण संधार्य है । उनके अनुसार, वादी द्वारा 1971 के हक वाद सं. 4 में आदेश सहन करने के पश्चात् वर्तमान हक वाद संधार्य नहीं है । विचारण न्यायालय ने इस आक्षेप

को मान्य ठहराया कि वाद प्राङ न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है और वाद हेतुक के अभाव के कारण वाद खारिज कर दिया । वादी ने यह अभिवाक् करते हुए पटना उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया कि क्योंकि वाद को विवाद्यक विरचित किए बिना खारिज किया गया है और अपील संधार्य नहीं है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के अनुसार यह मत अपनाया कि विचारण न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण उचित नहीं था और वाद की संधार्यता के प्रश्न पर विवाद्यक विरचित किया जाना चाहिए था और उसका विचारण किया जाना चाहिए था और केवल उसके पश्चात् यदि न्यायालय प्रतिवादी/अपीलार्थियों की दलीलों को मान्य ठहराता तो वाद खारिज किया जा सकता था । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज करते हुए पारित किया गया आदेश डिक्री नहीं है और अपील योग्य नहीं है और दंड प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन केवल पुनरीक्षण योग्य है । प्रतिवादियों ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 2(2) के निबंधनों के अनुसार, यदि न्यायालय मामले का न्यायनिर्णयन करते हुए वाद में के सभी या किन्हीं विवादग्रस्त विषयों के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निश्चायक रूप से अवधारण करता है, तो डिक्री की अपेक्षा का समाधान हो जाता है । ऐसा अवधारण या तो प्रारंभिक या अंतिम हो सकता है । वाद को नामंजूर करना संहिता की धारा 2(2) के अधीन डिक्री माना जाएगा । केवल दो प्रकार के आदेश अपवर्जित हैं – (i) कोई ऐसा न्यायनिर्णयन जिसकी अपील, आदेश की अपील की भांति होती है, और (ii) व्यतिक्रम के लिए खारिज करने का कोई आदेश । संहिता के आदेश 43 में आदेशों की अपीलों के संबंध में उपबंध किया गया है । आक्षेपित आदेश, आदेश 43 के अधीन नहीं आता है । इस आदेश में वाद में के विवादग्रस्त विषयों में से एक अर्थात् प्राङ न्याय के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निश्चायक रूप से अवधारण किया गया है । यह सही है कि यह ऐसा आदेश नहीं है जो विवाद्यक की विरचना करके पारित किया गया हो । किंतु साथ-ही-साथ, इसमें इस संविवाद का न्यायनिर्णयन किया गया है कि क्या वाद प्राङ न्याय द्वारा वर्जित है या नहीं और इस अर्थ में यह अभिलेख की सामग्री को निर्दिष्ट करते हुए और दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् संविवाद का न्यायिक अवधारण है । यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राङ न्याय के

आधार पर वाद को खारिज करने का आक्षेपित आदेश विवाद्यक की विरचना न करने की प्रक्रियात्मक अनियमितता के कारण डिक्री नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय को इसे ऐसी डिक्री समझना चाहिए मानो यह विवाद्यक की विरचना करने और उसका न्यायनिर्णयन करने के पश्चात् पारित की गई है । प्रभाव को देखा जाना चाहिए न कि प्रक्रिया को । भले ही ऐसा आदेश पारित करने की प्रक्रिया में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता हो, यदि पारित किया गया आदेश विधि के अधीन डिक्री है, तो संहिता की धारा 115 के अधीन इसकी उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट वर्जना को देखते हुए कोई पुनरीक्षण संस्थित नहीं किया जा सकता है । ऐसा आदेश संहिता के आदेश 41 के साथ पठित धारा 96 के अधीन केवल अपील योग्य है । विचारण न्यायालय द्वारा वादपत्र के नामंजूर करने पर पारित किया गया आदेश एक संयुक्त आदेश है क्योंकि इसमें कोई वाद हेतुक और प्राङ न्याय के आधार पर वाद संधार्य न होने के कारण वाद की खारिजी की बात नहीं है । दोनों पहलू संहिता की धारा 2(2) के अधीन दी गई डिक्री की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं और इसलिए चाहे आदेश पारित करने में कोई अनियमितता हुई है, एकमात्र उपचार अपील है न कि पुनरीक्षण । (पैरा 15, 16 और 17)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 4543.

2010 के सिविल पुनरीक्षण सं. 783 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 14 अगस्त, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री गौरव अग्रवाल

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री के. वी. मुथु कुमार, अजय कुमार और कुंदन कुमार मिश्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ ने दिया ।

न्या. जोसेफ – इजाजत दी गई ।

2. विचारण न्यायालय द्वारा एक लंबित वाद में वाद को इस आधार पर खारिज करने के लिए कि वाद प्राङ न्याय द्वारा वर्जित है और कोई वाद हेतुक नहीं है, फाइल किए गए अंतर्वर्ती आवेदन को विचारण के प्रारंभ होने से पूर्व ही मंजूर किया गया । वादी ने यह अभिवाक् करते हुए पटना उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया कि अपील संधार्य नहीं है क्योंकि वाद को विवाद्यक विरचित किए बिना खारिज किया गया है ।

3. उच्च न्यायालय ने तारीख 14 अगस्त, 2013 के आक्षेपित आदेश

के अनुसार यह मत अपनाया कि विचारण न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण उचित नहीं था ; वाद की संधार्यता पर विवाद्यक विरचित किया जाना चाहिए था और उसका विचारण किया जाना चाहिए था और केवल उसके पश्चात् यदि न्यायालय प्रतिवादी/आवेदक की दलीलों को मान्य ठहराता तो वाद को खारिज किया जा सकता था । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विचारण न्यायालय द्वारा वाद को खारिज करते हुए पारित किया गया आदेश अपील योग्य नहीं है और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) की धारा 115 के अधीन केवल पुनरीक्षण योग्य है । इस प्रकार प्रतिवादी व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष आए हैं ।

4. अपीलार्थी बिहार राज्य में अरराह के प्रथम उप न्यायाधीश के समक्ष 2008 के हक वाद सं. 149 में प्रतिवादी हैं । वाद इस घोषणा के लिए फाइल किया गया था कि अनुसूची "क" में वर्णित भूमि के संबंध में प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में प्रविष्ट नगरपालिका सर्वेक्षण खातियां पूर्णतः गलत और असत्य हैं तथा वादी पर आबद्धकर नहीं है ।

5. प्रतिवादियों ने तारीख 20 अगस्त, 2009 के आवेदन द्वारा यह प्रारंभिक विवाद्यक विरचित करने की प्रार्थना की कि "क्या वाद प्राङ न्याय और आन्वयिक प्राङ न्याय" द्वारा वर्जित होने के कारण संधार्य है । अपीलार्थियों के अनुसार, वादी द्वारा 1971 के हक वाद सं. 4 में आदेश सहन करने के पश्चात् वर्तमान हक वाद संधार्य नहीं है । आवेदन में यह भी प्रकथन किया गया कि :–

> "खातियां के सर्वेक्षण को नगरपालिका द्वारा अंतिम नहीं बनाया गया है और वादी को इसमें की गई किसी प्रविष्टि के विरुद्ध कोई वाद संस्थित करने का अधिकार नहीं है, इसलिए वर्तमान वाद संधार्य नहीं है ।"

6. प्रत्यर्थी/वादी ने अपने आक्षेप फाइल किए और उसके पश्चात् आवेदन को विचार करने के लिए लिया गया । विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् इस आक्षेप को मान्य ठहराया कि वाद प्राङ न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है । वाद हेतुक पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि :–

> "वादपत्र के परिशीलन से यह भी स्पष्ट होता है कि वादी ने यह वाद नगरपालिका सर्वेक्षण खातियां को अकृत और शून्य घोषित करने

के लिए फाइल किया था । सर्वेक्षण खातियां की फोटो प्रति वाद के साथ प्रस्तुत की गई है । इसके परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि यह सर्वेक्षण खातियां अभी तक अंतिम रूप से प्रकाशित नहीं किया गया है । इन परिस्थितियों में, सिविल न्यायालय द्वारा उक्त सर्वेक्षण को अकृत और शून्य घोषित करके घोषणा संबंधी कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता है । सर्वेक्षण खातियां के अंतिम प्रकाशन से पूर्व सिविल न्यायालय में वाद फाइल नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि वादी के पास वर्तमान वाद को संस्थित करने के लिए कोई वाद हेतुक नहीं है ।"

और इस प्रकार विचारण न्यायालय ने तारीख 3 अगस्त, 2010 के आदेश द्वारा वाद को "प्राङ न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित होने के कारण और वाद हेतुक के अभाव के कारण" खारिज कर दिया ।

7. वादी ने उक्त आदेश को पटना उच्च न्यायालय के समक्ष 2010 का सिविल पुनरीक्षण सं. 783 फाइल करके चुनौती दी ।

8. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में यह दृष्टिकोण अपनाया कि वाद को खारिज करने के लिए विवाद्यकों की विरचना आवश्यक है जबकि वादपत्र को नामंजूर करने के लिए आवश्यक नहीं है और ऐसा किसी भी प्रक्रम पर किया जा सकता है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि वादपत्र को नामंजूर करने वाला आदेश अपील योग्य है किंतु वाद विवाद्यक की विरचना किए बिना और विचारण से पूर्व संधार्य न होने के कारण अपील योग्य नहीं है । आक्षेपित आदेश को नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"विनिर्दिष्ट विवाद्यक के अभाव में यह डिक्री की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है और आक्षेपित आदेश से मामले का अंतिम रूप से निपटारा हो जाता है, इसलिए मामले में शेष एकमात्र उपचार पुनरीक्षण फाइल करना है ।"

9. दोनों पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

10. संहिता की धारा 2(2) में "डिक्री" को परिभाषित किया गया है जिससे अभिप्रेत है :–

"(2) 'डिक्री' से ऐसे न्यायनिर्णयन की प्ररूपिक अभिव्यक्ति अभिप्रेत है जो, जहां तक कि वह इसे अभिव्यक्त करने वाले न्यायालय से संबंधित है, वाद में के सभी या किन्हीं विवादग्रस्त विषयों

के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निश्चायक रूप से अवधारण करता है और वह या तो प्रारंभिक या अंतिम हो सकेगी । यह समझा जाएगा कि इसके अंतर्गत वादपत्र का नामंजूर किया जाना और धारा 144 के भीतर के किसी प्रश्न का अवधारण आता है किंतु इसके अंतर्गत –

(क) न तो कोई ऐसा न्यायनिर्णयन आएगा जिसकी अपील, आदेश की अपील की भांति होती है, या

(ख) न व्यतिक्रम के लिए खारिज करने का कोई आदेश आएगा ।

स्पष्टीकरण – डिक्री तब प्रारंभिक होती है जब वाद के पूर्ण रूप से निपटा दिए जा सकने से पहले आगे और कार्यवाहियां की जानी हैं । वह तब अंतिम होती है जब कि ऐसा न्यायनिर्णयन वाद को पूर्ण रूप से निपटा देता है । वह भागतः प्रारंभिक और भागतः अंतिम हो सकेगी ;"

11. संहिता की धारा 96 में मूल डिक्री की अपील के बारे में उपबंध है :–

"96. मूल डिक्री की अपील – (1) वहां के सिवाय जहां इस संहिता के पाठ में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित है, ऐसी हर डिक्री की, जो आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी न्यायालय द्वारा पारित की गई, अपील उस न्यायालय में होगी जो ऐसे न्यायालय के विनिश्चयों की अपीलों को सुनने के लिए प्राधिकृत है ।

(2) एकपक्षीय पारित मूल डिक्री की अपील हो सकेगी ।

(3) पक्षकारों की सहमति से जो डिक्री न्यायालय ने पारित की है उसकी कोई अपील नहीं होगी ।

(4) लघुवाद न्यायालयों द्वारा संज्ञेय वाद में किसी डिक्री की कोई अपील, यदि ऐसी डिक्री की रकम या उसका मूल्य दस हजार रुपए से अधिक नहीं है तो केवल विधि के प्रश्न के संबंध में ही होगी ।"

12. संहिता की धारा 115 में पुनरीक्षण के संबंध में उपबंध है, जो निम्नलिखित है :–

"115. पुनरीक्षण – (1) उच्च न्यायालय किसी भी ऐसे मामले के अभिलेख को मंगवा सकेगा जिसका ऐसे उच्च न्यायालय के

अधीनस्थ किसी न्यायालय में विनिश्चय किया गया है और जिसकी कोई भी अपील नहीं होती है और यदि यह प्रतीत होता है कि –

(क) ऐसे अधीनस्थ न्यायालय ने किसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो उसमें विधि द्वारा निहित नहीं है, अथवा

(ख) ऐसा अधीनस्थ न्यायालय ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है जो उसमें विधि द्वारा निहित नहीं है, अथवा

(ग) ऐसे अधीनस्थ न्यायालय ने अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में अवैध रूप से या तात्विक अनियमितता से कार्य किया है,

उच्च न्यायालय उस मामले में ऐसा आदेश कर सकेगा जो वह ठीक समझे :

परंतु उच्च न्यायालय, किसी वाद या अन्य कार्यवाही के अनुक्रम में इस धारा के अधीन किए गए किसी आदेश में या कोई विवाद्यक विनिश्चित करने वाले किसी आदेश में तभी फेरफार करेगा या उसे उलटेगा जब ऐसा आदेश यदि वह पुनरीक्षण के लिए आवेदन करने वाले पक्षकार के पक्ष में किया गया होता तो वाद या अन्य कार्यवाही का अंतिम रूप से निपटारा कर देता ।

(2) उच्च न्यायालय इस धारा के अधीन किसी ऐसे डिक्री या आदेश में, जिसके विरुद्ध या तो उच्च न्यायालय में या उसके अधीनस्थ किसी न्यायालय में अपील होती है, फेरफार नहीं करेगा अथवा उसे नहीं उलटेगा ।

(3) कोई पुनरीक्षण, न्यायालय के समक्ष किसी वाद या अन्य कार्यवाही की रोक के रूप में वहां के सिवाय प्रवृत्त नहीं होगा जहां कि ऐसा वाद या कार्यवाही उच्च न्यायालय द्वारा नहीं रोकी जाती है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में 'किसी मामले को जिसका उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय ने विनिश्चय किया है' अभिव्यक्ति के अंतर्गत किसी वाद या अन्य कार्यवाही के अनुक्रम में किया गया कोई आदेश या कोई विवाद्यक विनिश्चित करने वाला कोई आदेश भी है ।"

13. आदेश 14, नियम 1 में विवाद्यकों की विरचना के संबंध में

उपबंध है :–

"1. विवाद्यकों की विरचना – (1) विवाद्यक तब पैदा होते हैं जब कि तथ्य या विधि की कोई तात्विक प्रतिपादना एक पक्षकार द्वारा प्रतिज्ञात और दूसरे पक्षकार द्वारा प्रत्याख्यात की जाती है ।

(2) तात्विक प्रतिपादनाएं विधि या तथ्य की वे प्रतिपादनाएं हैं जिन्हें वाद लाने का अपना अधिकार दर्शित करने के लिए वादी को अभिकथित करना होगा या अपनी प्रतिरक्षा गठित करने के लिए प्रतिवादी को अभिकथित करना होगा ।

(3) एक पक्षकार द्वारा प्रतिज्ञात और दूसरे पक्षकार द्वारा प्रत्याख्यात हर एक तात्विक प्रतिपादना एक सुभिन्न विवाद्यक का विषय होगी ।

(4) विवाद्यक दो किस्म के होते हैं –

(क) तथ्य विवाद्यक,

(ख) विधि विवाद्यक ।

(5) न्यायालय वाद की प्रथम सुनवाई में वादपत्र को और यदि कोई लिखित कथन हो तो उसे पढ़ने के पश्चात् और आदेश 10 के नियम 2 के अधीन परीक्षा करने के पश्चात् तथा पक्षकारों या उनके प्लीडरों की सुनवाई करने के पश्चात् यह अभिनिश्चित करेगा कि तथ्य की या विधि की किन तात्विक प्रतिपादनाओं के बारे में पक्षकारों में मतभेद है और तब वह उन विवाद्यकों की विरचना और अभिलेखन करने के लिए अग्रसर होगा जिसके बारे में यह प्रतीत होता है कि मामले का ठीक विनिश्चय उन पर निर्भर करता है ।

(6) इस नियम की कोई भी बात न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं करती है कि वह उस दशा में विवाद्यक विरचित और अभिलिखित करे जब प्रतिवादी वाद की पहली सुनवाई में कोई प्रतिरक्षा नहीं करता ।"

14. संहिता की धारा 2(2) के निबंधनों के अनुसार, यदि न्यायालय मामले का न्यायनिर्णयन करते हुए वाद में के सभी या किन्हीं विवादग्रस्त विषयों के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निश्चायक रूप से अवधारण करता है, तो डिक्री की अपेक्षा का समाधान हो जाता है । ऐसा अवधारण या तो प्रारंभिक या अंतिम हो सकता है । वाद को नामंजूर करना संहिता की धारा 2(2) के अधीन डिक्री माना जाएगा । केवल दो प्रकार के आदेश

अपवर्जित हैं – (i) कोई ऐसा न्यायनिर्णयन जिसकी अपील, आदेश की अपील की भांति होती है, और (ii) व्यतिक्रम के लिए खारिज करने का कोई आदेश । संहिता के आदेश 43 में आदेशों की अपीलों के संबंध में उपबंध किया गया है । आक्षेपित आदेश, आदेश 43 के अधीन नहीं आता है । इस आदेश में वाद में के विवादग्रस्त विषयों में से एक अर्थात् प्राङ न्याय के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निश्चायक रूप से अवधारण किया गया है । यह सही है कि यह ऐसा आदेश नहीं है जो विवाद्यक की विरचना करके पारित किया गया हो । किंतु साथ-ही-साथ, इसमें इस संविवाद का न्यायनिर्णयन किया गया है कि क्या वाद प्राङ न्याय द्वारा वर्जित है या नहीं और इस अर्थ में यह अभिलेख की सामग्री को निर्दिष्ट करते हुए और दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् संविवाद का न्यायिक अवधारण है ।

15. यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राङ न्याय के आधार पर वाद को खारिज करने का आक्षेपित आदेश विवाद्यक की विरचना न करने की प्रक्रियात्मक अनियमितता के कारण डिक्री नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय को इसे ऐसी डिक्री समझना चाहिए मानो यह विवाद्यक की विरचना करने और उसका न्यायनिर्णयन करने के पश्चात् पारित की गई है । प्रभाव को देखा जाना चाहिए न कि प्रक्रिया को । भले ही ऐसा आदेश पारित करने की प्रक्रिया में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता हो, यदि पारित किया गया आदेश विधि के अधीन डिक्री है, तो संहिता की धारा 115 के अधीन इसकी उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट वर्जना को देखते हुए कोई पुनरीक्षण संस्थित नहीं किया जा सकता है । ऐसा आदेश संहिता के आदेश 41 के साथ पठित धारा 96 के अधीन केवल अपील योग्य है ।

16. विचारण न्यायालय द्वारा वादपत्र के नामंजूर करने पर पारित किया गया आदेश एक संयुक्त आदेश है क्योंकि इसमें कोई वाद हेतुक और प्राङ न्याय के आधार पर वाद संधार्य न होने के कारण वाद की खारिजी की बात नहीं है । दोनों पहलू संहिता की धारा 2(2) के अधीन दी गई डिक्री की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं और इसलिए चाहे आदेश पारित करने में कोई अनियमितता हुई है, एकमात्र उपचार अपील है न कि पुनरीक्षण ।

17. अतः यह अपील मंजूर की जाती है । आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है । तथापि, प्रत्यर्थी/वादी को उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 3 अगस्त, 2010 को पारित किए गए आदेश के विरुद्ध अपील करने की स्वतंत्रता

प्रदान की जाती है । यदि आज से छह सप्ताह के भीतर ऐसी अपील फाइल की जाती है तो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए इसे समय के भीतर फाइल किया गया समझा जाएगा ।

18. उपरोक्त अनुसार यह अपील मंजूर की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2016] 3 उम. नि. प. 197

हरिजन भाला तेजा

बनाम

गुजरात राज्य

27 अप्रैल, 2016

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 378 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302] – हत्या – सेशन न्यायालय द्वारा किए गए दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने के संबंध में अपील न्यायालय की शक्ति – अभियुक्त के विरुद्ध अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर ध्यान न दिया जाना – जब विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के प्रतिकूल या अनुचित हो और युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप साबित होता हो, तब ऐसी स्थिति में अपील न्यायालय दोषमुक्ति के निर्णय को उलटने के लिए स्वतंत्र है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 106 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313] – सबूत का भार – अभियुक्त द्वारा यह अभिवाक् किया जाना कि मृतका की मृत्यु प्रसव के दौरान हुई – चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि न होना – अभिलेख पर यह साबित हो गया है कि मृतका की मृत्यु के समय अभियुक्त घर पर ही था, इसलिए उसका यह दायित्व है कि वह साबित करे कि मृत्यु किस प्रकार हुई, अभियुक्त द्वारा ऐसा न किए जाने और अभियोजन पक्ष द्वारा अपराध साबित किए

जाने की स्थिति में, उसकी दोषसिद्धि न्यायोचित है ।

इस मामले में अपीलार्थी ने अपनी पत्नी की गला घोंट कर हत्या कर दी । उसे गिरफ्तार किया गया और दंड संहिता की धारा 302 और 201 के अधीन अपराध के लिए सेशन न्यायालय के समक्ष उसका विचारण किया गया । सेशन न्यायालय ने महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा करते हुए अपीलार्थी को दोषमुक्त कर दिया । इस आदेश से व्यथित होकर राज्य ने गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हुए अपीलार्थी को हत्या के अपराध का दोषी पाया । अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायायल के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – निःसंदेह, जब अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर दो मत संभव हों, और विचारण न्यायालय ने दोषमुक्ति का आदेश पारित किया हो तब अपील न्यायालय को ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी मामलों में जिनमें विचारण न्यायालय ने दोषमुक्ति अभिलिखित की है उनमें भले ही विचारण न्यायालय का मत कितना भी अनुचित हो तब हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए । जब विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के प्रतिकूल हो या अनुचित हो और यदि युक्तियुक्त संदेह के परे अभिलेख पर आरोप साबित हो जाए तब ऐसी स्थिति में अपील न्यायालय अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए स्वतंत्र है और अपील न्यायालय अभियुक्त को दोषसिद्ध कर सकता है । उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात्, पैरा 20 में यह अभिनिर्धारित किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित हैं और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से उनका समर्थन नहीं होता है । (पैरा 12)

न्यायालय अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करेगा । स्वीकृततः मृतका अपीलार्थी की पत्नी थी । इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि अपीलार्थी और उसकी पत्नी (मृतका) एक साथ घर में उस समय रहते थे जब पत्नी की मृत्यु हुई थी । यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि शव का शवपरीक्षण नहीं कराया गया था और न ही अपीलार्थी द्वारा मृतका की मृत्यु के संबंध में पुलिस को सूचना दी गई थी । निःसंदेह प्राकृतिक मृत्यु के मामले में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं होती है । तथापि, यदि प्राकृतिक मृत्यु का मामला होता, तब भी पति का सामान्य आचरण यह होता कि वह

पत्नी के घरवालों और नातेदारों को सूचना देता और इसके पश्चात् उसका अंतिम संस्कार करता । अभिलेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी, जो अपनी पत्नी के साथ रहता था, ने अपने श्वसुर या परिवार के किसी सदस्य को इस संबंध में सूचना देने का कष्ट नहीं किया । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित प्रश्न सं. 24 और 37 का उत्तर देते हुए अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि उसकी पत्नी की मृत्यु प्रसव के दौरान हुई थी किंतु अभिलेख से अन्यथा दर्शित होता है । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि जबकि कोई तथ्य विशेषतया किसी व्यक्ति के ज्ञान में है, तब उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर है । चूंकि अभिलेख पर यह साबित हो गया है कि केवल अपीलार्थी ही वह व्यक्ति है जो अपनी पत्नी के साथ उसकी मृत्यु के समय घर पर मौजूद था, इसलिए उसका यह दायित्व है कि वह यह साबित करे कि उसकी पत्नी की मृत्यु किस प्रकार हुई, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया हो कि मृतका की मृत्यु मानव वध है । अभिलेख पर प्रस्तुत चिकित्सीय साक्ष्य का परिशीलन करने पर, उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए इस मत से हमारा पूर्णतया समाधान हो गया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित किया गया यह आरोप सभी संदेह के परे साबित हो गया है कि उसने अपनी पत्नी की हत्या की है और उसका शव दफन करके साक्ष्य नष्ट करने का प्रयास किया है । न्यायालय ने मामले का परिशीलन किया है कि क्या वर्तमान मामले में अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से दो मत संभव हैं या नहीं । न्यायालय की राय में, विचारण न्यायालय ने ऐसा मत व्यक्त किया है जो अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से संभव नहीं है । विचारण न्यायालय ने इस मुद्दे पर अनावश्यक ही बल दिया है कि अभियुक्त को अपराध से संबद्ध करने के लिए कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, अभिलेख पर प्रत्यक्ष साक्ष्य मौजूद होने की कोई संभावना नहीं हो सकती । (पैरा 13, 19, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2002] (2002) 4 एस. सी. सी. 308 :
मंधारी बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** । 17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 2031-2032.

1986 की दांडिक अपील सं. 411 में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 जुलाई, 2008 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री हुजैफा अहमदी, ज्येष्ठ काउंसेल, प्रधुमन गोहिल, मिलिन्द कुमार, (सुश्री) तरूणा सिंह गोहिल, जे. एस. जडेजा और हिमांशु

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री शामिक संजनवाला, (सुश्री) हेमन्तिका वाही और जेसल वाही

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत ने दिया ।

न्या. पंत – ये अपीलें 1986 की दांडिक अपील सं. 411 में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 जुलाई, 2008 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई हैं जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने गुजरात राज्य द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर करते हुए 1985 के सेशन मामला सं. 26 में अपर सेशन न्यायाधीश, भुज द्वारा तारीख 31 दिसंबर, 1985 को पारित उस निर्णय और आदेश को अपास्त किया जिसके अनुसार अपर सेशन न्यायाधीश ने हरिजन भाला तेजा (इस मामले में के अपीलार्थी) की दोषमुक्ति अभिलिखित की थी । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 21 जुलाई, 2008 को अलग से पारित किए गए आदेश द्वारा, दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई के पश्चात्, अभियुक्त को आजीवन कारावास भोगने और 100 रुपए जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया ।

2. संक्षेप में अभियोजन वृत्तांत इस प्रकार है कि जीवीबाई (मृतका) का विवाह अपीलार्थी हरिजन भाला तेजा के साथ हुआ था । वे ग्राम नानी चिरई में रहते थे । मृतका को 8 मास का गर्भ था । अभियोजन पक्षकथन यह है कि मृतका जीवीबाई की हत्या तारीख 20 फरवरी, 1985 को 8.00 बजे से 12.00 बजे के बीच अपीलार्थी द्वारा उसका गला घोंट कर की गई थी, मृतका के पैतृक गृह से संबंधित किसी भी नातेदार को इस संबंध में सूचना नहीं दी गई और न ही उनके आने की प्रतीक्षा की गई और उसे दफना दिया गया । तारीख 1 मार्च, 1985 को मृतका के पिता वजा अला

(अभि. सा. 1) को अपनी पुत्री की मृत्यु की सूचना मिली और अपीलार्थी द्वारा इस अपराध में भाग लिए जाने का संदेह हुआ । मृतका के पिता ने पुलिस थाना भाचऊ में रिपोर्ट (प्रदर्श-22) दर्ज कराई । इस पर पुलिस उप-निरीक्षक हयात खां (अभि. सा. 8), पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा निर्देश दिए जाने पर, ग्राम में गया और पूछताछ की । तारीख 2 मार्च, 1985 को उस क्षेत्र के कार्यपालक मजिस्ट्रेट ने यह निदेश दिया कि शव को खोद कर बाहर निकाला जाए, इसके पश्चात् पंच साक्षियों की मौजूदगी में शव बाहर निकाला गया और मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट तैयार की गई । शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । तारीख 4 मार्च, 1985 को जनरल अस्पताल, भुज के डा. गोपाल किशन इरानी (अभि. सा. 5) ने शवपरीक्षण किया और शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श-19) तैयार की । चिकित्सक ने यह राय दी कि मृतका की मृत्यु गला घोंटे जाने के परिणामस्वरूप श्वासावरोध से हुई है ।

3. मामले का अन्वेषण पुलिस उप-निरीक्षक कालूखां कुरैशी (अभि. सा. 9) द्वारा किया गया जिसने साक्षियों से परिप्रश्न करने और अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध उसका विचारण दंड संहिता की धारा 302 और 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए किए जाने के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया ।

4. मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने पर तारीख 20 नवंबर, 1985 को अपीलार्थियों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 और 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अपर सेशन न्यायालय, कच्छ, भुज द्वारा आरोप विरचित किया गया जिस पर अपीलार्थी ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की । इसके पश्चात् अभियोजन पक्ष ने मृतका के पिता अर्थात् शिकायतकर्ता वजा अला (अभि. सा. 1), ग्राम नानी चिरई के सरपंच रामजी (अभि. सा. 2), हुसैन (अभि. सा. 3), मृतका और अपीलार्थी का नातेदार अर्थात् देवराज (अभि. सा. 4), शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सक अर्थात् डा. गोपाल कृष्ण इरानी (अभि. सा. 5), मृतका के चाचा पूना (अभि. सा. 6), पुलिस थाना भाचऊ के भारसाधक अधिकारी सैमदशा मट (अभि. सा. 7), प्राथमिक पूछताछ करने वाले पुलिस उप-निरीक्षक हैयात खां (अभि. सा. 8) और पुलिस उप-निरीक्षक कालूखां (अभि. सा. 9), जिन्होंने दफन किए हुए शव को बाहर निकालने के पश्चात् उसकी मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट तैयार की थी और इस मामले का अन्वेषण किया था, की परीक्षा कराई ।

5. तारीख 30 दिसंबर, 1985 को अपीलार्थी के समक्ष दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य रखा गया जिसका उत्तर देते हुए उसने यह कथन किया कि उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया साक्ष्य सत्य नहीं है । तथापि, उसने अपनी प्रतिरक्षा में कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया । विचारण न्यायालय ने, पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, अभियुक्त को यह अभिनिर्धारित करते हुए दोषमुक्त कर दिया कि अभियोजन पक्ष आरोप साबित करने में असफल रहा है । तारीख 31 दिसंबर, 1985 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, जो 1985 के सेशन मामला सं. 26 में अपर सेशन न्यायाधीश, भुज द्वारा पारित किया गया था, गुजरात राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । तारीख 6 अगस्त, 1986 को उच्च न्यायालय ने इजाजत प्रदान करते हुए अपील स्वीकार की ।

6. उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर पुनर्विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश अनुचित और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के विरुद्ध है । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि दंड संहिता की धारा 302 और 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए विरचित किए गए आरोप अभिलेख पर साबित हो गए हैं और अभियुक्त को दोषसिद्ध किया तथा उसे दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया और उसे 100 रुपए के जुर्माने का संदाय करने का निदेश दिया (ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 201 के अधीन कोई भी दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किया है) ।

7. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री हुजैफा अहमदी ने यह दलील दी है कि अभियोजन पक्ष यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि जीवीबाई की मृत्यु गला घोंटने से हुई है । इस संबंध में, हमारा ध्यान डा. गोपाल (अभि. सा. 5) के कथन की ओर दिलाया गया है और यह दलील दी गई है कि चिकित्सक ने यह बात निश्चित रूप से नहीं कही है कि मृतका की मृत्यु गला घोंटने से हुई है । जहां तक कंठिकास्थि में अस्थिभंग होने का संबंध है अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि यह अस्थिभंग उस समय भी हो सकता है जब शव को दफनाने के लिए रखा गया था और उस दौरान उस पर कुछ पत्थर और मिट्टी गिर सकती है ।

8. अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि देवराज (अभि. सा. 4 ने अभियोजन पक्ष द्वारा उल्लिखित वृत्तांत का समर्थन नहीं किया है ।

यह भी दलील दी गई है कि देवराज (अभि. सा. 4) ने अपने अभिसाक्ष्य में पुलिस को यह कथन दिया था कि मृतका की मृत्यु नशे की कोई दवा खाने से हुई है जिससे गला घोंटने वाली बात अविश्वसनीय हो जाती है ।

9. तीसरी दलील यह है कि अपनी पत्नी की हत्या करने का अपीलार्थी का कोई हेतु नहीं था । इस संबंध में, यह तर्क दिया कि वजा अला (अभि. सा. 1) और पूना अला (अभि. सा. 6) के कथन अस्पष्ट हैं, पूना अला (अभि. सा. 6) ने यह स्वीकार किया है कि उसने इस संबंध में पूछताछ नहीं की थी कि शिकायत फाइल किए जाने के पूर्व वास्तव में क्या हुआ था ।

10. अंत में यह दलील दी गई है कि विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की जो दोषमुक्ति की गई थी वह अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन किए जाने पर आधारित थी । इस प्रकार विधि की सुस्थापित स्थिति को दृष्टिगत करते हुए, जब दो मत संभव हों तब ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था ।

11. हमने उपरोक्त सभी दलीलों पर विचार किया है और इस मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है ।

12. निःसंदेह, जब अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर दो मत संभव हों, और विचारण न्यायालय ने दोषमुक्ति का आदेश पारित किया हो तब अपील न्यायालय को ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी मामलों में जिनमें विचारण न्यायालय ने दोषमुक्ति अभिलिखित की है उनमें भले ही विचारण न्यायालय का मत कितना भी अनुचित हो तब हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए । जब विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के प्रतिकूल हो या अनुचित हो और यदि युक्तियुक्त संदेह के परे अभिलेख पर आरोप साबित हो जाए तब ऐसी स्थिति में अपील न्यायालय अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए स्वतंत्र है और अपील न्यायालय अभियुक्त को दोषसिद्ध कर सकता है । वर्तमान मामले पर, उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात्, पैरा 20 में यह अभिनिर्धारित किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित हैं और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से उनका समर्थन नहीं होता है ।

13. अब हम अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करेंगे । स्वीकृततः मृतका अपीलार्थी की पत्नी थी । इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि अपीलार्थी और उसकी पत्नी (मृतका) एक साथ घर में उस समय रहते थे जब पत्नी की मृत्यु हुई थी । यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि शव का शवपरीक्षण नहीं कराया गया था और न ही अपीलार्थी द्वारा मृतका की मृत्यु के संबंध में पुलिस को सूचना दी गई थी । निःसंदेह प्राकृतिक मृत्यु के मामले में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं होती है । तथापि, यदि प्राकृतिक मृत्यु का मामला होता, तब भी पति का सामान्य आचरण यह होता कि वह पत्नी के घरवालों और नातेदारों को सूचना देता और इसके पश्चात् उसका अंतिम संस्कार करता । अभिलेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी, जो अपनी पत्नी के साथ रहता था, ने अपने श्वसुर या परिवार के किसी सदस्य को इस संबंध में सूचना देने का कष्ट नहीं किया । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित प्रश्न सं. 24 और 37 का उत्तर देते हुए अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि उसकी पत्नी की मृत्यु प्रसव के दौरान हुई थी किंतु अभिलेख से अन्यथा दर्शित होता है ।

14. अब हम अभिलेख पर प्रस्तुत चिकित्सीय साक्ष्य पर विचार करेंगे । डा. गोपाल (अभि. सा. 5) ने (2 मार्च, 1985 को जमीन में से शव खोद कर निकालने के पश्चात्) 4 मार्च, 1985 को शवपरीक्षण किया और शवपरीक्षण के दौरान शव पर बाह्य और आंतरिक क्षतियां पाईं जो शव-परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श-19) के अनुसार निम्न हैं :–

"**बाह्य क्षतियां** :

(क) ग्रीवा के सामने की ओर 14 से. मी. × 2 से. मी. माप की क्षति जिसका रंग गहरा हरा है और ग्रीवा पर अर्धवृत्त के रूप में दिखाई देती है ।

(ख) शिरोणिक कटि कशेरुक भाग में बाईं ओर 20 से. मी. × 6 से. मी. माप का एक कटाव है जिसमें से अंतड़ी बाहर निकल रही है ।

(ग) ग्रीवा के दाईं ओर कंठास्थि में अस्थि भंग है ।

आंतरिक क्षतियां :

(क) ग्रीवा की मध्य रेखा से 1 से. मी. की दूरी पर कंठास्थि में

अस्थि भंग है ।

(ख) गर्भाशय गर्भनाल के साथ बाहर निकला हुआ है । 15 से. मी. × 3 से. मी. माप का गर्भाशय के निकट कटाव है ।"

15. अपीलार्थी की ओर से यह दलील देने का प्रयास किया गया है कि अपीलार्थी के समाज में यह प्रथा है कि जब किसी गर्भवती महिला की मृत्यु होती है, तब भ्रूण को काट दिया जाता है और दाह संस्कार के पूर्व उसे अलग से दफन किया जाता है । इस बात को सत्य मानते हुए भी, हम अपीलार्थी द्वारा, मृतका की गर्दन के आधे भाग पर पाई गई बाह्य मृत्यु पूर्व की क्षतियों और कंठास्थि में हुए अस्थि भंग, जिससे गला घोंटे जाने का पता चलता है, के संबंध में दिए गए स्पष्टीकरण से सहमत नहीं हैं ।

16. गला घोंटने से संबंधित लेखक मोदी द्वारा लिखित पुस्तक मोदीज मेडीकल ज्यूरिसप्रुडेंस एंड टैक्सीकोलोजी से यह स्पष्ट होता है कि गला घोंटना फांसी पर लटकने से भिन्न है जो कि गर्दन पर दबाव डालकर किया जाता है । गला घोंट कर मारना हिंसक कृत्य से कारित मृत्यु है, जो गर्दन पर बंध लगाकर दबाव डालने से होती है या उस जैसे अन्य किसी तरीके से किंतु आहत को गर्दन से लटका कर कारित नहीं की जाती । आंतरिक क्षतियों के संबंध में मोदीज मेडीकल ज्यूरिसप्रुडेंस नामक पुस्तक में यह उल्लेख है कि इस पर विचार किया जाना चाहिए कि कंठास्थि और गलग्रंथि के अग्रभाग से लगी उपास्थि में, सामान्यतया, अस्थि भंग नहीं पाया जाता जब तक कि गला घोंटने की प्रक्रिया न की गई हो ।

17. **मंधारी** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले मामले में लगभग ऐसे ही तथ्यों का मूल्यांकन करते हुए इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया है :–

"4. ..... डा. पी. सी. जैन (अभि. सा. 8) द्वारा किए गए शवपरीक्षण की रिपोर्ट से यह दर्शित होता है कि मृतका की ग्रीवा पर गला घोंटने का मृत्यु पूर्व का निशान है । चिकित्सक की राय इस संबंध में स्पष्ट और सुनिश्चित है कि फांसी से लटकने से गर्दन पर 5 से. मी. लंबा क्षैतिज दिशा में चिह्न नहीं बन सकता किंतु गला घोंट कर ऐसा चिह्न बनाया जा सकता है । अतः चिकित्सीय साक्ष्य से अपीलार्थी का यह पक्षकथन पूर्णतया मिथ्या हो जाता है कि अपीलार्थी के खेत से घर पर वापस आने पर उसने अपनी पत्नी को फांसी पर

[1] (2002) 4 एस. सी. सी. 308.

लटके हुए देखा था और यह कि उसने आत्महत्या की है । अभियुक्त का आचरण भी स्वाभाविक नहीं है । जब उसने अपनी पत्नी को गर्दन से लटके हुए देखा, तब उसने न तो शोर मचाया और न ही पड़ोस से ग्रामवासियों को बुलाया । उसने केवल अकेले ही शव को, जो छत से लटका हुआ था, नीचे उतारा । इसके पश्चात् उसने मामले की रिपोर्ट तत्काल दर्ज नहीं कराई । जब ग्रामवासी इकट्ठा हुए, तब उसने यह अभिवाक् किया कि मृतका ने आत्महत्या की है । जैसाकि कोतवार दिलबुद्ध (अभि. सा. 2) द्वारा अभिसाक्ष्य दिया गया है, अभियुक्त ने मामले की रिपोर्ट स्वयं नहीं कराई बल्कि उसके और सरपंच के दबाव डालने पर मामले की रिपोर्ट पुलिस को दी गई । इन साक्षियों ने यह भी कथन किया है कि मृतका पत्नी ने पूर्व में पंचायत के समक्ष यह शिकायत दर्ज कराई थी कि अपीलार्थी उसके साथ दुर्व्यवहार करता है और उसे खाने-पीने को भी नहीं देता है ।

5. पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों की सुनवाई करने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् हमें ऐसा कोई आधार दिखाई नहीं देता है कि साक्ष्य का भिन्न अर्थ लिया जा सके । अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपनी परीक्षा में यह स्वीकार किया है कि वह घर में मौजूद था और आवाज सुनकर दौड़ा और उसने देखा कि उसकी पत्नी फांसी पर लटकी हुई है । अभियुक्त ने यह प्रतिरक्षा ली है कि उसकी पत्नी ने आत्महत्या की है, यह प्रतिरक्षा मिथ्या पाई गई है और इसकी पुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से भी नहीं होती है । उपरोक्त तथ्यों के साथ-साथ ये परिस्थितियां भी सामने आई हैं कि अभियुक्त और मृतका के बीच अनुकूल वैवाहिक संबंध नहीं थे, घटना के तत्पश्चात् अभियुक्त का अप्राकृतिक आचरण, स्थल नक्शा (प्रदर्श-7) जिसमें छत को इतनी ऊंचाई पर दर्शाया गया है कि आत्महत्या करने के लिए उसकी ऊंचाई अनुचित पाई गई है, इन सब तथ्यों से संचयी रूप से यह अकाट्य निष्कर्ष निकलता है कि केवल अभियुक्त ने ही यह अपराध कारित किया है और यह प्रतिरक्षा गलत ली है कि उसने अपनी पत्नी को आत्महत्या करने की हालत में फांसी पर लटके हुए देखा था ।'

18. वर्तमान मामले में, इससे पहले कि उसकी पत्नी मृतका के पैतृक गृह से परिवार का कोई सदस्य घटनास्थल पर पहुंचता, उसने अपनी पत्नी का शव यथाशीघ्र दफन कर दिया । शवपरीक्षण रिपोर्ट की प्रति का

परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि ऊपर उल्लिखित क्षतियों के अतिरिक्त, शव की हालत के संबंध में, चिकित्सा अधिकारी डा. गोपाल (अभि. सा. 5) ने, जिन्होंने शवपरीक्षण किया था, यह मत व्यक्त किया है कि मृतका की जीभ उसके मुंह से बाहर निकली हुई थी, जिससे पुनः इस बात की सम्पुष्टि होती है कि मृतका की मृत्यु मानव वध है ।

19. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि जबकि कोई तथ्य विशेषतया किसी व्यक्ति के ज्ञान में है, तब उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर है । चूंकि अभिलेख पर यह साबित हो गया है कि केवल अपीलार्थी ही वह व्यक्ति है जो अपनी पत्नी के साथ उसकी मृत्यु के समय घर पर मौजूद था, इसलिए उसका यह दायित्व है कि वह यह साबित करे कि उसकी पत्नी की मृत्यु किस प्रकार हुई, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया हो कि मृतका की मृत्यु मानव वध है ।

20. मृतका के पिता वजा अला (अभि. सा. 1) ने यह कथन किया है कि जब वह तारीख 1 मार्च, 1985 को अपनी पुत्री के ग्राम में पहुंचा, तब अपीलार्थी ने उसे बताया कि जीवीबाई (मृतका) की मृत्यु विषपान से हुई है । अभि. सा. 1 ने यह भी प्रकट किया कि इस घटना से 3-4 मास पूर्व वह नानी चिरई ग्राम अपने नातेदारों अर्थात् भाना अला, पूना अला, कन्या अला, हीरा रतन और पालू चाइंडा के साथ अपीलार्थी और अपनी पुत्री के बीच विवाद निपटाने गया था । इस साक्षी ने यह भी बताया कि इस मामले को सुलझाने का प्रयास सरपंच की सहायता से किया गया और अपीलार्थी ने यह वचन दिया कि वह अब भविष्य में झगड़ा नहीं करेगा । रामजी (अभि. सा. 2), जो कि ग्राम नानी चिरई का सरपंच है, ने उपर्युक्त कथन की सम्पुष्टि करते हुए यह उल्लेख किया है कि वजा अला (अभि. सा. 1) और 5-6 अन्य व्यक्ति गांधीधाम से उस ग्राम में आए और उन्होंने जीवीबाई (मृतका) और उसके पति (अपीलार्थी) के बीच चल रही समस्या के बारे में बताया और यह भी बताया कि वे शांतिपूर्वक साथ रहने के लिए सहमत हैं । तथापि, मृत्यु के कारण के संबंध में साक्षी ने यह कथन किया है कि यह उसकी जानकारी में नहीं है कि जीवीबाई की मृत्यु किस प्रकार हुई । हुसैन (अभि. सा. 3) शव को भूमि से खोदकर बाहर निकाले जाने का साक्षी है और उसी की मौजूदगी में मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श-8) तैयार की गई थी । देवराज (अभि. सा. 4) ने, जो कि अपीलार्थी और मृतका दोनों की ओर से नातेदार है, इस तथ्य की सम्पुष्टि की है कि इस घटना के कुछ मास पूर्व

अपीलार्थी ने जीवीबाई के साथ मारपीट की थी जिस पर उसने यह सूचना वजा अला (अभि. सा. 1) को भेजी कि उसकी पुत्री के साथ मारपीट की जा रही है । इस साक्षी ने सरपंच रामजी द्वारा किए गए समझौते के तथ्य की भी सम्पुष्टि की है । तथापि, इस साक्षी ने इस संबंध में कोई बात नहीं कही है कि घटना के दिन मृतका की मृत्यु किस प्रकार हुई । पूना अला (अभि. सा. 6) अर्थात् अभि. सा. 1 के भाई ने यह कथन किया है कि देवराज ने उसे जीवीबाई की मृत्यु के बारे में सूचना दी थी ।

21. उपरोक्त सभी कथनों और अभिलेख पर प्रस्तुत चिकित्सीय साक्ष्य का परिशीलन करने पर, उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए इस मत से हमारा पूर्णतया समाधान हो गया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित किया गया यह आरोप सभी संदेह के परे साबित हो गया है कि उसने अपनी पत्नी की हत्या की है और उसका शव दफन करके साक्ष्य नष्ट करने का प्रयास किया है ।

22. हमने मामले का परिशीलन किया है कि क्या वर्तमान मामले में अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से दो मत संभव हैं या नहीं । हमारी राय में, विचारण न्यायालय ने ऐसा मत व्यक्त किया है जो अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से संभव नहीं है । विचारण न्यायालय ने इस मुद्दे पर अनावश्यक ही बल दिया है कि अभियुक्त को अपराध से संबद्ध करने के लिए कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, अभिलेख पर प्रत्यक्ष साक्ष्य मौजूद होने की कोई संभावना नहीं हो सकती ।

23. ऊपर चर्चा किए गए कारणों के आधार पर, हम अपीलार्थी के विरुद्ध उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि और दंडादेश में हस्तक्षेप करने के आनत नहीं हैं । अतः अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस.

[2016] 3 उम. नि. प. 209

हिमाचल प्रदेश राज्य

बनाम

राजीव जस्सी

6 मई, 2016

न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा और न्यायमूर्ति अरुण मिश्र

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106] – हत्या – अभियुक्त-पति द्वारा मृतका-पत्नी को जबरदस्ती विष पिलाकर हत्या – मृतका के शरीर के अग्र भाग पर क्षतियां पाया जाना – अभियुक्त द्वारा मृतका को पहुंची क्षतियों का स्पष्टीकरण न दिया जाना – अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला प्रचुर साक्ष्य होने पर कि अभियुक्त का मृतका के प्रति व्यवहार उचित नहीं था तथा क्षतियों से यह उपदर्शित होने पर कि विषाक्तिकरण के कारण मृत्यु कारित करने से पूर्व उसके साथ हिंसा की गई थी, उच्च न्यायालय ने मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट और साक्षियों के साक्ष्य पर संदेह करके और विचारण न्यायालय के दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय को उलटकर गलती की है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 – हत्या – अभियुक्त-पति द्वारा मृतका-पत्नी को जबरदस्ती विष पिलाकर हत्या – मृतका के अग्र भाग पर क्षतियां पाया जाना, मृतका के चीखने-चिल्लाने पर पड़ोसियों द्वारा दरवाजा खटखटाने और अभियुक्त द्वारा तुरंत दरवाजा न खोलने, पड़ोसियों-साक्षियों के अनुरोध करने के बावजूद मृतका की हालत अस्थिर होते हुए भी उसे अस्पताल न ले जाना, पुलिस के पहुंचने के पश्चात् ही मृतका को अस्पताल ले जाना, हत्या से लगभग 15 दिन पूर्व जैव फास्फोरस विष खरीदने की बात साबित होना आदि ऐसी परिस्थितियां हैं जो अचूक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हैं, इसलिए अभियुक्त की दोषसिद्धि उचित है ।

प्रत्यर्थी-अभियुक्त का विवाह मृतका के साथ तारीख 25 अप्रैल, 1998 को हुआ था । मृतका सुसंगत समय पर सामान्य अस्पताल, चैली, जिला सोलन में दंत शल्य चिकित्सक के रूप में तैनात थी, जबकि अभियुक्त प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, घरौन, जिला रोपड़, पंजाब राज्य में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात था । अभियुक्त शराब पीने का आदी था और

इसके कारण पति-पत्नी के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे । अभियुक्त द्वारा तारीख 26 मई, 2000 को अपनी पत्नी (मृतका) की जबरदस्ती विष पिलाकर हत्या कर दी गई । विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया और आजीवन कारावास का दंडादेश दिया । अपील में उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा प्रत्यर्थी को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया कि परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति की नहीं हैं और परिस्थितियों की शृंखला इतनी पूर्ण नहीं है जो अचूक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हों । राज्य ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय की राय में, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और आदेश साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित है और इस मामले में विचारण न्यायालय द्वारा सिद्ध पाई गई परिस्थितियों पर उच्च न्यायालय द्वारा अनावश्यक रूप से संदेह किया गया है तथा हल्केपन से उपेक्षा की गई है । उच्च न्यायालय ने मरणोत्तर परीक्षा पर अनावश्यक रूप से संदेह किया है जिसमें सात क्षतियां अभिलिखित हैं । नेत्रगुहा के चारों ओर, उसके नीचे के क्षेत्र, माथे, ऊपरी भौंह, ठोढ़ी पर बड़े आकार के विभिन्न नील मौजूद थे, ठोढ़ी पर 8 से. मी. × 7 से. मी. का नील, निचले होंठ पर नील, गर्दन तथा छाती के ऊपरि भाग पर 11 से. मी. × 5 से. मी. की अनेक छोटी खरोंचें, कांख के नीचे के क्षेत्र पर 10 से. मी. × 4 से. मी. का नील था । क्षतियों की उपर्युक्त प्रकृति से यह उपदर्शित होता है कि वे ऐंठन के कारण कारित नहीं हो सकती थीं । अभियुक्त उसी कमरे में विपदग्रस्त के साथ था, यह बात विवादग्रस्त नहीं है । अतः उसे विपदग्रस्त के शरीर पर पाई गई क्षतियों के बारे में स्पष्टीकरण देना चाहिए था । अभि. सा. 2, डा. चौधरी द्वारा क्षतियों की सही संख्या का उल्लेख नहीं किया गया था क्योंकि उसने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वह संपूर्ण शरीर का परीक्षण नहीं कर सका था क्योंकि विपदग्रस्त की हालत अस्थिर थी और वह उसे उपचार देने में लगा था और उसके पश्चात् उसे शिमला के अस्पताल में रेफर किया था । विपदग्रस्त घर पर ही बेहोश हो गई थी । उच्च न्यायालय ने शव-परीक्षा करने वाले शल्य-चिकित्सक पर अनावश्यक रूप से संदेह किया, जिसने स्पष्ट रूप से यह राय व्यक्त की थी कि क्षतियों की प्रकृति से निश्चित रूप से यह उपदर्शित होता है कि विपदग्रस्त को जबरदस्ती विष दिया गया था । इस प्रकार की क्षतियां जबरदस्ती विष देते हुए उस समय कारित हो सकती थीं जब विपदग्रस्त इस विष से अपने

को बचाने की कोशिश कर रही होगी । अभि. सा. 2, डा. चौधरी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में भी यह कथन किया कि यह आत्महत्या का मामला नहीं हो सकता है । तथापि, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 से दिए गए इस सुझाव पर कि यह विपदग्रस्त द्वारा आत्महत्या करने के लिए स्वेच्छया विष खाने का मामला हो सकता है, तो डाक्टर स्पष्ट तौर पर उक्त सुझाव से इनकार नहीं कर सके क्योंकि वे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं थे । इसके अतिरिक्त वे अनुमित रूप से इस मुद्दे पर निर्णायक नहीं हैं कि विपदग्रस्त ने स्वयं विष खाया था या नहीं । उनकी वस्तुनिष्ठ राय साफ और स्पष्ट है कि क्षतियों की प्रकृति पर विचार करते हुए यह जबरदस्ती विष देने का मामला हो सकता है और इस प्रक्रिया में जब मृतका ने संघर्ष किया तो अभियुक्त ने क्षतियां कारित की होंगी । इस प्रकार, उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को साक्ष्य का वस्तुनिष्ठ अवधारण नहीं कहा जा सकता है । अभियुक्त स्वीकृत रूप से मृतका के साथ था । उसे मृतका के शरीर पर पाई गई कई सारी क्षतियों के बारे में स्पष्टीकरण देना चाहिए था कि गर्भाशय में सूजन सहित ये क्षतियां कैसे कारित हुईं । वह इनका स्पष्टीकरण देने में पूरी तरह से असफल रहा है । उसके द्वारा यह कथन नहीं किया गया है कि मृतका को क्षतियां ऐंठन के कारण कारित हुई थीं । उसके द्वारा यह कथन नहीं किया गया कि मृतका ऐंठन होने के दौरान नीचे गिर गई थी । उसके होंठों, ठोढ़ी, गले और गर्दन इत्यादि पर क्षतियां, जैसा कि विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि ये क्षतियां उसे जबरदस्ती विष देते समय कारित की गई थीं, अभियुक्त के विरुद्ध एक मजबूत परिस्थिति है और इसके अतिरिक्त इसमें इसके पश्चात् चर्चा किए गए अभियुक्त के आचरण को ध्यान में रखते हुए इसे हल्केपन से अनदेखा नहीं किया जा सकता है । मृतका के शरीर के अग्र भाग पर क्षतियां थीं जिससे उपदर्शित होता है कि मृतका की विषाक्तिकरण के कारण मृत्यु कारित करने से पूर्व उसके साथ हिंसा की गई थी । साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 में तथ्य की विशेष जानकारी रखने वाले व्यक्ति से उस तथ्य का स्पष्टीकरण धारा 106 में की गई अपेक्षा अनुसार देने की अपेक्षा की गई है । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में भी गलती की है कि चूंकि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि मृतका के साथ दहेज की मांग के कारण दुर्व्यवहार या उसे तंग किया गया था और क्रूरता की गई थी । इसलिए अभियुक्त संदेह के फायदे का हकदार है । अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला प्रचुर साक्ष्य है कि अभियुक्त का

मृतका के प्रति व्यवहार उचित नहीं था और चैली में मकान-मालिक द्वारा उसे मकान से निकाल दिया गया था । अभियुक्त के पूर्ववर्ती मकान-मालिक अर्थात् दयाल सिंह ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि अभियुक्त शराब के नशे में प्रायः विपदग्रस्त के साथ मारपीट और झगड़ा करता था, जिसके कारण उसने अभियुक्त को मकान खाली करने के लिए कहा था । उसके पश्चात् अभियुक्त निकटवर्ती मकान में स्थानांतरित हुआ था, जिसमें घटना घटी थी । अभि. सा. 6 और 11 के कथनों से भी यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त द्वारा विपदग्रस्त के साथ निरंतर दुर्व्यवहार किया जाता था और मारपीट की घटनाएं होती रहती थीं । मृतका के भाई अर्थात् अनिल कुमार के कथन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है, जिसके साथ भी घटना की रात को मारपीट की गई थी । अनिल कुमार ने यह कथन किया है कि अभियुक्त ने विपदग्रस्त के उदर पर ठोकर से प्रहार किया था जबकि वह 8 माह की गर्भवती थी, और गर्भवती होने का तथ्य इस मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट से साबित होता है कि विपदग्रस्त के गर्भाशय से 8 माह का शिशु बरामद किया गया था । डा. पीयूष कपिला ने विपदग्रस्त की शव-परीक्षा करते समय उदरीय सूजन पाई थी जो स्पष्ट तौर पर अभियुक्त द्वारा मारी गई ठोकर से कारित हुई थी । अनिल कुमार के कथन की संपुष्टि चिकित्सा साक्ष्य से होती है । अनिल कुमार के इस कथन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि अभियुक्त ने उसे भी गर्दन और चेहरे पर अनेक खरोंचों के रूप में क्षतियां कारित की थीं । डा. आर. के. शर्मा ने अनिल कुमार के शरीर पर पाई गई क्षतियों को साबित किया है और क्षति रिपोर्ट को भी साबित किया है । उच्च न्यायालय ने अन्यथा अभिनिर्धारित करके गलती की है । (पैरा 14, 15 और 16)

एक अन्य परिस्थिति जो अभियुक्त पर गंभीर संदेह पैदा करती है, यह है कि वह हालांकि इस बात को भली-भांति जानता था कि विपदग्रस्त की हालत अस्थिर है और जैव फास्फोरस विषाक्तिकरण के कारण वह जीवन के लिए संघर्ष कर रही है, इसके बावजूद प्रारंभ में जब पड़ोसियों ने विपदग्रस्त के सिसकने की आवाज सुनी, तो अभियुक्त ने तुरंत दरवाजा नहीं खोला और पांच मिनट के पश्चात् दरवाजा खोला । यदि इस बात को अनदेखा भी कर दिया जाए, तो भी जब पड़ोसियों ने उससे मृतका को अस्पताल ले जाने के लिए कहा तो उसके लिए यह कहने का कतई कोई कारण नहीं था कि यह उनका पारिवारिक मामला है और वह जल्दी ही ठीक हो जाएगी । उसने मृतका को अस्पताल ले जाने में साशय देरी की और जब पुलिस आई केवल तभी विपदग्रस्त को अस्पताल ले जाया गया

और पूर्वाह्न में 6.00 बजे डा. चौधरी द्वारा उसका परीक्षण किया गया । यदि अभियुक्त निर्दोष होता तो वह विपदग्रस्त को तुरंत अस्पताल ले गया होता और पड़ोसियों के अनुरोध को नहीं ठुकराता तथा उसे अस्पताल ले जाने में देरी नहीं करता और पुलिस के पहुंचने की प्रतीक्षा नहीं की गई होती और उसके पश्चात् जब पुलिस विपदग्रस्त को अस्पताल लेकर गई, तब वह उसके साथ अस्पताल गया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की है कि अभियुक्त मृतका के साथ अस्पताल गया था इसलिए यह परिस्थिति उसके पक्ष में है । जबकि यह प्रतीत होता है कि अत्यधिक देरी कारित करने और पुलिस तथा विपदग्रस्त के साथ अस्पताल जाने में अपने आप को बचाने और यह जानने के लिए कि क्या प्रकट होता है तथा डाक्टरों को गलत जानकारी देने का प्रयास था । इस प्रकार विपदग्रस्त को अस्पताल न ले जाने का अभियुक्त का आचरण उस पर संदेह पैदा करता है । व्यक्ति झूठ बोल सकते हैं किंतु परिस्थितियां नहीं, यह साक्ष्य का मूल्यांकन करने का आधारभूत सिद्धांत है । संपूर्ण परिस्थितियां अचूक अभियुक्त की दोषिता की ओर इंगित करती हैं । अभियुक्त इस बात से भली-भांति परिचित था कि विपदग्रस्त जैव फास्फोरस विषाक्तिकरण से ग्रसित है और बोतल भी वहां खुली पड़ी थी । कमरे से "नुवन" विष की गंदी गंध आ रही थी । घरेलू सामान और माल कमरे में बिखरा पड़ा था और बालक रो रहा था । कमरे से हिंसा करने के चिह्न प्रकट हो रहे थे । कई साक्षियों अर्थात् दयाल सिंह, शिव कुमार और गायत्री देवी ने इस बारे में स्पष्ट रूप से कथन किया है । शिव कुमार ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि विपदग्रस्त से यह पूछने पर कि क्या हुआ, उसने अपने पति, अभियुक्त की ओर अपना हाथ उठाया था । इसी प्रकार का कथन अनिल कुमार ने किया है । राम किशन ने भी यह कथन किया है कि जब विपदग्रस्त से यह पूछा गया कि क्या हुआ, तो उसने अपना हाथ अभियुक्त की ओर उठाया था । उसे यह अनुभूति और महसूस हुआ था कि विपदग्रस्त को अभियुक्त द्वारा जबरदस्ती विष दिया गया है । अपने पति की ओर हाथ उठाकर विपदग्रस्त का यह अंतिम अंगविक्षेप यह उपदर्शित करता है कि उसकी यह हालत उसने की थी । विपदग्रस्त अपने को बचाने के लिए भी चिल्ला रही थी, यह बात स्वयं को मारने के लिए आत्महत्या का प्रयत्न करने के प्रतिकूल है । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने संजय कुमार, जो एक स्वतंत्र साक्षी है, के साक्ष्य को त्यक्त कर दिया है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि 14-15 दिन पहले अभियुक्त ने मक्खियां आदि मारने के बहाने उसकी दुकान से 50/- रुपए

में नुवन विष खरीदा था । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि गर्मी के मौसम में मक्खियां मारने के लिए ऐसा खतरनाक विष खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं थी । अभियुक्त का आशय विपदग्रस्त की हत्या करना था और उसके जीवन का अंत करने के लिए उसने विष खरीदा । उच्च न्यायालय ने संजय कुमार के कथन पर इस आधार पर विश्वास नहीं किया कि अभियुक्त एक डाक्टर है और विभिन्न स्थानों पर तैनात रहा है इसलिए वह कहीं और से परिष्कृत प्रकृति का एक बेहतर विष खरीद सकता था और वह अपने विरुद्ध साक्ष्य सृजित नहीं करता । उच्च न्यायालय ने कोई स्पष्ट कारण दिए बिना नुवन खरीदने के साक्ष्य को अस्वीकार कर दिया । कभी-कभी तथ्य कल्पना से परे विचित्र होते हैं । उपर्युक्त नुवन विष खरीदे जाने के संजय कुमार के कथन पर संदेह करने का कतई कोई कारण नहीं है और जब यह मकान में पाया गया था तो या तो इसे विपदग्रस्त ने खरीदा था या अभियुक्त ने । यह संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि यह विष अभियुक्त द्वारा खरीदा गया था और यह कमरे में पाया गया था तथा इस विष के कारण ही विपदग्रस्त की मृत्यु हुई थी । अभियुक्त द्वारा विपदग्रस्त को स्वयं नमकीन पानी देने का तथ्य उसे दोषिता से मुक्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है । यह नहीं कहा जा सकता है कि क्षतियां स्वयं कारित की गई थीं । अभियुक्त ने इस प्रभाव का कथन नहीं किया है इसलिए डीएनए परीक्षण कराए जाने की आवश्यकता नहीं थी, जैसी कि प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दलील दी गई है । इसके अतिरिक्त जबरदस्ती विष देने की बात का समर्थन मृतका के अग्र भाग पर पाई गई क्षतियों के रूप में चिकित्सा साक्ष्य द्वारा होता है, इन क्षतियों से इस प्रक्रिया में मृतका द्वारा अपने आप को बचाने के लिए किया गया संघर्ष भी दर्शित होता है । ये क्षतियां ऐंठन के कारण कारित नहीं हो सकती थीं और अभियुक्त के संपूर्ण आचरण तथा मृतका द्वारा अपनी हालत के लिए जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में अपने पति की ओर हाथ उठाकर संकेत करने, अभियुक्त द्वारा जैव फास्फोरस जैसे खतरनाक प्रकार के विष के बारे में भली-भांति जानकारी होते हुए विपदग्रस्त को देरी से अस्पताल ले जाना उसकी दोषिता को इंगित करता है और परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण हो जाती है । (पैरा 17, 18, 19 और 20)

प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी अनुरोध किया गया है कि बालक की आयु अब 17 वर्ष है और अभियुक्त के साथ रहता है, इसलिए हमें नरम दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ।

इस प्रकार के अपराध में यह बात किसी प्रकार की नरमी दिखाने का आधार नहीं हो सकती है, विशिष्ट रूप से जब अभियुक्त ने अपनी उस पत्नी की देखरेख नहीं की और उसकी हत्या कर दी जो एक डाक्टर थी और साथ-ही-साथ गर्भवती थी और उसके गर्भ में 8 माह का नर शिशु था जिसका गर्भस्थ शिशु उसके गर्भाशय से बरामद किया गया था । इन परिस्थितियों में, अभियुक्त किसी प्रकार के नरम बर्ताव का हकदार नहीं है क्योंकि ऐसा बर्ताव केवल विधिक मानदंडों के अनुसार ही किया जा सकता है । (पैरा 22)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2352 : **सिद्धार्थ वशिष्ठ** उर्फ **मनु शर्मा** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली)** ;	15
[1995]	(1995) सप्ली. (2) एस. सी. सी. 187: **कृष्ण लाल और अन्य** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य** ;	15
[1985]	[1985] 1 उम. नि. प. 995 = ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622 : **शरद बिरधी चंद शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	21
[1960]	ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 7 : **सी. एस. डी. स्वामी** बनाम **राज्य** ।	15

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2005 की दांडिक अपील सं. 771.

2002 की दांडिक अपील सं. 10 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, शिमला के तारीख 9 अगस्त, 2004 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री सूर्यनारायण सिंह, ज्येष्ठ अपर अधिवक्ता और सुश्री प्रगति नीखरा

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री जसप्रीत गोगिया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अरुण मिश्र ने दिया ।

न्या. मिश्र – प्रत्यर्थी द्वारा विष देकर अपनी पत्नी की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध कारित करने के विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटते हुए प्रत्यर्थी को दोषमुक्त करने के विरुद्ध राज्य ने यह अपील फाइल की है । विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी पर आजीवन कारावास और 5,000/- रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया गया था जिसे अपील न्यायालय द्वारा उलट दिया गया ।

2. अभियोजन का पक्षकथन संक्षेप में यह है कि डा. राजीव का विवाह तारीख 25 अप्रैल, 1998 को रामकिशन (अभि. सा. 9) की पुत्री डा. सुमन लता के साथ हुआ था । घटना 26 मई, 2000 को घटी । मृतका सुसंगत समय पर सामान्य अस्पताल, चैली, जिला सोलन में दंत शल्य चिकित्सक के रूप में तैनात थी, जबकि अभियुक्त प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, घरौन, जिला रोपड़, पंजाब राज्य में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात था ।

3. अभियोजन पक्ष का यह अभिकथन है कि दहेज की मांग और अभियुक्त की अत्यधिक शराब पीने की आदत के कारण मृतका और अभियुक्त के बीच संबंध कटु हो गए थे । वह शराब के नशे में मृतका के साथ मारपीट करता था । तारीख 23 मई, 2000 को मृतका का भाई अनिल कुमार (अभि. सा. 8) चैली में मृतका के पास आया और उसके पास ठहरा । तारीख 25 और 26 मई, 2000 की मध्यवर्ती रात्रि में अभियुक्त चैली आया जहां मृतका रह रही थी । उसने शराब पी हुई थी और मृतका को गाली देने लगा, उसे ठोकर मारी और उसके साथ मारपीट करने लगा । जब अनिल कुमार ने बीच-बचाव करने की कोशिश की तो अभियुक्त द्वारा उसकी भी पिटाई की गई और उसे घर से निकाल दिया । तारीख 26 मई, 2000 को पूर्वाह्न में लगभग 3.00 बजे सुरेन्द्र कुमार (अभि. सा. 5) पेशाब करने के लिए बाहर आया तो उसने मृतका के कराहने और चिल्लाने और जोर-जोर से उसके बच्चे के रोने की आवाज सुनी । मृतका चिल्ला रही थी "मुझे नमकीन पानी दो" । मैं मरना नहीं चाहती हूं । सुरेन्द्र कुमार मृतका के मकान पर गया । मकान अंदर से बंद था । उसने वेद प्रकाश (अभि. सा. 4), चैली ग्राम पंचायत के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा ओम प्रकाश (अभि. सा. 7) को सूचित किया । वे तीनों मृतका के मकान पर गए । वेद प्रकाश ने मकान का दरवाजा खटखटाया जो कि अंदर से बंद था । कुछ समय तक किसी ने दरवाजा नहीं खोला, लगभग पांच मिनट के पश्चात् अभियुक्त द्वारा दरवाजा खोला गया । कमरे में प्रवेश

करने पर अभि. सा. 4, 5 और 7 को कमरे से विषैली गंध आई । कमरे में सामान बिखरा हुआ था । मृतका बिस्तर पर पड़ी हुई थी और उसके चेहरे पर खरोंचें और नील था । बिस्तर तथा कमरे के फर्श पर पानी बिखरा हुआ था । मृतका के वस्त्र भी गीले थे । अभि. सा. 5 ने अभियुक्त से कहा कि मृतका को तुरंत अस्पताल ले जाया जाए । तथापि, अभियुक्त ने उत्तर दिया कि इसकी आवश्यकता नहीं है और जल्दी ही सब कुछ ठीक हो जाएगा ।

4. अभियोजन पक्ष का यह अभिकथन है कि इसी बीच दयाल सिंह (अभि. सा. 6), अनिल कुमार (अभि. सा. 8) और शिव कुमार (अभि. सा. 10) भी वहां आए । उन्होंने कमरे की हालत के साथ-साथ मृतका की अस्थिर और बिगड़ी हुई हालत देखी । जब उन्होंने अभियुक्त से पूछा कि क्या हुआ है, तो उसने धृष्टतापूर्वक उत्तर दिया कि यह उसकी व्यक्तिगत जिंदगी है और उन्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है । अभियुक्त ने मृतका को यह बहाना करके अस्पताल ले जाने से इनकार कर दिया कि कुछ नहीं हुआ है और वह स्वयं डाक्टर है और मृतका की देखरेख कर सकता है । अभि. सा. 6, 8 और 10 को भी कमरे से विषैली गंध आई । मृतका चिल्ला रही थी कि वह मरना नहीं चाहती है और उसे बचा लिया जाए । यह पूछे जाने पर कि क्या हुआ है, उसने अभियुक्त की ओर अपना हाथ उठाया । ओम प्रकाश (अभि. सा. 7) ने पूर्वाह्न में लगभग 4.30 बजे पुलिस को सूचित किया । इस सूचना के आधार पर बीरु अहमद (अभि. सा. 17) ने रोजनामचे में सूचना की प्रविष्टि की और घटनास्थल की ओर प्रस्थान किया । उसने मृतका को बेहोशी की हालत में बिस्तर पर पड़े हुए पाया । डा. ओ. पी. चौधरी (अभि. सा. 2) ने पूर्वाह्न में लगभग 6.00 बजे मृतका का परीक्षण किया और यह पाया कि रोगी अर्द्ध-चेतन अवस्था में थी और विषैला पदार्थ खाया था । डाक्टर ने (i) दाईं भौंह के पार्श्व पर 7 से. मी. × 5 से. मी. आकार की सूजन के साथ लालिमायुक्त नील पाया और (ii) दोनों होंठ सूझे हुए थे । यह भी पाया कि शरीर का पूर्ण परीक्षण नहीं किया जा सकता है क्योंकि रोगी गंभीर हालत में है । रक्तचाप नापने योग्य नहीं था तथा पुतलियां प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया नहीं कर रही थीं ।

5. अभि. सा. 2 ने आरंभिक उपचार किया । उसने पहले लवण के घोल के साथ और फिर साधारण पानी के साथ जठरीय प्रक्षालन किया । उसके पश्चात् उसने पूर्वाह्न में लगभग 7.00 बजे मृतका को विशेषज्ञ की राय और आगे के उपचार के लिए इंदिरा गांधी आयुर्विज्ञान अस्पताल, शिमला रेफर कर दिया । उसी दिन सायंकाल में तारीख 26 मई, 2000

को इंदिरा गांधी आयुर्विज्ञान अस्पताल, शिमला में मृतका की मृत्यु हो गई और इसकी सूचना पुलिस को दी गई । मरणोत्तर परीक्षा डा. पीयूष कपिला (अभि. सा. 3) द्वारा डा. वी. के. मिश्रा, सहायक आचार्य, न्याय-आयुर्विज्ञान के साथ मिलकर की गई । मृत्यु के कारण के बारे में यह राय व्यक्त की गई कि मृतका की मृत्यु जैव फास्फोरस विष की वजह से श्वासावरोध होने से हुई । मृतका के शव पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व की क्षतियां पाई गईं :–

(i) दाएं नेत्रगुहा के आसपास के भाग पर 10 से. मी. × 6 से. मी. की खरोंच के साथ-साथ दाईं भौंह पर सूजन तथा नाखून की गहरी दो खरोंच जिनमें से एक माथे पर और दूसरी उपरि भौंह पर और जिनका रंग नीला था ।

(ii) बाईं तरफ नेत्रगुहा के नीचे तथा गाल पर 9 सें. मी. × 4 से. मी. का बड़ा नीलापन लिए हुए नील ।

(iii) निचले होंठ के अंदर की तरफ बाईं ओर मध्य रेखा की तरफ 1/2 से. मी. × 1/2 से. मी. का नील जो नीलापन लिए हुए था ।

(iv) ठोढ़ी के नीचे स्थित मध्य रेखा पर नीलापन लिए हुए 8 से. मी. × 7 से. मी. का खरोंचयुक्त नील ।

(v) गर्दन और वक्ष के उपरि भाग पर दाईं ओर वक्ष के स्टर्नो-केल्विकुलर जोड़ पर सामने 3 से. मी. नीचे 11 से. मी. × 5 से. मी. की छोटी-छोटी बहुत सारी खरोंचें ।

(vi) कांख के नीचे के भाग पर मध्य कक्षीय रेखा में 10 से. मी. × 4 से. मी. का नील ।

(vii) दाएं हाथ के पृष्ठ पर 7 से. मी. × 5 से. मी. लंबा बैंगनी रंग का धब्बा और सुई चुबोने के कई सारे चिह्न (चिकित्सकजनित) ।'

इसके अतिरिक्त मरणोत्तर रिपोर्ट में यह पाया गया कि मृतका के गर्भ में 40 से. मी. लम्बाई और 29 सें. मी. सिर की गोलाई तथा 1300 ग्राम भार का मृत नर शिशु मौजूद था और डाक्टर ने शिशु की आयु 8 माह प्रगणित की थी ।

6. तारीख 27 मई, 2000 को अनिल कुमार (अभि. सा. 8) ने दहेज के लिए अभियुक्त द्वारा मृतका को तंग करने का उल्लेख करते हुए पुलिस थाने में एक रिपोर्ट दर्ज कराई । यह उल्लेख किया गया कि उसने ससुराल वालों से बात की थी और यह बताया गया कि अभियुक्त सायंकाल में चैली

आ रहा है । अर्ध-रात्रि में लगभग 12.00 बजे अभियुक्त सेंट्रो कार में चैली आया । वह शराब के नशे में था और अपने हाथ में एक शराब की बोतल लिए हुए था तथा उन्हें गाली देने लगा और मृतका, जो कि गर्भवती थी, के उदर पर ठोकर मारी । जब इस साक्षी ने उसे रोकने की कोशिश की तो अभियुक्त उन पर झपट पड़ा जिसके कारण इस साक्षी को खरोंचें और मुंह पर सूजन आई । फिर उसकी बहिन ने उसे वहां से जाने के लिए कहा । उसके पश्चात् वह अपने मित्र बबलू के मकान पर चला गया । बाद में दो/तीन व्यक्ति आए । उन्होंने बबलू को पुकारा और इस साक्षी के बारे में पूछताछ की तथा बताया कि उसकी बहिन की हालत ठीक नहीं है । उसके पश्चात् वह अपनी बहिन के रिहायशी क्वाटर पर गया और वहां अभियुक्त राजीव पाया और उसने दरवाजा खोला तथा उसकी बहिन की हालत अस्थिर थी । उसकी बहिन का 13 माह का एक पुत्र है । उसे संदेह हुआ कि उसके जीजा राजीव ने उसकी बहिन की हत्या करने के लिए उसे जबरदस्ती विष दिया है । अभियुक्त के दुर्व्यवहार के कारण उसकी बहिन की मृत्यु हुई है तथा उसके विरुद्ध कार्यवाही की जाए ।

7. अन्वेषण से यह प्रकट हुआ कि अभियुक्त ने घटना से 14-15 दिन पहले चैली के एक दुकानदार संजय कुमार (अभि. सा. 13) से "नुवन" व्यापार-नाम के अधीन बेचा जाने वाला जैव फास्फोरस इस बहाने खरीदा था कि उसे मक्खी मारने के लिए इसकी आवश्यकता है । अभियोजन पक्ष द्वारा यह भी अभिकथन किया गया कि दुर्भाग्यशाली दिन अभियुक्त ने मृतका की हत्या करने के लिए जबरदस्ती उसे विष दिया । विष देने के दौरान मृतका ने संघर्ष किया, इसलिए उसके चेहरे, होंठों और गर्दन पर क्षतियां पहुंचीं । मृतका को दहेज के लिए अभियुक्त और उसके माता-पिता द्वारा तंग किया जा रहा था और क्रूरता की जा रही थी । भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 302, 304ख, 314 और 498क के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया ।

8. अभियुक्त ने दोषिता से इनकार किया और निर्दोष होने का अभिवाक् किया । अभियोजन पक्ष ने विचारण के अनुक्रम में 18 साक्षियों की परीक्षा कराई । अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में मृतका की मृत्यु विष के कारण होने के तथ्य से इनकार नहीं किया । उसके द्वारा यह कथन किया गया कि मृतका ने उसे यह बताया था कि उसने कुछ ओषधि खा ली है और उससे कहा था कि उसे नमकीन पानी दे । मृतका को किसी ओषधि के कारण ऐंठन हो रही

थी । उसने उसे उल्टी करने के लिए पानी दिया था । वह मृतका को पहले तो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, चैली और फिर इंदिरा गांधी आयुर्विज्ञान अस्पताल, शिमला ले कर गया । मृतका एक भावुक महिला थी । उसके मृतका के साथ संबंध सौहार्दपूर्ण थे । उसने प्रतिरक्षा में तीन साक्षियों की परीक्षा कराई ।

9. विचारण न्यायालय ने माता-पिता को दोषमुक्त कर दिया, तथापि, प्रत्यर्थी-पति को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया ।

10. विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभिलेख पर लाए गए पारिस्थितिक साक्ष्य में सकारात्मक सबूत, घटनाओं का विश्वसनीय क्रम, वास्तविक सत्यता अंतर्विष्ट है जो अभियुक्त को अपनी पत्नी को जबरदस्ती जैव फास्फोरस विष देने का अपराध करने से जोड़ता है । विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित परिस्थितियों के आधार पर दोषसिद्धि की :–

(i) अभियुक्त द्वारा विपदग्रस्त के साथ निरन्तर दुर्व्यवहार, मारने-पीटने के संबंध में अभि. सा. 6 और 11 के कथनों का अवलंब लिया । (ii) मकान मालिक दयाल सिंह ने यह कथन किया कि जब अभियुक्त मत्तता की हालत में होता था तो विपदग्रस्त के साथ मारपीट और उसके साथ झगड़ा करता था । इस बात को लेकर उसने अभियुक्त से मकान खाली करने के लिए कहा था । इसके पश्चात् अभियुक्त प्रश्नगत मकान में स्थानांतरित हुआ था । (iii) अभियुक्त अपनी अपराधिता को सतत् रूप से बनाए रखे हुए था । दुर्भाग्यशाली रात को अभियुक्त के आचरण से यह उपदर्शित होता है कि वह मकान पर आया और अनिल कुमार (अभि. सा. 8) और उसकी मृतका बहिन के साथ मारपीट करने लगा । (iv) उसने विपदग्रस्त के उदर पर ठोकर मारी हालांकि वह गर्भवती थी । शव-परीक्षा करने वाले शल्यचिकित्सक डा. पीयूष कपिला (अभि. सा. 3) द्वारा उदरीय सूजन पाई गई थी । (v) दुर्भाग्यशाली रात्रि को अभियुक्त ने मृतका के भाई अभि. सा. 8 की पिटाई करने के पश्चात् उसे चैली स्थित मकान से बाहर निकाल दिया था । अभि. सा. 8 को गर्दन, ठोढ़ी, चेहरे और शरीर के अन्य अंगों पर अनेक खरोंचों के रूप में तीन क्षतियां पहुंचीं । (vi) अभियुक्त मृतका के कमरे में मौजूद था । (vii) मृतका के शरीर पर जो क्षतियां पाई गईं थीं, वे मृत्यु-पूर्व प्रकृति की थीं । सभी क्षतियां शरीर के अग्र भाग पर थीं और उस समय

कारित की गईं थीं जब वह बिस्तर पर लेटी हुई थी । ऐसी क्षतियां मुंह दबाने और गला घोंटने तथा जबरदस्ती विष देने के मामलों में पाई जा सकती हैं । विपदग्रस्त के होंठों, ठोढ़ी, गले और गर्दन पर पहुंची क्षतियां अभियुक्त द्वारा जबरदस्ती विष देने के समय कारित की जा सकती थीं । (viii) अभियुक्त ने तुरंत दरवाजा नहीं खोला अपितु पांच मिनट के पर्याप्त समय के पश्चात् खोला । (ix) अभियुक्त मृतका को अस्पताल लेकर नहीं गया और यह कहा कि उसे कुछ नहीं हुआ है और जल्दी ही वह ठीक हो जाएगी । अभियुक्त का डाक्टर होने के नाते यह कर्तव्य था कि उसे तुरंत अस्पताल ले जाता । अभियुक्त चाहता था कि विपदग्रस्त की मृत्यु हो जाए और इसलिए उसे अस्पताल ले जाने में देर की । मृतका के शरीर पर पाई गई क्षतियों पर विचार करते हुए यह मामला स्वयं विष खाने का नहीं है । (x) घरेलू सामान और माल कमरे में बिखरा पड़ा था । बालक रो रहा था और उसकी छोटी-सी खाली बोतल जिसमें जैव फास्फोरस विष था वहां पड़ी पाई गई थी । डाट के रूप में प्रयुक्त किया जाने वाला इसका ढक्कन भी पड़ा हुआ था और कमरे में तीव्र विषैली गंध मौजूद थी । (xi) जब साक्षियों ने विपदग्रस्त से पूछा कि उसे क्या हुआ है, तो उसने अभियुक्त की ओर अपना हाथ उठाया था । (xii) अभियुक्त ने घटना की तारीख से 14-15 दिन पहले संजय कुमार, अभि. सा. 13 की दुकान से 50/- रुपए में जैव फास्फोरस खरीदा था । अभियुक्त को मक्खियों को मारने के लिए इसे खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं थी । उसने इसे विपदग्रस्त के जीवन का अंत करने के लिए पूर्वचिंतन के साथ खरीदा था । (xiii) विपदग्रस्त के शरीर पर पाई गई क्षतियों पर विचार करते हुए ये क्षतियां ऐंठन के कारण कारित नहीं हो सकती थीं ।

11. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा प्रत्यर्थी को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया कि परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति की नहीं हैं । परिस्थितियों की शृंखला इतनी पूर्ण नहीं हैं जो अचूक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हों । यद्यपि डा. ओ. पी. चौधरी (अभि. सा. 2) ने यह कथन किया है कि क्षतियों से सकारात्मक रूप से विपदग्रस्त को जबरदस्ती विषैला पदार्थ खिलाने की बात उपदर्शित होती है, तथापि, वह यह नहीं कह सकता कि क्या मृतका ने आत्महत्या करने के लिए विष स्वयं खाया था । ऐसा ही कथन डा. पीयूष कपिला (अभि. सा. 3) का है । उसके कथन को इस आधार पर भी अविश्वसनीय माना गया कि वह

विपदग्रस्त द्वारा स्वयं आत्महत्या करने की संभाव्यता से इनकार नहीं कर सका । पुलिस को दी गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट यह थी कि विपदग्रस्त ने कोई विषैला पदार्थ खा लिया है । प्रारंभ में धारा 306 और 498क के अधीन अपराध का मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था । डा. चौधरी (अभि. सा. 2) ने मृतका के शरीर पर केवल दो क्षतियां पाई थीं । तथापि, डा. पीयूष कपिला (अभि. सा. 3) द्वारा प्रस्तुत की गई मरणोत्तर परीक्षा में क्षतियां 2 से बढ़कर 6 हो गईं । इस संभाव्यता से इनकार नहीं किया गया कि क्षतियां ऐंठन के कारण कारित हुई हों । ऐंठन के कारण क्षतियां कारित होने की संभाव्यता इस तथ्य से मजबूत हो जाती है कि विपदग्रस्त के आरंभ में किए गए परीक्षण के समय पाई गई मृत्यु-पूर्व की क्षतियों की संख्या मरणोत्तर परीक्षा करने के समय बढ़ी हुई पाई गई थीं । अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहा कि विष अभियुक्त के कब्जे में था । चूंकि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि मृतका के साथ दहेज के कारण दुर्व्यवहार या उसे तंग किया जा रहा था । दुकानदार संजय कुमार (अभि. सा. 13), जिसकी दुकान से अभियुक्त ने अभिकथित रूप से विष खरीदा था, का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है । अभियुक्त एक चिकित्सक है । उसे विष के बारे में ज्ञान है । वह चैली से ही विष खरीद कर अपने विरुद्ध साक्ष्य सृजित नहीं करता । अभियुक्त जैव फास्फोरस अर्थात् "नुवन" जैसे विष का विपदग्रस्त की हत्या करने के लिए चयन नहीं करता, जो कि एक नाशिकीटमार है जिसकी मिट्टी के तेल जैसी तीव्र गंध होती है । वह बेहतर विष खरीद सकता था । अभियुक्त ने विपदग्रस्त को नमकीन पानी दिया था ताकि वह उल्टी कर सके । इससे यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त ने मृतका को बचाने के लिए जठरीय प्रक्षालन कराया था । वह मृतका के साथ चैली अस्पताल और उसके पश्चात् शिमला के अस्पताल गया था । विपदग्रस्त ने विष देने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में अभियुक्त का नाम नहीं लिया था और उसके लिए अभियुक्त की ओर केवल अपना हाथ उठाने का कोई अवसर नहीं था । मृतका के भाई अर्थात् अनिल कुमार (अभि. सा. 8) का आचरण संदेह मुक्त नहीं है । मृतका के वस्त्र यह दर्शित करने के लिए प्रस्तुत नहीं किए गए कि उन पर विष के दाग और धब्बे थे । जब दो मत संभव हों, जो अभियुक्त के समर्थन में हो उसे अपनाया जाना चाहिए । इसलिए दोषसिद्धि अपास्त कर दी गई ।

12. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा

यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश को अवैध रूप से उलटा है । परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण है और दोषिता पूर्णतः साबित होती है । अभियुक्त द्वारा की गई विष की खरीद को सिद्ध किया गया है । यह सिद्ध किया गया है कि विष अभियुक्त के कब्जे में था । यह विवादग्रस्त नहीं है कि मृतका की मृत्यु विष के कारण हुई थी । अभियुक्त ने विपदग्रस्त के साथ अत्यंत क्रूरता का व्यवहार किया था और जब वह 8 माह की गर्भवती थी तब उसके गर्भाशय पर ठोकर मारी थी । मृतका के शरीर पर पाई गई क्षतियों की प्रकृति से यह उपदर्शित होता है कि यह विपदग्रस्त को जबरदस्ती विष देने का मामला है जिसके लिए उसने विरोध किया था । अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में मृतका के शरीर पर पाई गई क्षतियों के बारे में स्पष्टीकरण नहीं दिया है । डा. चौधरी (अभि. सा. 2) ने यह कथन किया है कि वह मृतका की अस्थिर हालत को ध्यान में रखते हुए शरीर का पूरा परीक्षण नहीं कर सका था, इसलिए मृतका के शरीर पर पाई गई मृत्यु-पूर्व की सभी क्षतियों का उल्लेख करने में असफल रहा था । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट जिसमें मृत्यु-पूर्व की सभी क्षतियां अभिलिखित हैं, उस पर अनावश्यक रूप से संदेह किया गया है । डाक्टर के लिए इस सुझाव का उत्तर देना संभव नहीं था कि विपदग्रस्त ने विष स्वयं खाया था या नहीं और डाक्टरों द्वारा ऐसा कथन करना आवश्यक नहीं है । उनकी राय के बारे में सुसंगत यह है कि उन्होंने यह कथन किया है कि क्षतियों की प्रकृति से यह उपदर्शित होता है कि मृतका को विष जबरदस्ती दिया गया था । अभियुक्त के आचरण से भी यह उपदर्शित होता है कि वह विपदग्रस्त को तुरंत अस्पताल लेकर नहीं गया था और इसमें देरी की थी । एक डाक्टर होने के नाते वह जैव फास्फोरस विष के परिणामों को जानता था और इसके बावजूद वह विभिन्न साक्षियों द्वारा किए गए अनुरोध के बावजूद विपदग्रस्त को अस्पताल लेकर नहीं गया । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा विपदग्रस्त से पूछे जाने पर कि क्या हुआ है, उसने अभियुक्त की ओर इशारा करते हुए अपना हाथ उठाया था क्योंकि वह अस्थिर हालत में थी । इस प्रकार अभियुक्त उसे तुरंत अस्पताल लेकर नहीं गया और उसे मरने के लिए छोड़ दिया । विचारण न्यायालय द्वारा विभिन्न परिस्थितियां सिद्ध पाए जाने पर बेझिझक और अत्रुटिपूर्ण रूप से अभियुक्त की दोषिता को इंगित किया गया है ।

13. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि मामले में दो मत संभव हैं । इसलिए उच्च

न्यायालय ने अभियुक्त को ठीक ही फायदा दिया है । मृतका को क्षतियां तब पहुंचीं थीं जब उसे ऐंठन हो रही थी । साक्षी ओम प्रकाश (अभि. सा. 7) ने यह कथन किया है कि मृतका कांप रही थी और उसकी हालत नाजुक थी । वह दर्द से कराह रही थी, अतः इस बात की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मृतका को क्षतियां तब पहुंची थीं जब उसे ऐंठन हो रही थी । मोढी के चिकित्सा विधिशास्त्र से यह उपदर्शित होता है कि जैव फास्फोरस विष लेने के पश्चात् एक लक्षण ऐंठन भी हो सकता है । अभियुक्त द्वारा जठरीय प्रक्षालन दिया गया था और इस बात का समर्थन अभि. सा. 4, 5 और 7 के साक्ष्य से होता है जिन्होंने यह कथन किया है कि जिस बिस्तर पर मृतका लेटी हुई थी वह गीला था और बिस्तर तथा कमरे के फर्श पर पानी बिखरा हुआ था । क्योंकि अभियुक्त जठरीय प्रक्षालन देने की प्रक्रिया में लगा था, इसलिए उसे दरवाजा खोलने में समय लगा । मृतका ने विष खाने के कारण हुई खुजली और जलन की वजह से अपने चेहरे और गर्दन को खरोंचा होगा । यह साबित करने के लिए कोई डीएनए परीक्षण नहीं कराया गया कि मृतका के चेहरे पर नाखूनों की खरोंचें प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा कारित की गई थीं । विष देने का कोई हेतु नहीं था और अभियुक्त के कब्जे में विष नहीं था । अभियुक्त ऐसे व्यक्ति से विष नहीं खरीदता जो उसे जानता हो । अपनी पत्नी की हत्या करने के लिए वह बेहतर विष का चयन कर सकता था । अभियुक्त ने चार वर्ष से अधिक का दंडादेश भुगत लिया है । मृतका द्वारा छोड़ कर गए पुत्र की आयु अब 17 वर्ष है और उसका पालन-पोषण अभियुक्त द्वारा किया जा रहा है । अतः इस न्यायालय को नरम दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय में हस्तक्षेप करने का मामला नहीं बनता है ।

14. हमारी राय में, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और आदेश साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित है और इस मामले में विचारण न्यायालय द्वारा सिद्ध पाई गई परिस्थितियों पर उच्च न्यायालय द्वारा अनावश्यक रूप से संदेह किया गया है तथा हल्केपन से उपेक्षा की गई है । उच्च न्यायालय ने मरणोत्तर परीक्षा पर अनावश्यक रूप से संदेह किया है जिसमें यथा पूर्वोक्त सात क्षतियां अभिलिखित हैं । नेत्रगुहा के चारों ओर, उसके नीचे के क्षेत्र, माथे, ऊपरी भौंह, ठोढ़ी पर बड़े आकार के विभिन्न नील मौजूद थे, ठोढ़ी पर 8 से. मी. × 7 से. मी. का नील, निचले होंठ पर नील, गर्दन तथा छाती के उपरि भाग पर 11 से. मी. × 5 से. मी. की अनेक छोटी खरोंचें, कांख के नीचे के क्षेत्र पर 10 से.

मी. × 4 से. मी. का नील था । क्षतियों की उपर्युक्त प्रकृति से यह उपदर्शित होता है कि वे ऐंठन के कारण कारित नहीं हो सकती थीं । अभियुक्त उसी कमरे में विपदग्रस्त के साथ था, यह बात विवादग्रस्त नहीं है । अतः उसे विपदग्रस्त के शरीर पर पाई गई क्षतियों के बारे में स्पष्टीकरण देना चाहिए था । अभि. सा. 2, डा. चौधरी द्वारा क्षतियों की सही संख्या का उल्लेख नहीं किया गया था क्योंकि उसने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वह संपूर्ण शरीर का परीक्षण नहीं कर सका था क्योंकि विपदग्रस्त की हालत अस्थिर थी और वह उसे उपचार देने में लगा था और उसके पश्चात् उसे शिमला के अस्पताल में रेफर किया था । विपदग्रस्त घर पर ही बेहोश हो गई थी । उच्च न्यायालय ने शव-परीक्षा करने वाले शल्य-चिकित्सक पर अनावश्यक रूप से संदेह किया, जिसने स्पष्ट रूप से यह राय व्यक्त की थी कि क्षतियों की प्रकृति से निश्चित रूप से यह उपदर्शित होता है कि विपदग्रस्त को जबरदस्ती विष दिया गया था । इस प्रकार की क्षतियां जबरदस्ती विष देते हुए उस समय कारित हो सकती थीं जब विपदग्रस्त इस विष से अपने को बचाने की कोशिश कर रही होगी । अभि. सा. 2, डा. चौधरी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में भी यह कथन किया कि यह आत्महत्या का मामला नहीं हो सकता है । तथापि, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 से दिए गए इस सुझाव पर कि यह विपदग्रस्त द्वारा आत्महत्या करने के लिए स्वेच्छया विष खाने का मामला हो सकता है, तो डाक्टर स्पष्ट तौर पर उक्त सुझाव से इनकार नहीं कर सके क्योंकि वे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं थे । इसके अतिरिक्त वे अनुमित रूप से इस मुद्दे पर निर्णायक नहीं हैं कि विपदग्रस्त ने स्वयं विष खाया था या नहीं । उनकी वस्तुनिष्ठ राय साफ और स्पष्ट है कि क्षतियों की प्रकृति पर विचार करते हुए यह जबरदस्ती विष देने का मामला हो सकता है और इस प्रक्रिया में जब मृतका ने संघर्ष किया तो अभियुक्त ने क्षतियां कारित की होंगी । इस प्रकार, उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को साक्ष्य का वस्तुनिष्ठ अवधारण नहीं कहा जा सकता है ।

15. अभियुक्त स्वीकृत रूप से मृतका के साथ था । उसे मृतका के शरीर पर पाई गई कई सारी क्षतियों के बारे में स्पष्टीकरण देना चाहिए था कि गर्भाशय में सूजन सहित ये क्षतियां कैसे कारित हुईं । वह इनका स्पष्टीकरण देने में पूरी तरह से असफल रहा है । उसके द्वारा यह कथन नहीं किया गया है कि मृतका को क्षतियां ऐंठन के कारण कारित हुई थीं । उसके द्वारा यह कथन नहीं किया गया कि मृतका ऐंठन होने के दौरान नीचे गिर गई थी । उसके होंठों, ठोढ़ी, गले और गर्दन इत्यादि पर क्षतियां,

जैसा कि विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि ये क्षतियां उसे जबरदस्ती विष देते समय कारित की गई थीं, अभियुक्त के विरुद्ध एक मजबूत परिस्थिति है और इसके अतिरिक्त इसमें इसके पश्चात् चर्चा किए गए अभियुक्त के आचरण को ध्यान में रखते हुए इसे हल्केपन से अनदेखा नहीं किया जा सकता है । मृतका के शरीर के अग्र भाग पर क्षतियां थीं जिससे उपदर्शित होता है कि मृतका की विषाक्तिकरण के कारण मृत्यु कारित करने से पूर्व उसके साथ हिंसा की गई थी । साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 में तथ्य की विशेष जानकारी रखने वाले व्यक्ति से उस तथ्य का स्पष्टीकरण धारा 106 में की गई अपेक्षा अनुसार देने की अपेक्षा की गई है और जैसा कि **सी. एस. डी. स्वामी** बनाम **राज्य**[1], **कृष्ण लाल और अन्य** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य**[2] तथा **सिद्धार्थ वशिष्ठ** उर्फ **मनु शर्मा** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)**[3] वाले मामलों में अधिकथित किया गया है । इस बात का स्पष्टीकरण देने में असफल रहना कि मृतका बेहोशी की हालत में थी और इसके साथ-साथ अन्य साक्ष्य होने पर यह एक गंभीर परिस्थिति है जो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध जाती है ।

16. उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में भी गलती की है कि चूंकि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि मृतका के साथ दहेज की मांग के कारण दुर्व्यवहार या उसे तंग किया गया था और क्रूरता की गई थी । इसलिए अभियुक्त संदेह के फायदे का हकदार है । अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला प्रचुर साक्ष्य है कि अभियुक्त का मृतका के प्रति व्यवहार उचित नहीं था और चैली में मकान-मालिक द्वारा उसे मकान से निकाल दिया गया था । अभियुक्त के पूर्ववर्ती मकान-मालिक अर्थात् दयाल सिंह ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि अभियुक्त शराब के नशे में प्रायः विपदग्रस्त के साथ मारपीट और झगड़ा करता था, जिसके कारण उसने अभियुक्त को मकान खाली करने के लिए कहा था । उसके पश्चात् अभियुक्त निकटवर्ती मकान में स्थानांतरित हुआ था, जिसमें घटना घटी थी । अभि. सा. 6 और 11 के कथनों से भी यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त द्वारा विपदग्रस्त के साथ निरंतर दुर्व्यवहार किया जाता था और मारपीट की घटनाएं होती रहती थीं । मृतका के भाई अर्थात् अनिल कुमार (अभि. सा. 8) के कथन पर संदेह

---

[1] ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 7.

[2] 1995 सप्ली. (2) एस. सी. सी. 187.

[3] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2352.

करने का कोई कारण नहीं है, जिसके साथ भी घटना की रात को मारपीट की गई थी । अनिल कुमार ने यह कथन किया है कि अभियुक्त ने विपदग्रस्त के उदर पर ठोकर से प्रहार किया था जबकि वह 8 माह की गर्भवती थी, और गर्भवती होने का तथ्य इस मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट से साबित होता है कि विपदग्रस्त के गर्भाशय से 8 माह का शिशु बरामद किया गया था । डा. पीयूष कपिला (अभि. सा. 3) ने विपदग्रस्त की शव-परीक्षा करते समय उदरीय सूजन पाई थी जो स्पष्ट तौर पर अभियुक्त द्वारा मारी गई ठोकर से कारित हुई थी । अनिल कुमार (अभि. सा. 8) के कथन की संपुष्टि चिकित्सा साक्ष्य से होती है । अनिल कुमार के इस कथन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि अभियुक्त ने उसे भी गर्दन और चेहरे पर अनेक खरोंचों के रूप में क्षतियां कारित की थीं । डा. आर. के. शर्मा (अभि. सा. 1) ने अनिल कुमार के शरीर पर पाई गई क्षतियों को साबित किया है और क्षति रिपोर्ट को भी साबित किया है । उच्च न्यायालय ने अन्यथा अभिनिर्धारित करके गलती की है ।

17. एक अन्य परिस्थिति जो अभियुक्त पर गंभीर संदेह पैदा करती है, यह है कि वह हालांकि इस बात को भलीभांति जानता था कि विपदग्रस्त की हालत अस्थिर है और जैव फास्फोरस विषाक्तिकरण के कारण वह जीवन के लिए संघर्ष कर रही है, इसके बावजूद प्रारंभ में जब पड़ोसियों ने विपदग्रस्त के सिसकने की आवाज सुनी, तो अभियुक्त ने तुरंत दरवाजा नहीं खोला और पांच मिनट के पश्चात् दरवाजा खोला । यदि इस बात को अनदेखा भी कर दिया जाए, तो भी जब पड़ोसियों ने उससे मृतका को अस्पताल ले जाने के लिए कहा तो उसके लिए यह कहने का कतई कोई कारण नहीं था कि यह उनका पारिवारिक मामला है और वह जल्दी ही ठीक हो जाएगी । उसने मृतका को अस्पताल ले जाने में साशय देरी की और जब पुलिस आई केवल तभी विपदग्रस्त को अस्पताल ले जाया गया और पूर्वाह्न में 6.00 बजे डा. चौधरी (अभि. सा. 2) द्वारा उसका परीक्षण किया गया । यदि अभियुक्त निर्दोष होता तो वह विपदग्रस्त को तुरंत अस्पताल ले गया होता और पड़ोसियों के अनुरोध को नहीं ठुकराता तथा उसे अस्पताल ले जाने में देरी नहीं करता और पुलिस के पहुंचने की प्रतीक्षा नहीं की गई होती और उसके पश्चात् जब पुलिस विपदग्रस्त को अस्पताल लेकर गई, तब वह उसके साथ अस्पताल गया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की है कि अभियुक्त मृतका के साथ अस्पताल गया था इसलिए यह परिस्थिति उसके पक्ष में है । जबकि यह प्रतीत होता है कि अत्यधिक देरी कारित करने और पुलिस तथा विपदग्रस्त

के साथ अस्पताल जाने में अपने आप को बचाने और यह जानने के लिए कि क्या प्रकट होता है तथा डाक्टरों को गलत जानकारी देने का प्रयास था । इस प्रकार विपदग्रस्त को अस्पताल न ले जाने का अभियुक्त का आचरण उस पर संदेह पैदा करता है । व्यक्ति झूठ बोल सकते हैं किंतु परिस्थितियां नहीं, यह साक्ष्य का मूल्यांकन करने का आधारभूत सिद्धांत है । संपूर्ण परिस्थितियां अचूक अभियुक्त की दोषिता की ओर इंगित करती हैं । अभियुक्त इस बात से भली-भांति परिचित था कि विपदग्रस्त जैव फास्फोरस विषाक्तिकरण से ग्रसित है और बोतल भी वहां खुली पड़ी थी । कमरे से 'नुवन' विष की गंदी गंध आ रही थी । घरेलू सामान और माल कमरे में बिखरा पड़ा था और बालक रो रहा था । कमरे से हिंसा करने के चिह्न प्रकट हो रहे थे । कई साक्षियों अर्थात् दयाल सिंह (अभि. सा. 6), शिव कुमार (अभि. सा. 10) और गायत्री देवी (अभि. सा. 11) ने इस बारे में स्पष्ट रूप से कथन किया है ।

18. शिव कुमार (अभि. सा. 10) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि विपदग्रस्त से यह पूछने पर कि क्या हुआ, उसने अपने पति, अभियुक्त की ओर अपना हाथ उठाया था । इसी प्रकार का कथन अनिल कुमार (अभि. सा. 8) ने किया है । राम किशन (अभि. सा. 9) ने भी यह कथन किया है कि जब विपदग्रस्त से यह पूछा गया कि क्या हुआ, तो उसने अपना हाथ अभियुक्त की ओर उठाया था । उसे यह अनुभूति और महसूस हुआ था कि विपदग्रस्त को अभियुक्त द्वारा जबरदस्ती विष दिया गया है । अपने पति की ओर हाथ उठाकर विपदग्रस्त का यह अंतिम अंगविक्षेप यह उपदर्शित करता है कि उसकी यह हालत उसने की थी । विपदग्रस्त अपने को बचाने के लिए भी चिल्ला रही थी, यह बात स्वयं को मारने के लिए आत्महत्या का प्रयत्न करने के प्रतिकूल है ।

19. इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने संजय कुमार (अभि. सा. 13), जो एक स्वतंत्र साक्षी है, के साक्ष्य को त्यक्त कर दिया है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि 14-15 दिन पहले अभियुक्त ने मक्खियां आदि मारने के बहाने उसकी दुकान से 50/- रुपए में 'नुवन' विष खरीदा था । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि गर्मी के मौसम में मक्खियां मारने के लिए ऐसा खतरनाक विष खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं थी । अभियुक्त का आशय विपदग्रस्त की हत्या करना था और उसके जीवन का अंत करने के लिए उसने विष खरीदा । उच्च न्यायालय ने संजय कुमार (अभि. सा. 13) के कथन पर इस आधार पर विश्वास नहीं

किया कि अभियुक्त एक डाक्टर है और विभिन्न स्थानों पर तैनात रहा है इसलिए वह कहीं और से परिष्कृत प्रकृति का एक बेहतर विष खरीद सकता था और वह अपने विरुद्ध साक्ष्य सृजित नहीं करता । उच्च न्यायालय ने कोई स्पष्ट कारण दिए बिना 'नुवन' खरीदने के साक्ष्य को अस्वीकार कर दिया । कभी-कभी तथ्य कल्पना से परे उद्भूत होते हैं । उपर्युक्त 'नुवन' विष खरीदे जाने के संजय कुमार के कथन पर संदेह करने का कतई कोई कारण नहीं है और जब यह मकान में पाया गया था तो या तो इसे विपदग्रस्त ने खरीदा था या अभियुक्त ने । यह संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि यह विष अभियुक्त द्वारा खरीदा गया था और यह कमरे में पाया गया था तथा इस विष के कारण ही विपदग्रस्त की मृत्यु हुई थी । अभियुक्त द्वारा विपदग्रस्त को स्वयं नमकीन पानी देने का तथ्य उसे दोषिता से मुक्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है । यह नहीं कहा जा सकता है कि क्षतियां स्वयं कारित की गई थीं । अभियुक्त ने इस प्रभाव का कथन नहीं किया है इसलिए डीएनए परीक्षण कराए जाने की आवश्यकता नहीं थी, जैसी कि प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दलील दी गई है ।

20. इसके अतिरिक्त जबरदस्ती विष देने की बात का समर्थन मृतका के अग्र भाग पर पाई गई क्षतियों के रूप में चिकित्सा साक्ष्य द्वारा होता है, इन क्षतियों से इस प्रक्रिया में मृतका द्वारा अपने आप को बचाने के लिए किया गया संघर्ष भी दर्शित होता है । ये क्षतियां ऐंठन के कारण कारित नहीं हो सकती थीं और अभियुक्त के संपूर्ण आचरण तथा मृतका द्वारा अपनी हालत के लिए जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में अपने पति की ओर हाथ उठाकर संकेत करने, अभियुक्त द्वारा जैव फास्फोरस जैसे खतरनाक प्रकार के विष के बारे में भली-भांति जानकारी होते हुए विपदग्रस्त को देरी से अस्पताल ले जाना उसकी दोषिता को इंगित करता है और परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण हो जाती है ।

21. **शरद बिरधी चंद सारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा विष देकर हत्या करने के मामले और ऐसे मामलों में सबूत के ढंग और रीति पर विचार किया था । दोषसिद्धि अभिलिखित करने से पूर्व चार परिस्थितियों की परीक्षा की जानी चाहिए : (i) मृतका को विष देने का अभियुक्त का आशय स्पष्ट था, (ii) जिस विष से मृतका की मृत्यु हुई वह कथित रूप से खिलाया गया था, (iii) विष अभियुक्त के कब्जे में

[1] [1985] 1 उम. नि. प. 995 = ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622.

था, और (iv) अभियुक्त के पास मृतका को विष खिलाने का अवसर था । अभियोजन पक्ष का यह अभिकथन है कि पति ने मृतका को विष खिलाया जबकि प्रतिरक्षा पक्ष ने यह अभिवाक् किया कि इस बात की प्रबल संभाव्यता है कि मृतका के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था और भावुक तथा प्रभावशील होने के कारण उसने भावनात्मक उद्वेलन से उद्भूत तनाव और हताशा के कारण आत्महत्या की होगी । प्रस्तुत मामले में पूर्वोक्त कसौटियों का समाधान हो गया है और अभियोजन पक्ष ने मामले को संदेह की गुंजाइश बिना साबित किया है । अभियुक्त का आचरण और मामले में उल्लिखित अनुसार निर्णायक समय पर विपदग्रस्त का अंगविक्षेप, चिकित्सीय साक्ष्य, विष खरीदने के बारे में साक्ष्य किसी त्रुटि के बिना अभियुक्त की दोषिता को इंगित करते हैं ।

22. प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी अनुरोध किया गया है कि बालक की आयु अब 17 वर्ष है और अभियुक्त के साथ रहता है, इसलिए हमें नरम दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । इस प्रकार के अपराध में यह बात किसी प्रकार की नरमी दिखाने का आधार नहीं हो सकती है, विशिष्ट रूप से जब अभियुक्त ने अपनी उस पत्नी की देखरेख नहीं की और उसकी हत्या कर दी जो एक डाक्टर थी और साथ-ही-साथ गर्भवती थी और उसके गर्भ में 8 माह का नर शिशु था जिसका गर्भस्थ शिशु उसके गर्भाशय से बरामद किया गया था । इन परिस्थितियों में, अभियुक्त किसी प्रकार के नरम बर्ताव का हकदार नहीं है क्योंकि ऐसा बर्ताव केवल विधिक मानदंडों के अनुसार ही किया जा सकता है ।

23. इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि के सकारण निर्णय और दंडादेश के आदेश को उलटकर गंभीर गलती की है । परिणामतः, यह अपील मंजूर की जाती है, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश तद्द्वारा अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय का निर्णय और आदेश प्रत्यावर्तित किया जाता है । प्रत्यर्थी को अभ्यर्पण करने का निदेश दिया जाता है, इसमें असफल रहने पर उसे तुरंत अभिरक्षा में लिया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

संसद् के अधिनियम

बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005

(2006 का अधिनियम संख्यांक 4)

[20 जनवरी, 2006]

बालक अधिकारों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय आयोग और राज्य आयोगों और बालकों के विरुद्ध अपराधों या बालक अधिकारों के अतिक्रमण के त्वरित विचारण के लिए बालक न्यायालयों के गठन तथा उससे संबंधित और उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत ने 1990 में हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा के शिखर सम्मेलन में भाग लिया था, जिसने बालकों के जीवित रहने, संरक्षण और विकास के संबंध में एक घोषणा को अंगीकार किया ;

और, भारत ने 11 दिसम्बर, 1992 को हुए बालक अधिकार संबंधी अभिसमय (बा.अ.अ.) को भी स्वीकार कर लिया है ;

और बालक अधिकार संबंधी अभिसमय एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि है जो हस्ताक्षरकर्ता राज्यों के लिए यह अनिवार्य बनाती है कि वे अभिसमय में प्रगणित बालकों के अधिकारों की संरक्षा के लिए सभी आवश्यक उपाय करें ;

और बालकों के अधिकारों के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने बालकों के लिए हाल ही में जो एक नई पहल आरम्भ की है वह यह है कि उसने राष्ट्रीय बालक चार्टर, 2003 को अंगीकार किया है ;

और मई, 2002 में हुए बालकों के संबंध में संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष सत्र में "बालकों के लिए उपयुक्त विश्व" नामक निष्कर्ष दस्तावेज को अंगीकृत किया गया था, जिसमें वर्तमान दशक के लिए सदस्य देशों द्वारा अपनाए जाने वाले लक्ष्य, उद्देश्य, युक्तियां और क्रियाकलाप अंतर्विष्ट हैं ;

और यह समीचीन है कि इस संबंध में सरकार द्वारा अंगीकृत नीतियों, बालक अधिकार संबंधी अभिसमय में विहित मानकों और अन्य सभी सुसंगत

अन्तरराष्ट्रीय लिखतों को कार्यान्वित करने के लिए बालकों से संबंधित विधि अधिनियमित की जाए ;

भारत गणराज्य के छप्पनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर, संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "अध्यक्ष" से, यथास्थिति, आयोग या राज्य आयोग का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(ख) "बालक अधिकारों" के अन्तर्गत 20 नवम्बर, 1989 को बालक अधिकार संबंधी संयुक्त राष्ट्र अभिसमय में अंगीकृत और 11 दिसम्बर, 1992 को भारत सरकार द्वारा अनुसमर्थित बालकों के अधिकार भी हैं ;

(ग) "आयोग" से धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग अभिप्रेत है ;

(घ) "सदस्य" से यथास्थिति, आयोग या राज्य आयोग का सदस्य अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अध्यक्ष भी है ;

(ङ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है ;

(च) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(छ) "राज्य आयोग" से धारा 17 के अधीन गठित राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग अभिप्रेत है ।

अध्याय 2

राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग

3. **राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग का गठन** – (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के अधीन एक निकाय का, जो राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग के नाम से ज्ञात होगा, उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए, गठन करेगी ।

(2) आयोग निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो विख्यात व्यक्ति हो और जिसने बालकों के कल्याण के संवर्धन के लिए उत्कृष्ट कार्य किया हो ; और

(ख) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले छह सदस्य, जिनमें से कम से कम दो स्त्रियां होंगी और प्रत्येक निम्नलिखित क्षेत्रों में श्रेष्ठता, योग्यता, सत्यनिष्ठा, प्रतिष्ठा और अनुभव रखने वाला व्यक्ति होगा, –

(i) शिक्षा ;

(ii) बाल स्वास्थ्य, देख-रेख, कल्याण या बाल विकास ;

(iii) किशोर न्याय या उपेक्षित या तिरस्कृत बालकों या निःशक्त बालकों की देख-रेख ;

(iv) बालक श्रम या बालकों के कष्टों का आहरण ;

(v) बालक मनोविज्ञान या समाजशास्त्र ; और

(vi) बालकों से संबंधित विधियां ।

(3) आयोग का कार्यालय दिल्ली में होगा ।

4. **अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति** – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा, अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को नियुक्त करेगी :

परन्तु अध्यक्ष की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा [1][महिला और बाल विकास मंत्रालय या विभाग के प्रभारी मंत्री] की अध्यक्षता में गठित तीन सदस्यों वाली चयन समिति की सिफारिश पर की जाएगी ।

---

[1] 2007 अधिनियम सं. 4 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

5. **अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें** – (1) अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य उस रूप में उस तारीख से, जिसको वे अपना पदभार ग्रहण करते हैं, तीन वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेंगे :

परन्तु कोई भी अध्यक्ष या सदस्य दो पदावधियों से अधिक के लिए पद धारण नहीं करेगा :

परन्तु यह और कि कोई अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य –

(क) अध्यक्ष की दशा में, पैंसठ वर्ष की आयु ; और

(ख) सदस्य की दशा में, साठ वर्ष की आयु,

प्राप्त होने के पश्चात् उस हैसियत में अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(2) अध्यक्ष या सदस्य, केन्द्रीय सरकार को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा किसी भी समय अपना पद त्याग सकेगा ।

6. **अध्यक्ष और सदस्यों के वेतन और भत्ते** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु, यथास्थिति, अध्यक्ष या किसी सदस्य के न तो वेतन और भत्तों में तथा न उसकी सेवा के अन्य निबंधनों और शर्तों में, उसकी नियुक्ति के पश्चात्, उसमें अलाभकारी परिवर्तन किए जाएंगे ।

7. **पद से हटाया जाना** – (1) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अध्यक्ष को उसके पद से साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर केन्द्रीय सरकार के आदेश द्वारा हटाया जा सकेगा ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को पद से हटा सकेगी यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या ऐसा अन्य सदस्य –

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है ; या

(ख) अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगता है ; या

(ग) कार्य करने से इनकार करता है या कार्य करने में असमर्थ हो जाता है ; या

(घ) विकृतचित्त का है और किसी सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसा घोषित किया गया है ; या

(ङ) अपने पद का ऐसा दुरुपयोग करता है जिससे उसका पद पर बने रहना लोकहित के लिए हानिकारक हो जाता है ; या

(च) किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है और कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है, जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में, नैतिक अधमता अन्तर्वलित है ; या

(छ) आयोग से अनुपस्थित रहने की अनुमति लिए बिना उसकी तीन क्रमवर्ती बैठकों में अनुपस्थित रहता है ।

(3) इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति को तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति को उस मामले में सुनवाई का अवसर न दे दिया गया हो ।

8. **अध्यक्ष या सदस्य द्वारा पद रिक्त किया जाना** – (1) यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या कोई सदस्य, –

(क) धारा 7 में वर्णित निरर्हताओं में से किसी के अधीन हो जाता है ; या

(ख) धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन अपना त्यागपत्र निविदत्त कर देता है,

तो उस पर उसका पद रिक्त हो जाएगा ।

(2) यदि अध्यक्ष या सदस्य के पद में, उसकी मृत्यु, त्यागपत्र या अन्यथा कारण से आकस्मिक रिक्ति हो जाती है तो ऐसी रिक्ति को धारा 4 के उपबंधों के अनुसार नब्बे दिन के भीतर नई नियुक्ति करके भरा जाएगा और इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति वह पद उस पदावधि के उस शेष अवधि के लिए धारण करेगा जिसके लिए, यथास्थिति, वह अध्यक्ष या सदस्य, जिसके स्थान पर वह इस प्रकार नियुक्त किया जाता है, उस पद को धारण करता है ।

9. **रिक्तियों, आदि से आयोग की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना** – आयोग का कोई कार्य या कार्यवाही, केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि –

(क) आयोग में कोई रिक्ति है या उसके गठन में कोई त्रुटि है ; या

(ख) किसी व्यक्ति की अध्यक्ष या सदस्य के रूप में नियुक्ति में कोई त्रुटि है ; या

(ग) आयोग की प्रक्रिया में कोई ऐसी अनियमितता है, जो मामले के गुणागुण पर प्रभाव नहीं डालती है ।

10. **कारबार के संव्यवहार के लिए प्रक्रिया** – (1) आयोग अपने कार्यालय में, ऐसे समय पर जो अध्यक्ष ठीक समझे, नियमित रूप से अधिवेशन करेगा किन्तु अंतिम और अगले अधिवेशन के बीच तीन मास का अंतर नहीं होगा ।

(2) अधिवेशन में सभी विनिश्चय बहुमत द्वारा लिए जाएंगे :

परन्तु बराबर मतों की दशा में, अध्यक्ष, या उसकी अनुपस्थिति में पीठासीन व्यक्ति का द्वितीय या निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा ।

(3) यदि अध्यक्ष किसी कारण से आयोग के अधिवेशन में उपस्थित रहने में असमर्थ है तो उस अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों द्वारा अपने में से चुना गया कोई सदस्य पीठासीन होगा ।

(4) आयोग किसी अधिवेशन में अपने कारबार के संव्यवहार के लिए प्रक्रिया के, ऐसे अधिवेशन में गणपूर्ति सहित, ऐसे नियमों का पालन करेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(5) आयोग के सभी आदेश और विनिश्चय सदस्य-सचिव द्वारा या इस निमित्त सदस्य-सचिव द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत आयोग के किसी अन्य अधिकारी द्वारा अधिप्रमाणित किए जाएंगे ।

11. **आयोग के सदस्य-सचिव, अधिकारी और अन्य कर्मचारी** – (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, भारत सरकार के संयुक्त-सचिव या अतिरिक्त सचिव की पंक्ति से अनिम्न अधिकारी को आयोग के सदस्य-सचिव के रूप में नियुक्त नहीं करेगी और आयोग को ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जो उसके कृत्यों के दक्षतापूर्ण पालन के लिए आवश्यक हों ।

(2) सदस्य-सचिव, आयोग के क्रियाकलापों के उचित प्रशासन और

उसके दिन-प्रतिदिन के प्रबंध के लिए उत्तरदायी होगा तथा वह ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे अन्य कर्तव्यों का निर्वहन करेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(3) आयोग के प्रयोजन के लिए नियुक्त सदस्य-सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

12. **वेतन और भत्तों का अनुदानों में से संदाय किया जाना** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्तों का तथा प्रशासनिक व्ययों का, जिनके अन्तर्गत धारा 11 में निर्दिष्ट सदस्य-सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन, भत्ते और पेंशनें भी हैं, धारा 27 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदाय किया जाएगा ।

अध्याय 3
आयोग के कृत्य और शक्तियां

13. **आयोग के कृत्य** – (1) आयोग, निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का निर्वहन करेगा, –

(क) बालक अधिकारों के संरक्षण के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंधित रक्षोपायों की परीक्षा और पुनर्विलोकन करना तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करना ;

(ख) केन्द्रीय सरकार को वार्षिक रूप से और ऐसे अन्य अंतरालों पर, जिन्हें आयोग उचित समझे, उन रक्षोपायों के कार्यकरण पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना ;

(ग) बालक अधिकारों के अतिक्रमण की जांच करना और ऐसे मामलों में कार्यवाहियां आरम्भ करने की सिफारिश करना ; या

(घ) उन सभी पहलुओं की परीक्षा करना जो आतंकवाद, सांप्रदायिक हिंसा, दंगे, प्राकृतिक आपदा, घरेलू हिंसा, एच. आई. वी./एड्स, अवैध व्यापार, दुर्व्यवहार, उत्पीड़न और शोषण, अश्लील साहित्य और वेश्यावृत्ति से प्रभावित बालक अधिकारों के उपयोग को रोकते हैं और समुचित उपचारी उपायों की सिफारिश करना ;

(ङ) उन बालकों से, जिन्हें विशेष देख-रेख और संरक्षण की

आवश्यकता है, जिनके अन्तर्गत कष्टों से पीड़ित बालक, तिरस्कृत और असुविधाग्रस्त बालक, विधि का उल्लंघन करने वाले बालक, किशोर, कुटुम्ब रहित बालक और कैदियों के बालक भी हैं, संबंधित मामलों की जांच पड़ताल करना और उपयुक्त उपचारी उपायों की सिफारिश करना ;

(च) बालक अधिकारों से संबंधित संधियों और अन्य अन्तरराष्ट्रीय लिखतों का अध्ययन करना और विद्यमान नीतियों, कार्यक्रमों और अन्य क्रियाकलापों का कालिक पुनर्विलोकन करना तथा बालकों के सर्वोत्तम हित में उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिशें करना ;

(छ) बालक अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसे अग्रसर करना ;

(ज) समाज के विभिन्न वर्गों के बीच बालक अधिकार संबंधी जानकारी का प्रसार करना और प्रकाशनों, मीडिया, विचार गोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध रक्षोपायों के प्रति जागरूकता का संवर्धन करना ;

(झ) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी के नियंत्रणाधीन किसी किशोर अभिरक्षागृह या किसी अन्य निवास स्थान या बालकों के लिए बनाई गई संस्था, जिसके अन्तर्गत किसी सामाजिक संगठन द्वारा चलाए जाने वाली संस्था भी है, का निरीक्षण करना या करवाना ; जहां बालकों को उपचार, सुधार या संरक्षण के प्रयोजनों के लिए निरुद्ध किया जाता है या रखा जाता है, निरीक्षण करना या करवाना या किसी उपचारी कार्रवाई के लिए, यदि आवश्यक हो, संबंधित प्राधिकारियों से बातचीत करना ;

(ञ) निम्नलिखित से संबंधित मामलों के परिवादों की जांच करना और इन मामलों पर स्वप्रेरणा से विचार करना –

(i) बालक अधिकारों से वंचन और उनका अतिक्रमण ;

(ii) बालकों के संरक्षण और विकास के लिए उपबंध करने वाली विधियों का अक्रियान्वयन ;

(iii) बालकों की कठिनाइयों को दूर करने और बालकों के कल्याण को सुनिश्चित करने तथा ऐसे बालकों को अनुतोष प्रदान

करने के उद्देश्य के लिए नीतिगत विनिश्चयों, मार्गदर्शनों या अनुदेशों का अननुपालन ; या ऐसे विषयों से उद्भूत मुद्दों पर समुचित पदाधिकारियों के साथ बातचीत करना ; और

(ट) ऐसे अन्य कृत्य करना, जो बालकों के अधिकारों के संवर्धन और उपर्युक्त कृत्यों से आनुषंगिक किसी अन्य मामले के लिए आवश्यक समझे जाएं ।

(2) आयोग ऐसे किसी मामले की जांच नहीं करेगा जो किसी राज्य आयोग या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन सम्यक् रूप से गठित किसी अन्य आयोग के समक्ष लम्बित है ।

14. **जांच से संबंधित शक्तियां** – (1) आयोग को धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ञ) में निर्दिष्ट किसी विषय की जांच करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में वे सभी शक्तियां होंगी, जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को होती हैं, अर्थात् :–

(क) किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) किसी दस्तावेज का प्रकटीकरण और पेश किया जाना ;

(ग) शपथ पत्रों पर साक्ष्य लेना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अध्यपेक्षा करना ; और

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ।

(2) आयोग को किसी मामले को ऐसे मजिस्ट्रेट को भेजने की शक्ति होगी जिसे उसका विचारण करने की अधिकारिता है और वह मजिस्ट्रेट जिसे कोई ऐसा मामला भेजा जाता है, अभियुक्त के विरुद्ध परिवाद सुनने के लिए इस प्रकार अग्रसर होगा मानो वह मामला दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 346 के अधीन उसको भेजा गया है ।

15. **जांच के पश्चात् कार्रवाई** – आयोग, इस अधिनियम के अधीन की गई किसी जांच के पूरा होने पर, निम्नलिखित कार्रवाई कर सकेगा, अर्थात् :–

(i) जहां जांच से बालक अधिकारों के किसी गंभीर प्रकृति के अतिक्रमण का या तत्समय प्रवृत किसी विधि के उपबंधों का उल्लंघन होना प्रकट होता है वहां, वह संबद्ध सरकार या प्राधिकारी को संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन के लिए कार्यवाहियां या ऐसी अन्य कार्रवाई जो आयोग ठीक समझे, आरम्भ करने के लिए सिफारिश कर सकेगा;

(ii) उच्चतम न्यायालय या संबंधित उच्च न्यायालय से ऐसे निदेशों, आदेशों या रिटों के लिए जो वह न्यायालय उचित समझे, अनुरोध कर सकेगा;

(iii) पीड़ित व्यक्ति या उसके कुटुम्ब के सदस्यों को ऐसे तत्काल अंतरिम सहायता मंजूर करने की, जो आयोग उचित समझे, सम्बद्ध सरकार या प्राधिकारी को सिफारिश कर सकेगा ।

16. **आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्ट** – (1) आयोग, केन्द्रीय सरकार को और सम्बद्ध राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर जो उसकी राय में इतना अतिआवश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या संबद्ध राज्य सरकार आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टों को आयोग की सिफारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के ज्ञापन सहित और सिफारिशों की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हो, यथास्थिति, संसद् या राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष ऐसी रिपोर्टों की प्राप्ति की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर रखवाएगी ।

(3) वार्षिक रिपोर्ट ऐसे प्ररूप और रीति में तैयार की जाएगी और उसमें ऐसे ब्यौरे अंतर्विष्ट होंगे जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

अध्याय 4

राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग

17. **राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग का गठन** – (1) राज्य सरकार, इस अध्याय के अधीन एक निकाय का, राज्य आयोग को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए जो..... (राज्य का नाम) बालक अधिकार संरक्षण

आयोग के नाम से ज्ञात होगा, गठन कर सकेगी ।

(2) राज्य आयोग निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो विख्यात व्यक्ति हो और जिसने बालकों के कल्याण के संवर्धन के लिए उत्कृष्ट कार्य किया हो ; और

(ख) राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले छह सदस्य, जिनमें से कम से कम दो स्त्रियां होंगी और प्रत्येक निम्नलिखित क्षेत्रों में श्रेष्ठता, योग्यता, सत्यनिष्ठा, प्रतिष्ठा और अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से –

(i) शिक्षा ;

(ii) बाल स्वास्थ्य, देख-रेख, कल्याण या बाल विकास ;

(iii) किशोर न्याय या उपेक्षित या तिरस्कृत बालकों या निःशक्त बालकों की देख-रेख ;

(iv) बालक श्रम या बालकों के कष्टों का आहरण ;

(v) बालक मनोविज्ञान या समाजशास्त्र ; और

(vi) बालकों से संबंधित विधियां ।

(3) राज्य आयोग का मुख्यालय ऐसे स्थान पर होगा जो राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे ।

18. **अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति** – राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति करेगी :

परन्तु अध्यक्ष की नियुक्ति, राज्य सरकार द्वारा बालकों से संबंधित विभाग के प्रभारी मंत्री की अध्यक्षता में गठित तीन सदस्यों वाली समिति की सिफारिश पर की जाएगी ।

19. **अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें** – (1) अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य उस रूप में उस तारीख से, जिसको वे अपना पदभार ग्रहण करते हैं, तीन वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेंगे :

परन्तु कोई भी अध्यक्ष या सदस्य दो पदावधियों से अधिक के लिए पद धारण नहीं करेगा :

परन्तु यह और कि कोई अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य –

(क) अध्यक्ष की दशा में, पैंसठ वर्ष की आयु ; और

(ख) सदस्य के की दशा में, साठ वर्ष की आयु,

प्राप्त होने के पश्चात् उस हैसियत में अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(2) अध्यक्ष या कोई सदस्य राज्य सरकार को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा किसी भी समय अपना पद त्याग सकेगा ।

20. **अध्यक्ष और सदस्यों के वेतन और भत्ते** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु, यथास्थिति, अध्यक्ष या किसी सदस्य के न तो वेतन और भत्तों में तथा न उनकी सेवा के अन्य निबंधनों और शर्तों में, उसकी नियुक्ति के पश्चात्, उसके अलाभकारी परिवर्तन किया जाएगा ।

21. **राज्य आयोग के सचिव, अधिकारी और अन्य कर्मचारी** – (1) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, राज्य सरकार के सचिव की पंक्ति से नीचे के अधिकारी को राज्य आयोग के सचिव के रूप में नियुक्त नहीं करेगी और राज्य आयोग को ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जो उसके कृत्यों के दक्षतापूर्ण पालन के लिए आवश्यक हों ।

(2) सचिव, राज्य आयोग के क्रियाकलापों के उचित प्रशासन और उसके दिन-प्रतिदिन के प्रबंध के लिए उत्तरदायी होगा तथा वह ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(3) राज्य आयोग के प्रयोजन के लिए नियुक्त सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते, तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

22. **वेतन और भत्तों का अनुदानों में से संदाय किया जाना** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्तों का तथा प्रशासनिक व्ययों का, जिनके अन्तर्गत धारा 21 में निर्दिष्ट सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन भी हैं, धारा 28 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदाय किया जाएगा ।

23. **राज्य आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टें** – (1) राज्य

आयोग, राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर, जो उसकी राय में इतना अति आवश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) राज्य सरकार, उपधारा (1) में निर्दिष्ट सभी रिपोर्टों को राज्य से संबंधित सिफारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के स्पष्टीकारक ज्ञापन सहित और ऐसी सिफारिशों में से किसी की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हो, जहां राज्य विधान-मंडल दो सदनों से मिलकर बनता है वहां प्रत्येक सदन के समक्ष या जहां ऐसा विधान-मंडल एक सदन से मिलकर बनता वहां उस सदन के समक्ष रखवाएगी ।

(3) वार्षिक रिपोर्ट ऐसे प्ररूप और रीति में तैयार की जाएगी तथा उसमें ऐसे ब्यौरे अंतर्विष्ट होंगे जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

24. **राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग से संबंधित कतिपय उपबंधों का राज्य आयोगों को लागू होना** – धारा 7, धारा 8, धारा 9, धारा 10, धारा 13 की उपधारा (1) और धारा 14, तथा धारा 15 के उपबंध राज्य आयोग को निम्नलिखित उपांतरणों के अधीन रहते हुए लागू होंगे, और प्रभावी होंगे, अर्थात् :–

(क) "आयोग" के प्रति निर्देशों का अर्थ लगाया जाएगा कि वे "राज्य आयोग" के प्रति निर्देश हैं;

(ख) "केन्द्र सरकार" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे "राज्य सरकार" के प्रति निर्देश हैं ; और

(ग) "सदस्य सचिव" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे "सचिव" के प्रति निर्देश हैं ।

अध्याय 5

बालक न्यायालय

25. **बालक न्यायालय** – राज्य सरकार, बालकों के विरुद्ध अपराधों या बालक अधिकारों के अतिक्रमण के अपराधों का त्वरित विचारण करने का उपबंध करने के प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, अधिसूचना द्वारा, उक्त अपराधों का विचारण करने के लिए

राज्य में कम-से-कम एक न्यायालय को या प्रत्येक जिले में किसी सेशन न्यायालय को बालक न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकेगी :

परन्तु इस धारा की कोई बात तब लागू नहीं होगी, जब तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि के अधीन ऐसे अपराधों के लिए –

(क) कोई सेशन न्यायालय पहले से ही विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट है ; या

(ख) कोई विशेष न्यायालय पहले से ही गठित है ।

26. **विशेष लोक अभियोजक** – राज्य सरकार, प्रत्येक बालक न्यायालय के लिए, अधिसूचना द्वारा, एक लोक अभियोजक विनिर्दिष्ट करेगी या किसी ऐसे अधिवक्ता को, जिसने कम-से-कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय किया हो, उस न्यायालय में मामलों के संचालन के प्रयोजन के लिए, विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी ।

अध्याय 6

वित्त, लेखा और संपरीक्षा

27. **केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान** – (1) केन्द्रीय सरकार, संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी, जो केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए ठीक समझे ।

(2) आयोग, इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी धनराशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

28. **राज्य सरकारों द्वारा अनुदान** – (1) राज्य सरकार, विधान-मंडल द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात् राज्य आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी जो राज्य सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए ठीक समझे ।

(2) राज्य आयोग, इस अधिनियम के अध्याय 3 के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी धनराशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे

और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

29. **आयोग के लेखा और संपरीक्षा** – (1) आयोग उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और इस अधिनियम के अधीन आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार प्राप्त होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने तथा आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) आयोग द्वारा केन्द्रीय सरकार को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या इस निमित्त उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित, आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित, प्रति वर्ष भेजे जाएंगे और केन्द्रीय सरकार ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

30. **राज्य आयोग के लेखा और संपरीक्षा** – (1) राज्य आयोग, उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण, ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो राज्य सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय, राज्य आयोग द्वारा

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और इस अधिनियम के अधीन राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार प्राप्त होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने तथा राज्य आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) राज्य आयोग द्वारा राज्य सरकार को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या इस निमित्त उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित राज्य आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित प्रति वर्ष भेजे जाएंगे और राज्य सरकार ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखवाएगी ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

31. **सद्भावपूर्वक कार्रवाई के लिए संरक्षण** – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के संबंध में अथवा किसी रिपोर्ट या कागज-पत्र केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रकाशन के संबंध में कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग, राज्य आयोग या उसके किसी सदस्य अथवा केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के निदेशाधीन कार्य करने वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगी ।

32. **अध्यक्ष, सदस्यों और अन्य अधिकारियों का लोक सेवक होना** – आयोग, राज्य आयोग का प्रत्येक सदस्य और इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का निर्वहन करने के लिए आयोग या राज्य आयोग में नियुक्त प्रत्येक अधिकारी, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोक सेवक समझा जाएगा ।

33. **केन्द्रीय सरकार द्वारा निदेश** – (1) आयोग, इस अधिनियम के

अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने में राष्ट्रीय प्रयोजनों से संबंधित नीति विषयक प्रश्नों पर ऐसे निदेशों द्वारा मार्गदर्शित होगा, जो उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए जाएं ।

(2) यदि केन्द्रीय सरकार और आयोग के बीच इस बारे में कोई विवाद उत्पन्न होता है कि कोई प्रश्न राष्ट्रीय प्रयोजन से संबंधित नीति विषयक प्रश्न है या नहीं, तो उस पर केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अंतिम होगा ।

34. **विवरणियां या जानकारी** – आयोग, केन्द्रीय सरकार को अपने उन क्रियाकलापों के संबंध में ऐसी विवरणियां या अन्य जानकारी प्रस्तुत करेगा जिनकी केन्द्रीय सरकार समय-समय पर अपेक्षा करे ।

35. **केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में, निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबन्ध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबन्धन और शर्तें तथा धारा 6 के अधीन उनके वेतन और भत्ते ;

(ख) आयोग द्वारा धारा 10 की उपधारा (4) के अधीन अधिवेशन में उसके कारबार के संव्यवहार के संबंध में उसके द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ग) वे शक्तियां और कर्तव्य जिनका प्रयोग और पालन धारा 11 की उपधारा (2) के अधीन आयोग के सदस्य-सचिव द्वारा किया जाएगा ;

(घ) धारा 11 की उपधारा (3) के अधीन आयोग के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा अन्य निबंधन और शर्तें ; और

(ङ) धारा 29 की उपधारा (1) के अधीन आयोग द्वारा तैयार किए जाने वाले लेखा विवरण और अन्य अभिलेख का प्ररूप ।

3. इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने

के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्र के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से पहले उसके अधीन की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

36. **राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति** – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में, निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए, उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) राज्य आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबंधन और शर्तें, तथा धारा 20 के अधीन उनके वेतन और भत्ते ;

(ख) राज्य आयोग द्वारा धारा 24 के साथ पठित धारा 10 की उपधारा (4) के अधीन बैठक में उसके कारबार के संव्यवहार के संबंध में अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ग) वे शक्तियां और कर्तव्य जिनका प्रयोग और पालन धारा 21 की उपधारा (2) के अधीन राज्य आयोग के सचिव द्वारा किया जाएगा ;

(घ) धारा 21 की उपधारा (3) के अधीन राज्य आयोग के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ; और

(ङ) धारा 30 की उपधारा (1) के अधीन राज्य आयोग द्वारा तैयार की जाने वाली लेखा विवरणी और अन्य अभिलेख का प्ररूप ।

(3) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के जहां उसके दो सदन हैं, प्रत्येक सदन के समक्ष, या जहां, ऐसे राज्य विधान-मंडल में

एक सदन है तो उस सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

37. **कठिनाइयां दूर करने की शक्ति** – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे उपबंध कर सकेगी, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक प्रतीत होते हों :

परन्तु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।